ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर-प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन-मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, श्रृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -**श्रृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान**

१ 02 08 1970 पुष्प 22 प्राचीन भारत का गौरव भौतिक विज्ञान

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पुनः से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस वेदवाणी में उस परम पिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान माना गया है। हमारे यहाँ प्रभु की जो अनुपम प्रतिभा है वह मानव को चेतनित करती रहती है। इसके अन्तःकरण में, क्या हृदय रूपी गुफा में एक अनुपम धारा मानव के समीप नित्य प्रति उस चेतना से प्राप्त होती रहती है। जैसे प्रातःकाल से मध्य काल, मध्य काल से सायं काल होने लगता है रात्रि छा जाती है उस रात्रि की गोद में मानव परणित हो जाता है। मुनिवरोंजब दिवस आता है !, रात्रि सूर्य के गर्भ में जब लय हो जाती है, तो मानव को एक नवीन चेतना प्राप्त हो जाता है। वह चेतना मानवीय चेतना है, उस चेतना का जो स्रोत है उसी को मेरे प्यारे परम पिता परमात्मा की !ऋषिवर ! चेतना कहा जाता है। जब हम यह विचारने लगते हैं कि हमारे हृदय में कोई चेतना आती है, नवीनता आती है, मानो नवीनता सांयकाल को नहीं प्रातःकाल में ही आती है, सूर्य के उदय होने पर आती है। या रात्रि के गर्भ में भी मानव का जीवन होता है और मानवीय चेतना उसे प्रदान की जाती है। वही तो मेरा प्यारा प्रभु है जिसकी चेतना से मानव नित्य प्रति नवीन बनता रहता है। उसी अनुपम चेतना से उसके हृदय में एक प्रवाह होता रहता है। जैसे जल अपने आसन पर दीर्घ गति से रमण कर रहा है। इसी प्रकार मानव के जीवन में भी एक महत्ता की प्रतिभा महान चेतना उस मानव के हृदय में ओत प्रोत हो जाती है, जिसको आत्मिक चेतना कहते है जिसको हमारे यहाँ ब्रह्म चेतना भी कहा जाता है।

मेरे प्यारे आज हमें उस प्यारे प्रभु का धन्यवाद करना चाहिए। प्रभु का !ऋषिवर ! धन्यवाद क्या है? प्रभु का धन्यवाद कहने से धन्यवाद प्रभु का नहीं होता, अपने स्वयं का धन्यवाद होता है। अपना तो भाग्य स्वीकार करना चाहिए, इससे मानव का अपना सौभाग्य होता है। यह सौभाग्य क्या? प्रभु की एक चेतना और प्रभु की एक अनुपमता

हमें प्राप्त हो रही है। आओ मेरे प्यारे आज का हमारा वेद पाठ में बड़ी !ऋषिवर ! सुन्दर विवेचना आती चली जा रही थी। जहाँ आत्मचेतना के सम्बन्ध में विचार विनिमय हो रहा था। विविद्या का भी विचार आता चला जा रहा था। वहाँ अधिकार अनधिकार का भी विषय आता चला जा रहा था। अधिकारों को वस्तु प्रदान की जानी चाहिए, अधिकारी को ही जब वस्तु प्रदान की जाती है तो समाज और राष्ट्र ऊँचा बना करता है।

मैं आज महानन्द जी के वाक्यों को ले कर नहीं चलना चाहता हूँ। केवल विचार यह आज हमें देना है कि आज हम सब वाक्यों पर विनिमय करने वाले बनें। क्योंकि संसार में कटु उच्चारण करते रहो तो बेटा मानवीयता नहीं आएगी। मानवता को यदि संसार ! में कोई प्रतिभा है तो मानव का यथार्थ भाषण है। यथार्थ में मधुरता होनी चाहिए। उस मधुरता में एक सत्यवाद होता है। वह मानव के अन्तःकरण को छूता चला जाता है। जब मानव का अन्तःकरण उससे छू जाता है तो बेटा मानव का अन्तःकरण परिवर्तित ! हो जाता है। वह जो अशुद्ध वाक्य उसके हृदय में एक अशुद्ध वाक्य स्थान को ग्रहण कर गया वह स्वतः शान्तता को प्राप्त होगा रहेगा। जब मैं यह वाक्य उच्चारण करने के लिए चला करता हूँ कि हम वास्तव में यह विचार अपना बनाने का प्रयास करें।

अपने जीवन को जो क्रियात्मक बनाया जाता है, क्रियात्मक अपने जीवन में अभ्यास किया जाता है। अभ्यस्त बनता है, उस काल में बेटा इस संसार में मानवता का ! प्रसार सहज होने लगता है। परन्तु मेरी प्यारी माता जब अपने जीवन को क्रियात्मक बना लेती है और अपना कर्तव्य पालन करके चला करती है संसार में तो माता देखो !सौभाग्यशाली होती है। मुनिवरों, यहाँ मुझे बारम्बार स्मरण आता रहता है जब ! महर्षि लोमश मुनि महाराज अपनी माता के द्वारा थे सोमकृति माता भुञ्जुक ऋषि मेरे लिए क्या आज्ञा है !महाराज की पत्नी थी। उनसे लोमश जी ने कहा हे मातेश्वरी? उस समय माता ने भुञ्जुक से कहा कि हे प्रभुइसके लिए क्या आज्ञा है !? उन्होंने कहा ब्रह्मे प्रवः कृतम् लोकः, मानो तुम क्या चाहती हो देवीतुम्हारी ईच्छा क्या है !? क्योंकि पिता की इच्छा भिन्न होती है और माता को ईच्छा भिन्न होती है। उस समय माता ने

कहा कि भगवन् मेरी इच्छा तो ऐसी है कि मेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक ! संसार में तपस्वी होना चाहिए। क्योंकि जब माता का प्रिय बालक तपस्वी होगा तो माता को धन्यवाद प्राप्त होगा। यह आगे आने वाला जो मानव समाज है, यह माता को आदर की दृष्टि से दृष्टिपात करता है। जब उसके प्रति श्रद्धा और निष्ठा हो जाती है तो वास्तव में वह माता ही बन जाती है। इस प्रकार की धारा में चाहती हूँ। मुनिवरों ! भुञ्जुक ऋषि ने कहा कि मैं भी यही चाहता हूँ। क्योंकि हमारा ब्रह्म गृह है ब्रह्म की देखो !जानने वाली परम्परा हमारे यहाँ प्रायः रही है। मुनिवरों, जब लोमश मुनि महाराज ने ऐसा कहा कि माता क्या आज्ञा है? तो माता ने आज्ञा दो पुत्र तुम तपस्वी बनो। तुम महान बनो। अपनी आत्मा का शोधन करो। क्योंकि मेरे गर्भ से उत्पन्न होने का केवल एक ही अभिप्राय है। कि तुम अपने जीवन में कलंकित न हो जाना। जब माता का यह निर्देश, माता को यह पवित्र भावना बालक के हृदय में ओत प्रोत हो जाती हैं तो मुनिवरोंदेखो !, बालक का अन्तःकरण माता के विचारों से इतना पवित्र बन जाता है कि माता को आज्ञा का वह पालन करना लगता है।

मुनिवरोंदेखो !, हमारे यहाँ यह भी एक विचार है, ऋषि मुनियों का विचार है और प्रकृति के सिद्धान्त से भी यह विचार होता है कि माताओं को अपने जीवन से कितना सुन्दर बनना है। कितना तपस्वी अपने जीवन को बनाना है, क्योंकि यह तो वसन्धुरा है, वसुन्धरा कहते हैं मानव जिसमें वशीभूत रहते हैं। ऋषि मुनि इसी द्वारा से आते रहते हैं जब माता के हृदय में एक निष्ठा उत्पन्न हो जाती है, पवित्रवाद आ जाता है उस समय माता अपने बालक को कर्तव्य की वेदी पर परणित कर देती है। मुनिवरों यह ! नहीं उसका गर्भाशय ही इस प्रकार का होता है कि विचारधारा गर्भ में ही उसकी बन जाती है।

बेटा मुझे तो संसार का नाना साहित्य स्मरण आता रहता है। मुझे स्मरण आता रहता ! है महात्मा अष्टावक्र थे, महात्मा अष्टावक्र, माता के गर्भ स्थल में थे तो तब माता को पिता ब्रह्म का उपदेश देते थे। रात्रि काल आता तो ब्रह्म का उपदेश देते थे। इसी से महता अष्टावक्र की आत्मा ऋषि का आत्मा बनी। पूर्व जन्म का काल भी उनका ऋषि

आत्मा का था। ब्रह्मवेत्ता माता के विचार जब अन्तःकरण में प्रविष्ट होते थे, देखो, अन्तःकरण का ऐसा अप्रेत विचार होता है जब माता के हृदय से प्रेरणा उत्पन्न (स्थिर) होने लगती है। जब महात्मा अष्टावक्र को उने पिता ब्रह्म का उपदेश दे रहे थे और उनका यह आदेश था कि यह जो वायु है मानो यह अन्तःकरण में इस महान आकाश में, अन्तरिक्ष में लय हो जाती है और यह अन्तरिक्ष लोकों में रमण कर जाते हैं। उसी समय माता के अन्तःकरण से वह जो गर्भाशय में प्लावित था। मानो वह माता के गर्भस्थल में वेदनित हो गया। और उसने माता को प्रेरणा दी (ज्ञानवान), माता का अन्तःकरण प्रेरित होकर के कह रहा था भगवनहे पतिदेव यह वाक्य आपका अशु !द्ध है। क्योंकि मेरी आन्तरिक भावना प्रेरणा दे रही है। तो मेरे प्यारे यह महान !ऋषिवर ! माँ को भी सुन्दर उपदेश दिया जाता है। यह !आत्माओं का एक महान कृत्य होता है माताओं से जानकारी करने से प्राप्त होता है। बहुत सी माताएं इस प्रकार की होती हैं जिसके गर्भ स्थल मेें दैत्य प्रकृति का प्यारा पुत्र होती है। उनकी जो मनोभावना है, आहार है आहारों की जो प्रवृत्ति है, वह भी अशुद्ध हो जाती है। वह कहीं नाना दूसरे के रक्त को पान करने की इच्छा जाग्रत हो जाती है। माताओं के गर्भ स्थल में बेटा ! ब्रह्मवेत्ता बालक होते हैं। ऊँची प्रकृति के होते हैं, माता की प्रेरणा, मानो माता के हृदय की जो कामना होती है इच्छाएं होती है रसना का जो आस्वादन होता है वह उसी बालक के अनुकूल माता की रसना में प्रवष्टि हो जाता है। बेटा यह अनुसन्धान का ! विषय है। यह ऐसा विषय नहीं है। यह प्रायः मेरी माताओं को अनुसन्धान करना है कि आज हम अपनी महान उस पवित्र विद्या को वैदिक परम्परा में अपनाने का प्रयास करें। जिस विद्या को अपनाने से माताओं के हृदयों में, माताओं के अन्तःकरण की प्रेरणा और माताओं के गर्भस्थल से ऊँचे प्यारे पुत्रोंका जन्म होता रहे। यह होता कैसे है !? अनुसन्धान से होता है। यह ऐसे ही नहीं होता है। क्योंकि हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने नाना प्रकार के विचार दिए हैं उन विचारों में मैं आज जाना नहीं चाहता हूँ। वाक्य केवल उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि वास्तव में इस प्रकार की विद्या हमारे यहाँ परम्परा से चली आ रही है। और इस विद्या के लिए ऋषि मुनियों ने बड़ा बल

दिया है। बड़ी बलिष्ठता उन्होंने प्रकट की है, मानव के द्वारा तथा माताओं के द्वारा ऐसी पवित्रता होनी चाहिए जिससे यह संसार ऊँचा बने। गृहस्थ आश्रम में आने का उन्हीं माताओं को अधिकार होता है। जो माता बुद्धिमती होती हैं। मानों माता ही नहीं जो पुरुष बुद्धि मान होते हैं। उनकी ही गृह आश्रम में जाने का अधिकार होता है। विद्या को जानने वाला होता है वह गार्हपत्य अग्नि की पूजा करने वाला होता है। वैश्वानर नाम की अग्नि की पूजा करने वाला व्यक्ति होता है। मेरी प्यारी माता अपने गर्भ स्थल से प्यारे पुत्र को जन्म देती है। मेरे प्यारे अब मैं इन वाक्यों में अपना समय !ऋषिवर ! अधिक नहीं देना चाहता हूँ। यह तो भयंकर बन है। मैं गृह आश्रम की चर्चा प्रकट वर्षों व्यतीत हो जाएंगे। इस विज्ञान के ऊपर मैं आज इतना !करने लगता हूँ तो बेटा अधिक समय तक उच्चारण करना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि हमारे यहाँ प्रत्येक रात्रि का प्रभाव होता है। नक्षत्रों का भी प्रभाव होता है। मानो वेदी में बेटाइस प्रकार को विद्या !, इसका अनुकरण करना, विचारना यह मानव का स्वाभाविक गुण रहता है।

मेरे प्यारेमहानन्द जी ने कल अपनी वेदना ! प्रकट की, इनके हृदय में कितनी दाह थी। मैं उस दाह को नहीं लेना चाहता हूँ। हम उन वाक्यों को देना चाहते हैं जिससे समाज वास्तव में महज ही ऊँचा बन जाता है। विचारों से ऊँचा बनता है और तप से ऊँचा बना करता है। मुझे स्मरण है वह काल रघु परम्परा का भी, उससे पूर्व काल भी स्मरण है। ऋषि मुनि, मेरी प्यारी माता अध्ययन शील रहती, दर्शनों अध्ययन करने वाली, काम वासना और वासना में परणित न होने वाली, कर्तव्य का पालन करना, ब्रह्मचर्य, पर बल देना यह माताओं का विशेष कर एक प्रमुख विचार रहता था। विचार के साथ कर्तव्य का पालन करना। सुन्दर सन्तान और पुत्र को जन्म देना। उनका एक लक्ष्य रहता था जिससे बलिष्ठ ब्रह्मचारी और ओजस्वी बालक जब माता के गर्भ से जन्म लेता तो माता सौभाग्य शाली बन जाती है। माता एक महिमामय बन जाती है। माता का विचार उच्चता में परणित हो जाता है। उस समय यह राष्ट्र, यह समाज अपने अपने अधिकार की वेदी पर रमण करता हुआ राष्ट्र और समाज दोनों ऊँचे बनते हैं।

मैंने कई काल में प्रकट करते हुए कहा है कि राजा के राष्ट्र में अहः इस समाज में !

राष्ट्र की आवश्यकता कोई नहीं होती। कोई आवश्यकता नहीं है जब मेरी प्यारी माता अपने कर्त्तव्य का पालन करती है मानव अपने कर्तव्य वादी बन जाते हैं। प्रत्येक मानव अपना कर्तव्य का पालन करता है, इस समय राष्ट्र के शासक की आवश्यकता नहीं होती। वह समाज बड़ा महान होता है, पवित्र होता है, उद्गमता में परणित होता है। अपने अपने कार्यों में रत्त रहने वाला समाज होता है। मानो उस समाज में राष्ट्र की और शासक की आवश्यकता नही होती। शासक वहाँ होता है जहाँ निर्बुद्धि प्राणी होते हैं। जहाँ अकर्तव्य का पालन करने वाले प्राणी होते है। वहाँ जहाँ दुराचारी व्यक्ति हो जाते हैं उनके लिए नियम बनाए जाते हैं। संयम बनाया जाता है। अहा उनके !लिए जो संयमी पुरुष होते हैं अपने मन पर संयम करने वाले होते हैं उनको राष्ट्र की आवश्यकता नहीं होती। उनको राजा की आवश्यकता नहीं होती। राजा स्वयं उनके चरणों में ओत प्रोत हो जाते है। परन्तु जो मन के ऊपर संयम करने वाला होता है प्रवृत्तियों के ऊपर अनुशासन करने वाला होता है स्वयं अपने शरीर रूपी राष्ट्र को ऊँचा बनाने वाला व्यक्ति होता है राजा स्वयं उनके चरणों में ओत प्रोत हो जाते हैं उनको राष्ट्र की आवश्यकता नहीं होती बेटा इसीलिए आज का हमारा वाक्य यह क्या कह ! रहा है कि हम स्वयं अपने जीवन को कितना ऊँचा और महान् बनानाा चाहते हैं।

बेटादेखो !, कल मेरे प्यारेमहानन्द जी के हृदय में कितनी दाह थी !, कितना एक विचार था प्रवाह चल रहा था। कि समाज को एकाग्र किया जाए। समाज को एकाग्र बनाने का प्रयास किया जाए। ऐसा इनका विचार था परन्तु इनका विचार बड़ा सुन्दर सुशील और महान था। जिसकी महत्ता मानव के मस्तिष्कों मे सदैव परणित रहनी चाहिए। रहा यह वाक्य कटुता से समाज ऊँचा बना करता है। कटुता से न धर्म परिवर्तित होता है। उनके विचारों में स्वयं ऐसा प्रतीत होने लगता है कि तू मानव था, अमानव बन गया है। जब स्वयं सत्य की ओर आने लगता है तो प्रायः समाज ऊँचा बन जाता है। यहाँ तो सत्यवादी पुरुषों की आवश्यकता रहती है। जैसा महानन्द जी ने मुझे उच्चारण किया है, आधुनिक काल का समाज इस प्रकार का है हे प्रभु यहाँ भगवान ! राम जैसी आत्माओं को जन्म दो। जोमर्यादा को स्थापित करते हुए, पालन करते हुए

समाज को मर्यादावादी बनाते चले जाएं। हे प्रभु हे !हे सर्वत्र !हे सच्चिदानन्द !हे देव ! तू भगवान राम जैसी पवित्र आत्माओं को जन्म दे। !तू सदैव रहने वो प्रभु !अखण्ड इस !और माता कौशल्या जैसी माताओं को जन्म दे। हे प्रभुसंसार में जब यह समाज ऊँचा बनेगा। ऐसे नहीं बनेगा जैसे मेरे प्यारे महानन्द जी अपने वाक्यों को विचार ! विनिमय करके वायु में अपने सूक्ष्म शरीर को ले करके लय हो जाते हैं। ऐसे समाज राष्ट्र और समाज उस काल में महान होते हैं। जब !ऊँचा नहीं बना करता है। बेटा महान व्यक्ति होते हैं समाज में तब यह प्रायः संसार ऊँचा बनता चला जाता है।

सबसे प्रथम संसार में यह आवश्यकता होती है, अधिकार, अनधिकार के ऊपर विचार विनिमय होना ही चाहिए। क्योंकि जब अधिकार और अनधिकार के ऊपर विनिमय किया जाता है, तो राष्ट्र और समाज दोनों ऊँचे होते हैं। हमारे यहाँ परम्परा में जो अपने शिक्षार्थी की शिक्षा प्रदान की जाती थी, मुझे स्मरण आता रहता है, मुझे भी परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से कई स्थानों में कई राजाओं में शिक्षा देने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। एक समय महाराज सुमन के यहाँ यह चर्चा आई कि हमारे यहाँ देखो, शिक्षार्थी कौन होना चाहिए? बेटा मुझे वह समय और काल स्मरण आता ! रहता है, सुमन राजा के यहाँ शिक्षा देने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। सबसे प्रथम आयुर्वेद का पंडित बनना चाहिए। क्योंकि आयुर्वेद में इस प्रकार की विद्या आती है जो मानव के, ब्रह्मचारी के मस्तिष्कों का अध्ययन किया जाता है और मस्तिष्कों का अध्ययन करने के पश्चात आचार्य यह जान लेता है कि यह इस विद्या का अधिकारी है, इस विद्या का अधिकारी नहीं है। आचार्य इसी विद्या को पान कराता चला जाता है। ऐसा प्रायः हमारे यहाँ प्राचीन काल में होता रहा है प्रतीत नहीं होता कि वह समय कहाँ चला गया। एक समय महाराज सुमनम् नाम के राजों के तीन पुत्र थे। जो ज्येष्ठ पुत्र था उसके राष्ट्रीय, क्षत्रीय विचार नहीं थे वह पाण्डित्य विचारों वाला था तीसरा पुत्र ! उनका अन्य विचारों का था और जो मानो सबसे सूक्ष्म बालक था वह राष्ट्रीय विचारों में धनुर्वेद की विद्या में पारंगत था। राजा सुमनम् से कहा हे सुमनम् यह तीनों तुम्हारे पुत्र भिन्न भिन्न विचारों के हैं, तुम क्या चाहते हो? कौन सी विद्या दिलाना चाहते हो?

उन्होंने कहा प्रभुमैं तो उन्हें धनुर्वेद की विद्या में पारंगत चाहता हूँ। उन !्होंने कहा तो गुरु किसी और को चुन लिया जाए। क्योंकि मैं इनको यह शिक्षा दिलाने में असमर्थ हूँ। क्यां असमर्थ हूँ? क्योंकि ये तीन प्रकार की प्रवृत्ति के हैं, इनकी प्रकृति जिस प्रकार की है जो विद्या ये चाहते हैं, वह विद्या दिलाना चाहते हो, तो मैं इनका आचार्य बनने के लिए तत्पर हूँ। जब यह विचार आया तो सुमनम ने कहा प्रभु जैसी आपकी इच्छा ! को सुयोग्य बना दिया। !वह काल मुझे स्मरण है तीनों पुत्रों !ऋषिवर !हो। मेरे प्यारे तीनों पुत्र सुयोग्य बन गए। परन्तु अधिकार और अनधिकार की चर्चा कहाँ आती है? जहाँ अधिकारों को शिक्षा प्रदान नहीं की जाती। संसार में सबसे प्रथम धनुर्विद्या है उसके पश्चात पाण्डित्य अभीष्ट है। पाण्डित्य में जितना विज्ञान है और जितना कर्मकाण्ड है वह सब पाण्डिनेत्य की दृष्टि के आ जाता है। और जैसे वाणिज्य है जितना कर्मकाण्ड है, व्यापार है, व्यवहार है वह सब उस वाणिज्य के व्यापार में आता है। तीन ही प्रकार की देखो, धाराएं होती है मानव की। इसी प्रकार की विचारधाराओं को लेकर के संसार में अधिकार अनधिकार के ऊपर विचार विनिमय किया जाता है। तो यह समाज और राष्ट्र तभी ऊँचा बना करता है। गृह के गृह पवित्र बन जाते हैं।

बेटा !मुझे स्मरण आता रहता है मैंने कई काल में प्रकट भी किया है आज भी मुझे स्मरण आता चला जा रहा है। जिस समय महाराज रघु को, महाराजा दिलीप जी ने राजा रघु को जब वशिष्ठ आश्रम में प्रविष्ठ कराने लगे, उनका यह विचार था कि मैं अपने पुत्र को पण्डित बनाना चाहता हूँ। परन्तु महाराजा दिलीप जी जब वशिष्ठ मुनि के आश्रम में जा पहुंचे और उन्होंने कहा प्रभु मैं अपने प्यारे पुत्र को पण्डित बनाना ! हे !चाहता हूँ उस समय महाराजा दिलीप से महाराजा वशिष्ठ ने कहा कि हे भगवन इनका मस्तिष्क नहीं कहता कि यह पण्डित बन सकते है। इनका मस्त !दिलीप जीिष्क यही कहता है कि क्षेत्रिय बनेंगे। मानो राष्ट्रीय विचारों में, रजोगुणी विचारों में रहेंगे। इस प्रकार का विचार इनका आज्ञा दे रहा है। इनका मस्तिष्क पुकार रहा है इन वाक्यों को, तुम क्या उच्चारण कर रहे हो। इस समय जब इस प्रकार का वाक्य आया तो महाराजा दिलीप ने कहा प्रभु मैं आपके वाक्यों का उल्लंघन नहीं करना चाहता हूँ। जैसा आपका !

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि गुरुजन !ऋषिवर !विचार हो। तो मेरे प्यारे संसार में इतने ऊँचे होने चाहिए। जिससे ब्रह्मचारी के मस्तिष्क को उसकी प्रवृत्ति को प्रकृति को जानकर के उसकीउसी प्रकार का शिक्षण देना चाहिए। जैसे वैद्य राज आयुर्वेद का पंडित रुग्न व्यक्ति को उसी प्रकार का औषध देता है जैसा उसका विचार है जैसी उसकी प्रकृति है। यदि उसकी पित्त प्रकृति है, वायु प्रकृति को औषध प्रदान कर दी है तो देखो, उसका शरीर और रुग्ण हो जाएगा। परन्तु उसे तो पित्त प्रकृति को शान्त करने की औषध देनी है। तभी वह रोग समाप्त होगा अन्यथा हो नहीं पाया। अहा ! जहाँ वायु है वहाँ पित्त प्रकृति की प्रदान की जाती है तो वहाँ भी देखो, वायु को शान्त करने का औषध देना चाहिए। इसी प्रकार वह अधिकार अनधिकार की वार्त्ता आती है। इस प्रकार का हमारा विचार परम्परा से रहता है।

एक समय मुझे स्मरण है महर्षि भारद्वाज आश्रम में महर्षि दालभ्य जी आ पहुंचे। और अब दोनों का विचार विनिमय होने लगा तो दालभ्य जी ने कहा था महर्षि भारद्वाज से कि महाराजमैं इन विचारों को जानना चाहता हूँ क्या आप व !िज्ञान को नहीं जानते हैं। क्या आप सूर्य मण्डल में जाने की प्रक्रियां नहीं जानते? क्या आप चन्द्रमा में जाने वाले यन्त्रों का निर्माण नहीं कर सकते? क्या मंगल में जाने वाले यन्त्रों का निर्माण नहीं कर सकते? उस समय दालभ्य से महर्षि भारद्वाज ने कहा था और उससे कहा कि हे भगवनतुम यह जानकर के क्या करोगे !? उन्होंने कहा प्रभु हम भी चन्द्रमा की यात्रा ! करेंगे। तुम सबसे पहले अपने आत्मवेत्ता को क्यों नहीं जानते? जिसमें चन्द्र मण्डल आदि सब समाहित हो जाते हैं आज इस विज्ञान को जानने का प्रयास करो, महर्षि भारद्वाज ने कहा मैं उस विद्या को जानता हूँ परन्तु उस विद्या को मैं तुमसे प्रकट नहीं करना चाहता हूँ क्योंकि तुम पण्डित हो अहा आज मैं तुम्हें दे सकता हूँ वह जो ! विद्या है चन्द्रमा में जाने वाली है, मानो बुद्ध और शुक्र में जाने वाली है, लोक लोकान्तरों में रमण करने वाला जो यन्त्र है, धातु है आज मैं पुनः उनका ज्ञान करता हूँ। परन्तु उन्हें ले करके करोगे क्या मैं तो यह चाहता हूँ। हे दालभ्य जी तुम ब्रह्मवेत्ता ! बना। ब्रह्मवेत्ता बन कर ब्रह्म की जो प्रतिभा है मानो जिस प्रतिभा में सर्वत्र लोकान्तर

समाहित रहते हैं। तुम्हारे सूक्ष्म सेपिराड में भी वहीं संसार ओत प्रोत रहता है तुम अपने पिराड रूपी ब्रह्माराड की जानने का प्रयत्न करो। परन्तु यह ब्रह्म को जानने से जाना जा सकेगा। इससे चन्द्रमा तुम्हारे निकट आ जाएगा। सूर्य तुम्हारे निकट आ जाता है। तुम्हारे अन्तरात्मा का इतना प्रकाश है कि उसके समान सहस्त्रों सूर्यों का प्रकाश भी नहीं होता। इतना आज तुम देखो, उसे जानकर के क्या करोगे। महात्मा दालभ्य ने कहा कि मेरे विचार में तो यह वाक्य भगवन् यथार्थता में परणित हो गया ! है। आज मैं इसका अनुमोदन करने वाला हूँ। मेरा विचार तो यह परम्परा से रहा है। अथवा एक महान विज्ञान की धारा में जाकर के ही क्या करेंगे। जब इस प्रकार का विचार मुनिवरोंदेखो !, ऋषि, मुनियों का रहा तो उन्होंने अपने विचारों में एक महत्ता था एक दिग्दर्शन दिया। जिससे उनके विचारों में एक महत्ता की ज्योति जागृत हो गई। तो मेरे प्यारेवाक्य उच्च !ऋषिवर !ारण करने का अभिप्राय हमारा यह कि महर्षि भारद्वाज ज्ञान और विज्ञान दोनों के पारंगत थे। महर्षि भारद्वाज, कि महाराजा शिव ! और आदि ब्रह्मा भी इस विज्ञान के शिरोमणि रहे हैं। जिन्होंने ब्रह्मास्त्रों का निर्माण किया। वह परम्परा से उनके नामोच्चारण उसी काल से चले आ रहे हैं तथा प्रचलित है। आज हम उन वाक्यों पर विचार विनिमय करने का का प्रयास करें। महर्षि भारद्वाज ने कहा है कि आज मैं चन्द्रमा की यात्रा यन्त्रों के द्वारा प्रकृति के धातु और उनके परमाणुओं को भी जान करके यन्त्रों का निर्माण कर सकते हैं अपना शारीरिक, संकल्प भी इस प्रकार कर बन सकता है। इसी प्रकार आज हमें विचार विनिमय करना है। हम विज्ञान की धारा को जानने का भी प्रयास करें। परन्तु अपनी मानवता और अपनी विचारधार को आत्मवेत्ता बनाने वाली जो धारा है उसे कदापि अपने से दूर न करे। महर्षि भारद्वाज ने दालभ्य से कहा था हे दालभ्य जी संसार में जब भौतिक विज्ञान बाह्य रंग रूप धारण कर लेता है, उस समय मानव में नास्तिकवाद का प्रसार हो जाता है वहाँ विडम्बना होती है। जहाँ विडम्बना होती है वहाँ अन्धकार होता है। जहाँ अन्धकार होता है, हे दालभ्य जी वहाँ मृत्यु होती है। इसीलिए आज हमें विचारना है। हमें की रक्षा कदापि नहीं हुआ करती। क्यों नहीं होती? उसका मूल कारण क्या है? क्योंकि

जिस राजा के राष्ट्र के जितने अस्त्र शस्त्र होंगे, परमाणुवाद की विद्या होगी उतना उस राष्ट्र में अभिप्राय होगा। और जब अभिमान होगा तो उसी प्रकार की विडम्बना होगी, और वह अभिमान जो होता है वह मानवीय समाज के सुकृत को हवन कर लेता है। राष्ट्र के राष्ट्र को हनन कर लेता है उस राजा के राष्ट्र में नाना प्रकार की क्रान्ति उत्पन्न होती रहती है और क्रान्तियों का अभिप्राय यह कि एक समय वह आता है कि वही राष्ट्र अग्नि के मुख में परणित हो जाता है।

मुझे वह समय, वह काल स्मरण आता रहता है जब यहाँ राजा रावण की प्रतिभा थी, पताका थी, उनका विज्ञान था। इस संसार में इतना विशाल विज्ञान था, चन्द्रमा में जाने वाले यन्त्र, बुद्ध में जाने वाले यन्त्र अग्नि शस्त्र ओर जलास्त्र तथा नाना प्रकार के यन्त्र थे। कैसा विशाल यन्त्र था, मुझे वह यन्त्र आज तक स्मरण आता रहता है जिस समय संग्राम होने लगा राम का और रावण का, उस समय रावण के पुत्र मेघनाद ने एक सोममक नाम के यन्त्र का प्रहार किया, नीचे जल ही जल हो गया और ऊपर से अग्नि को वर्षा हो रही है, सर्वस्व सेना जल मग्न हो गई, अग्नि के प्रवाह, अग्नि के रूपों में भष्म होने लगी, उस समय देखो, भगवान राम क्योंकि महर्षि भारद्वाज ने उन्हें एक अस्त्र दिया था जो जलास्त्र कहलाया था, महाराजा भारद्वाज ने जिसका निर्माण किया था, भगवान राम ने उस अस्त्र का प्रहार किया तो अग्नि का अस्त्र अपने में शोषण कर गया और जल को भी शोषण कर गया। जल अकुचन शक्ति उस यन्त्र में अधिक होने के नाते जल और अग्नि दोनों शान्त मृत्यु को नहीं उच्चारण करना है। मृत्यु को आहवान नहीं करना।

जब भौतिक विज्ञान पराकाष्ठा पर जाता है दालभ्य जी उस काल में मानव का अन्तःकरण अभिमान से परणित हो जाता है, अभिमान उसके मस्तिष्क में प्रायः आ जाता है और जहाँ अभिमान होता है वहाँ रात्रि होती है, अन्धकार होता है, विडम्बना होता है और देखो, रक्त में उत्तेजना होती है वहीं मानव का जीवन मृत्यु का कारण बनता चला जाता है। इसलिए आज मैं इस विद्या को तुम्हें देना नहीं चाहता हूँ। इस विद्या का मैं केवल आन्तरिक रूप ही धारण कराना चाहता हूँ। बाह्य अंग बनाना नहीं चाहते। जब तक

संसार में कर्तव्य की वेदी है जब तक इसको ब्राह्य रूप देने का हमारा कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। आज हम इस विद्या को दे सकते हैं संसार को, परन्तु यह संसार में अनधिकार तथा अधिकार पर विचार होता रहेगा। इस प्रकार का विचार मैं देना नहीं चाहता हूँ। वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय क्या है? हम यह अपने जीवन में विचार विनिमय करते चले जाएं कि संसार में कर्त्तव्यवाद प्रथम है और यह भौतिकवाद विज्ञान उसके पश्चात है। आत्मवेत्ता बनना यहाँ सबसे प्रथम माना गया है। ऋषि मुनियों ने यह कहा है। एक मानव चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है। एक मानव नाना प्रकार के अग्नि अस्त्रों का निर्माण कर रहा है, क्यों कर रहा है? अग्नि अस्त्रों का ब्रह्म अस्त्रों का निर्माण क्यों कर रहा है? शिवा अस्त्र क्यों बना रहा है? और वरुणास्त्रों का निर्माण क्यों कर रहा है? वह इसलिए कर रहा है कि तेरे राष्ट्र की सुरक्षा हो जाए, परन्तु उस राष्ट्र हो गए और सेना की रक्षा हो गई। इस प्रकार के अस्त्र शस्त्र प्रायः संसार में रहे हैं।

हमारे यहाँ भारद्धाज जैसा वैज्ञानिक उस काल में भी नहीं था। परन्तु जिनकी निष्ठा जिनका केवल अनुसन्धान ही कार्य था। नित्य प्रति वह योगाभ्यास करते, उनका एक कर्म था अपने जीवन का। सबसे प्रथम वह प्रातःकाल में अपने आसन को त्यागते, जब रात्रिकाल में जब भी निद्रा से उठ जाते थे निद्रा से दूर होते ही उसी काल में गायत्री छन्दों का पठन पाठन करते थे। चिन्तन करते थे उनकी धातुओं को जानना उनका कर्तव्य था। प्रातःकाल होता अपने कार्यों से निवृत्त हो करके उसके पश्चात उनका ब्रह्म यज्ञ चलता था। ब्रह्म यज्ञ के पश्चात देव यज्ञ करते थे, देव यज्ञ करने के पश्चात भोजन इत्यादियों का पान करने के पश्चात उनकी एक अनुसन्धानशाला थी। विचारक शाला थी, उसमें परमाणुवाद का निरीक्षण करते थे। यन्त्र बनाते, यन्त्रों का निर्माण चलता रहता था। वे सर्व यन्त्र महाराज भारद्धाज ने भगवान राम को अर्पित कर दिए थे। जब रावण से संग्राम हुआ था उनका।

राजा रावण के यहाँ भी विशाल यन्त्र थे। क्योंकि रावण को भी इस विद्या को महर्षि भारद्वाज ने ही शिक्षा प्रदान की थी, वह शिक्षा, उसके पश्चात रावण ने कुछ महर्षि सोममुक से प्राप्त की थी। इसके पश्चात उन्होने ब्रह्मा से भी यह शिक्षा ग्रहण की थी।

अह रावण ने इस विद्या को लेकर के अपने राष्ट्र में विज्ञान का प्रसार किया। अपने ! को वैज्ञानिक बनाया और अपने विधाता कुम्भकरण को वैज्ञानिक बना दिया। !पुत्रों हमारे यहाँ ऐसा कहा जाता है जो मेरे प्यारे महानन्द जी ने कई काल में वर्णन ! कराया आधुनिक काल मे ं उनके प्रति एक प्रचलित वार्त्ता है कि कुम्भकरण छह माह की निद्रा में तल्लीन हो जाते थे और छह मास वह जागरुक रहते थे। ऐसा कहा जाता है परन्तु ऐसा मुझे दृष्टिपात कराया गया था कि महाराज कुम्भकरण अपनी पर्वतों पर ! मा 6 मास के लिए चले जाते थे। 6 अनुसन्धान शाला मेंस में वह अपनी रात्रि के रूपों में अपने को यह स्वीकार करते थे, मैं राष्ट्र में नहीं हूँ संसार में नहीं हूँ, मेरा कर्तव्य है कि अपनी अनुसन्धान शाला में विराजमान रहूँ। इतना विज्ञान उनके द्वारा था। मेघनाद को भी उन्होंने शिक्षा प्रदान की थी। कुम्भकरण जैसा वैज्ञानिक जिनका 6 मास तक का अभ्यास था वह संसार की वस्तुओं में लोलुप नहीं होते थे। अहः ऐसा उनका जीवन रहता ि ा वह र ाष्ट्र में आते रावण को विज्ञानशास्त्रों में उनके वैज्ञानिकों को शिक्षा देते। इस प्रकार उनका जीवन मास के 6 मास के लिए लुप्त रहता था। 6 लिए उनका जीवन संसार में राष्ट्र में रहते थे। राष्ट्रीयकरण विचार विनिमय होता रहता था। इस प्रकार का विज्ञान हमारे यहाँ प्राय ः रहा है।

आज यह वैज्ञानिकों को, और आत्मवेत्ताओं का दोनों एक स्वरूप बनना चाहिए। जैसे कोई ब्रह्मवेत्ता है आज किसी ऋचा को जानना है, दर्शनों में ऋचा का वर्णन आता है ऋचा का विचारक जो पुरुष होता है, एकान्त स्थान में चला जाता है, भयंकर बनो में चला जाता है, अपने में ऋचा को अर्पित कर देता है, समर्पित कर देता है वह ऋचा को जानते? एक एक ऋषि को बेटा लगभग एक सौ और सहस्रों वर्ष व्यतीत हो गए ! हैं। अहा वह अपने को यही नहीं जान पाए कि मैं जगत में हूँ, संसार में हूँ कहाँ हूँ? वह अपने को यह अनुभव कर लेते हैं कि मैं तो चेतना में हूँ। मेरा तो चेतना ही भिन्न है। इसी प्रकार जो वैज्ञानिक होते हैं एक एक वस्तु पर, एक एक परमाणु पर, उन परमाणुओं में जो धाराएं होती हैं। अह मुझे वह समय और काल जब स्मरण !बेटा ! आता है, मैं यह कहा करता हूँ कि वास्तव में वह समाज, वह काल किस प्रकार का

था? मुनिवरोंदेखो !, वह कल मुझे स्मरण है वह एक एक वैज्ञानिकों कैसे मास 6 तक लुप्त हो जाथा था। और उस पर अनुसन्धान करता हुआ नाना प्रकार के परमाणु अस्त्रों का निर्माण करने वाला बनता था। इस प्रकार की धारा उनकी प्रायः रही है। ब्रह्म लोक प्रवः राजा रावण के राष्ट्र में कितना विज्ञान था? परन्तु वह विज्ञान का बना क्या, उच्चारण करने का अभिप्राय यह अन्त में कि बना क्या? उसका बना यह कि लंका का विनाश हो गया। उसका बना यह कि परिवार नष्ट हो गया उसका बना यह कि मानवता, अमानवता में परिवर्तित हो गई। देखो, उसका यही बनता है, मैं तो यह कहा करता हूँ कि आध्यात्मिकवाद संसार में अधिक होना चाहिए, धार्मिकवाद अधिक होना चाहिए। मुझे स्मरण आता रहता है अहःवह काल !, महाराजा कुम्भकरण का एक मन्त्र था, जिसका चित्राग्नि यन्त्र कहा करते थे वह चित्राग्नि मन्त्र इस प्रकार का था क्या वह सर्वस्व जितने भी इस पृथ्वी पर लोक हैं परन्तु लोकों में जो जो यन्त्रों के केन्द्र से सम्बन्धित चित्राग्न उसमें सार जितने प्रतिबन्धित होते थे उस यन्त्र में साफ साफ सब केन्द्रों के चित्र आते रहते थे। महाराजा कुम्भरकण ने विज्ञान की लगभग वर्षों 100 वर्ष की आय 100 के पश्चात उसको जाना।ु तक उन्होंने उस पर अनुसन्धान किया। परन्तु जितने भू मण्डल पर राष्ट्र थे, सबके केन्द्रों का उनमें चित्रण आता तो संसार के सब वैज्ञानिक दृष्टिपात करने के लिए पहुंचे। हमारे यहाँ कुम्भकरण को सबसे अधिक वैज्ञानिक माना गया है। कुम्भकरण एक समय हिमालय कन्दराओं में चले गए। हिमालय की कन्दराओं में उन्होंने महर्षि भुंज महाराज से शिक्षा प्राप्त की। क्योंकि भुंजु मुनि महाराज वायु मुनि महाराज के 1500वें प्रपौत्र कहलाते थे। भुंजु ऋषि महाराज के मैं तो आपकी शरण मे आया !यहाँ पहुंचे और उनके द्वारा जा करके उन्होंने कहा प्रभु हूँउन्होंने कहा कि क्या चाहते हो ब्रह्म पुत्र मैं विज्ञान चाहता हूँ। मैं !उन्होंने कहा प्रभु ! अपने मस्तिष्क में विज्ञान को प्रतिमा चाहता हूँ। उन्होंने कहा तुम विज्ञान के अधिकारी हो अथवा नहीं। उन्होंने कहा कि यह मेरे मतिष्क को अध्ययन करिए। भुंजु ऋषि ने उनके मस्ितिष्क को अध्ययन किया। उन्होंने कहा तुम अधिकारी हो और उन्होंने शिक्षा प्रदान को। उन्होंने नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण, नाना प्रकार के धातु, प्राण, महा,

अणुओं का निर्देशन कराया। उनका दिग्दर्शन कराया। और निर्देशन दिया, तुम अपने विचारों में सुन्दर और प्रतिभा लिप्त हो जाओ। तो वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह क्या कि कुम्भकरण इस विद्या का इतना अधिकारी भी था। कुम्भकरण ने सबसे प्रथम रावण को कहा था कि राम से तुम संग्राम मत करो, राम से संग्राम करने से तुम्हें लाभ नहीं होगा। यह कुम्भकरण की शिक्षा थी। परन्तु क्योंकि रावण अधिकारी नहीं था। राष्ट्र का अधिकारी न था।

समाज का, राष्ट्र का विनाश किस काल में होता है? जब मेरी पुत्रियों को श्रृङ्गार भ्रष्ट किया जाता है। उस काल में राजा के राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं। सबसे प्रथम रावण ने माता सीता के चरित्र की कुदृष्टि पान करना चाहा। उसका परिणाम यह हुआ कि माता सीता तो अडिग रहीं उसका जीवन भ्रष्ट न हो सका। इतना वैज्ञानिक, इतना महान् राजा था परन्तु माता सीता की वेदना ने रावण के परिवार को नष्ठ कर दिया। राष्ट्र को अग्नि के मुख में परणित कर दिया। तो वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा क्या है? वह तो साहित्य है मैं कहाँ तक प्रकट करता रहूँगा। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि उस काल में राजा का विनाश होता है जब मेरी पुत्रियों के श्रृङ्गार को भ्रष्ट करने वाला राष्ट्र बन जाता है उस काल में प्रजा में अशुद्ध क्रान्ति आने के कारण वह अपनी अग्नि के मुख में स्वतः राजा चला जाता है। इसी प्रकार सबसे प्रथम कुम्भकरण ने यह कहा था रावण से हे रावण। हे विधाता यह तुमने क्या किया? तुम माता सीता का हरण कर लाए, यह तुम्हारा कार्य नहीं था। यह राजाओं का कर्त्तव्य नहीं होता। यदि मुझे यह विचार होता राष्ट्र का तो मैं अस्त्रों शस्त्रों से रावण तुम्हें नष्ट कर देता। परन्तु जब यह वाक्य कहा तो रावण ने कहा तुम महान कायर हो। मेरे विधाता नहीं हो। अहाः। उन्होंने यही वाक्य जाना कि मैं क्या करूं? मैं विधाता के साथ हूँ तो विचार क्या। विचार यह कि राजा रावण के राष्ट्र में इस प्रकार की धारा रही। विज्ञान का अभिमान रावण स्वतः संसार से नष्ट कराता चला गया। परिवार नष्ट हो गया, मेरी पुत्रियां निर्तति बन गई। अहाः सब कुछ समाप्त हो गई। इस प्रकार का देखो, वह काल बन जाता है। वह राष्ट्र का विज्ञानशाला परमाणु शाला सुन्दर सुन्दर शालाएं उस राष्ट्र में केवल एक माताओं

के जीवन को ऊँचा न बनाने का परिणाम यह होता है कि वह राष्ट्र श्मशान भूमि बन जाता है, राष्ट्र केवल सदाचार की भूमि न रहकर के वह दुराचार की भूमि बन जाता है इसलिए इन वाक्यों पर बेटा विचार विनिमय करना चाहिए प्रत्येक मानव को। !
आज का बेटा !वाक्य हमारा क्या कह रहा है आज के हमारे वाक्यों का अभिप्राय क्या कि संसार में विज्ञान होना चाहिए और बहुत अधिक होना चाहिए परन्तु मैं यह कहा करता हूँ कि आध्यात्मिक वाद होना चाहिए। आध्यात्मिक वाद में माता को माता की दृष्टि से पान किया जाता है, भोजाई को भोजाई की दृष्टि से परन्तु जब परमाणुवाद आ जाता है, प्रकृति वाद आ जाता है तो इसमें विवेक नहीं होता। इसमें विडम्बना आ जाती है, अभिमान आ जाता है और वह राष्ट्र को समाज को और मानव को नष्ट करने वाला होता है। बेटा इसीलिए आज का हमारा वाक्य अब यहाँ समाप्त होने जा रहा है !आज के इन वाक्यों का अभिप्राय क्या है कि हम अपने जीवन को ऊँचा बनाए, इतना ऊँचा बनाए कि हम आपने मानवत्व को इस राष्ट्र से ऊँचा बनाते चले जाए, राष्ट्र जो होता है वह सदाचारियों के लिए नहीं होता, नियम बद्ध व्यक्तियों के लिए नहीं होता। वह उनके लिए होता है जो अनुशासन की हीनता करते हैं और अनुशासन हीन जो व्यक्ति होते हैं उनके लिए राष्ट्र का निर्माण होता है सदाचार की धारा होती हैं, पवित्रवाद होता है, इसलिए उनके लिए सर्वज्ञ होता है आज का वाक् बेटा अब हमारा समाप्त होने जा ! रहा है आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात हमारी वार्त्ता समाप्त हो जाएगी।
पूज्य हानन्द जीः धन्य हो भगवन आज तो आप का वाक्य हमें भी बहुत प्रिय लगा। !
पूज्यपाद गुरुदेवः हास्यमहाशय कृष्ण हाल .....वेद पाठ ....., जोर बाग, नई दिल्ली 3

२ 29 10 1970 पुष्प 22 दिपावली पर्व

देखो, मुनिवरोंआज हम त !ुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ जो पाठयक्रम है वह परम्परा से ही माना गया है। जिसकी प्रतिभा उस परमपिता परमात्मा से सगठित रहती है। जो हमारे

यहाँ प्रायः स्मरणीय कहलाता है। जिसकी प्रतिभा मानव के हृदय में ओत प्रोत हो रही है समन्वय हो क्योंकि जब में नव के हृदय और मस्तिष्क का मिलान हो जाता है तो मानव पूर्ण योग की प्रतिष्ठा पर प्रतिष्ठित हो जाता है। क्योंकि मानव के हृदय और मस्तिष्क में उस पर ब्रह्म परमपिता परमात्मा की चेतना का प्रादुर्भाव होता है।

मेरे प्यारे महानन्द जो आज कुछ प्रेरणा दे रहे हैं। उसी प्रेरणा के साथ मैं अपने ! वाक्यों का प्रतिपादन करने वाला हूँ। क्योंकि मानव के हृदय में ब्रह्म की प्रेरणा जागरुक होती है। उसी प्रेरणा के आधार पर मानव प्रेरित होकर के अपना कर्म प्रारम्भ कर देता है। अपने कर्त्तव्य की प्रतिभा पर मानव सदैव आरूढ़ हो जाता है। क्योंकि उस परम पिता परमात्मा का जो अनुपम हृदय है और मानव का हृदय है, मस्तिष्क है दोनों का समन्वय हो जाना, दोनों का मिलान हो जाना एक महान् यौगिकता कहलाई गई है। इसके ऊपर मानव को सदैव विचार विनिमय करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। इसीलिए प्रायः योगी कहता रहता है जो मेरे अन्तःकरण की प्रेरणा है, जो मेरे हृदय की प्रेरणा है, जो मेरे मस्तिष्क की प्रेरणा है मैं उसी के आधार पर अपना कर्त्तव्य करता रहूँगा। जो मानव हृदय और मस्तिष्क दोनों के मिलान को जान जाता है उसको यह संसार अपने प्रलोभन में परणित नहीं कर सकता। ऐसा प्रायः हमारे यहाँ आता रहा है। एक स्थान में संसार का राष्ट्र है और एक स्थान में एक महान् महापुरुष का हृदय होता है क्योंकि उस हृदय की जो चेतना है वह चेतना उस महान चेतना से चेतनित रहती है उसका तो ब्रह्माण्ड ही राष्ट्र रहता है। वह महापुरुष यह कहता है कि मेरा जो अन्तःकरण है वह ब्रह्म के ही चरणों में रहता है। मैं उसी के द्वार पर ही अपनी सार्थकता चाहता हूँ। मैं यह जो संसार का प्रलोभन है, राष्ट्र का जो प्रलोभन है, द्रव्य का जो प्रलोभन है, रूढ़िवाद का जो प्रलोभन है इनमें मेरा मन उपराम हो जाता है, क्योंकि वह जो पर ब्रह्म परमात्मा है उसमें न कोई रूढ़ि होती है न संकीर्णता होती है। उसमें विशालता होती है। इसीलिए मानव का जो हृदय और मस्तिष्क है इन दोनों का समन्वय हो जाता है तो न उसमें रूढ़िवाद रहता है न संकिर्णता रहती है। न राष्ट्र का प्रलोभन रहता है न द्रव्य का प्रलोभन रहता है वह परम पिता परमात्मा की छत्र छाया में, उसकी प्रेरणा के

आधार पर जो हृदय और मस्तिष्क में आती है उस पर वह कर्त्तव्य करने के लिए सदैव तत्पर हो जाता है।
आज में अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ क्योंकि उच्चारण करने के लिए यौगिक चर्चाएं तो बहुत कुछ हैं। तो विचारना यह है कि जो ऐसे महापुरूष होते हैं, ऐसे हृदय के प्राणी होते हैं, प्रेरणा लेकर के अपना कर्त्तव्य करते हैं वे परमात्मा की विभूति होते हैं। वे परमात्मा की एक प्रेरणादायक, एक महान आत्मा होती है। जो इस संसार में अपना कर्त्तव्य करने के लिए आती है। प्रलोभन के लिए नहीं, राष्ट्र के लिए नहीं। वह संसार में नाना प्रकार की यातना के साथ अपना कर्त्तव्य करके परमात्मा की प्रेरणा के आधार पर चला करती है। आज मैं उन महापुरूषों की विवेचना करने नहीं जा रहा हूँ। आज का हमारा वेद पाठ कह रहा था गो रसी गो विध्यानम ब्रह्म योगाः प्रभास्ति सुप्रजा आज मैं प्रकृति की याचना करने जा रहा हूँ। हे महा प्रकृति तू हमारा कल्याण करने ! वाली है। क्योंकि तेरे द्वारा से ही हमारे जीवन का उद्बोधन होता है। तेरा ही हृदय हमारा हृदय है। इसीलिए आज हम तेरे चरणों में परणित होना चाहते हैं।
मेरे प्यारे महानन्द जी आज मुझे प्रेरणा देते चले जा रहे हैं कि आज का वह पुनीत ! दिवस है, आज का यह सूर्य दिवस माना गया है, प्रकृति पर्व, माना गया है, चन्द्र पर्व, माना गया है। ऐसा हमारे यहाँ परम्परा से ही माना गया है। मेरे प्यारे महानन्द जी ! दीपमालिका के सम्बन्ध में कुछ अपना प्रकाश चाहते हैं और इनकी इच्छा यह भी है कि मैं भी दो शब्दों में दीपावली के सम्बन्ध में अपना वाक्य प्रकट कर सकूं। परन्तु आज तो देखो, जैसा समय होगा उसके अनुकूल वाक्य प्रकट किया जा सकेगा।
आज का वह परम पुनीत पर्व है जिस दिवस में हमारे महापुरुषों के द्वारा राष्ट्र में दिपावली के दिवस यह इत्यादियों का आयोजन होता था। मुझे वह भगवान राम का काल स्मरण आता रहता है। उससे पूर्व रघु परम्परा थी। भगवान् कृष्ण का आदर्श जीवन था। वह आदर्श मुझे स्मरण आ रहे हैं। क्योंकि उस समय जो मानवीय पद्धति थी, उसी पद्धति के आधार पर दीपमालिका का निर्माण होता है। क्योंकि आज का वह पुनीत दिवस है जिस दिवस कृषक के गृह में अन्न आता भी है। ओर पृथ्वी के गर्भ में

बीज की स्थाना करता भी है। आज का वह दिवस है कि आज के दिवस पृथ्वी के गर्भ में बीज की स्थापना करने के पश्चात् कृषक अपने कुटुम्ब को लेकर सुन्दर यज्ञ करता है। क्योंकि सुगन्धिदायक वेद के अनुसार उस प्रकृति की उपासना, दीपमालिका के पर्व के द्वारा उपासना करता है दीप कहते हैं दीपम् प्रकाश को और मालिका कहते हैं जो प्रकाश से बिन्धी हुई हो। मानो यह जो प्रकृति है इसको दीपमालिका कहते हैं। यह ब्रह्म की चेतना से गतिशील दृष्टि पात हो रही है इसीलिए इसको हमारे यहाँ दीपमालिका कहा जाता है। तो हमारे यहाँ कृषकों ने कहा है राजाओं ने कहा है, सब प्रजाओं ने कहा कि भाई। अब यज्ञ करो। क्योंकि इससे हम दीपमालिका की उपासना करें। हम देवी सम्प्रदायवादी बनें, देवी की उपासना करें, देवी नाम प्रकृति को कहा गया है जो प्रकाश से पिरोई हुई है। एक एक कण, जितना परमाणुवाद है, अणुवाद है जितना भी इसमें देखो, सूर्य, चन्द्रमा नाना प्रकार के नक्षत्र अपनी अपनी गति पर रमण कर रहे हैं भ्रमण करने के नाते उसको दीपमालिका कहा जाता है। जैसा प्रकाश देने वाले तारा मण्डल होते हैं, परन्तु एक ऋतु में पिरोएं हुए होते हैं। उनकी एक मालिका होती है जैसे मन के और धागा होता है और वह माला कहलाई जाती है यह दीपमालिका कहलाई जाती है।

आज जब मैं दीपमालिका के सम्बन्ध में अपना विचार देना प्रारम्भ कर देता हूँ तो मुझे यह समय प्राप्त नहीं होता कि मैं क्या उच्चारण करूं? क्योंकि दीपमालिका का महत्व हमारे इस मानव शरीर से सुगठित रहता है। इसमें भी प्रकृति अपना कार्य करती रहती है। दीपमालिका अपना कर्त्तव्य करती रहती है। और वह कैसा सुन्दर कि एक एक कण उस पुनीत आत्मा से चेतना से पिरोया हुआ होता है। इसीलिए इसको दीपमालिका कहा जाता है।

हमारे यहाँ परम्परा में भगवान् राम के काल में, तथा इससे भी पूर्व मनु परम्परा में एवं राष्ट्रीय परम्परा में भी इस प्रकार का उद्योग किया गया कि प्रत्येक मेरी पुत्रियों को, मानव को और माताओं को अपने गृहों में प्रकाश कना चाहिए। जिससे यह प्रकृति प्रकाश से आच्छादित हो गया। देखो, सुगन्धि में ओत प्रोत होती हुई प्रकृति का कण

कण सुगन्धिदायक बन जाएं। जिससे कृषक की जो कृषि है वह पवित्र और महान होगी। पृथ्वी के गर्भ में दुर्गन्धि के स्थान में सुगन्धि ओत प्रोत होकर के मानव का हृदय वास्तव में परिवर्तनशील बनता चला जाय क्योंकि संसार में जितना भी आयोजन है, दीपमालिका हो, होलिका हो कोई भी किसी प्रकार का पर्व हो परन्तु उसमें मानव के हृदय को परिवर्तन करने का प्रयास किया जाता है।

हमारे यहाँ परम्परा में एक वाक्य और माना गया है, भगवान राम का लंका विजय के पश्चात् दीपमालिका के दिन ही राजतिलक किया गया था। उससे पूर्व काल से ही यह दीपमालिका का पर्व तो सृष्टि के आदि से चला आ रहा है। देवताओं ने इसे अपना पर्व चुना है। क्यों चुना है? प्रकृति की उपासना करने के लिए जिससे प्रकृति हमारे शरीर में कार्य करती रहो। वैज्ञानिक रूपों से कुछ ऐसा भी माना गया है कि यह जो शब्द ऋतु आती है इसमें मानव के शरीर में पित्त प्रधान होता है। उसकी शान्ति के लिए प्रकृति में सुगन्धि होना चाहिए। जिससे प्रकाश हो। पित्त की प्रधानता में, तेज की प्रधानता में सुगन्धि जब मानव के हृदयों में प्रविष्ट होती चला जाएगी उस समय मानव का हृदय मानवता से पुनीत और पवित्रता में परणित होता चला जाएगा और भी कोई वैज्ञानिक सिधान्त हैं कि यह जो पृथ्वी है, कृषक की जो भूमि है इसमें में जो अन्न की उपज होती है, अन्न आता है परन्तु इस अन्न में नाना प्रकार की वनस्पतियों का शोधन किया जाता है। अपने तेज के द्वारा यज्ञ की क्रियाओं द्वारा अन्न भी पवित्र होता है। चन्द्रमा की जब क्रान्ति आती हैं, चन्द्रमा की क्रान्ति आज नहीं है, आगे आती रहेगी। चन्द्राणी गच्छन्त ब्रह्मे लोके प्रभा अस्ति सुप्रजा। आचार्य कहते हैं कि चन्द्रमा की क्रान्ति की उपासना की जाती है क्योंकि चन्द्रमा की कान्तियों से विशेषकर पृथ्वी का सम्बन्ध होता है। मानव के जीवन में अमृत और शीतलता को प्रविष्ट किया जाता है। इसलिए आचार्यों ने कहा कि इसमें सुगन्धि होनी चाहिए। वेद के पण्डितों के द्वारा यज्ञ होने चाहिए। देखो, जटा पाठ् माला पाठ, घन पाठ, विर्सग पाठ, उदीत्त, अनुदात्त नाना प्रकार के वेद मन्त्रों, के पाठ द्वारा वेद की प्रतिभा, वेद का ज्ञान मानव के समीप होना चाहिए। इस ऋतु में ऐसा भी माना गया है कि यह तेज का ऋतु है। इसमें सब महापुरुषों का

एकत्रित हो करके विचार विनिमय प्रारम्भ करना कर्त्तव्य है। क्योंकि हे मानव अब ! शरद् ऋतु का काल का रहा है, हेमन्त ऋतु आने वाली है, इन ऋतुओं में अपने जीवन का आहार और व्यवहार पवित्र बनाना चाहिए। इस प्रकार हमारे यहाँ महापुरूषों की विचारधारा वास्तव में परम्परा से ही मानी गई है।

आज इस सम्बन्ध में मैं एक वार्त्ता भी प्रकट करने वाला हूँ। हमारे यहाँ भगवान कृष्ण के राष्ट्र में भी प्रायः ऐसा होता रहा है। आज दीपावली के दिवस उस पुनित आत्मा भगवान मनु जी का जन्म हुआ था। जिसने सबसे प्रथम राष्ट्र का निर्माण किया था। सब ऋषि मुनियों ने उत्सव मनाया। प्रत्येक गृह में प्रसन्नता हुई। भगवान मनु से पूर्व संस्कार में कोई राजा नहीं था। आज का दिवस यह भी है जिस दिवस में देखो, आचार्यों ने सबसे प्रथम यज्ञ किया था। सबसे प्रथम आदित्य, आंगेरा वायु इत्यादि ऋषियों ने अपने अपने वेद की पोथी को लेकर के मानो वेदों के कुछ चुने हुए मन्त्रों को लेकर के यज्ञ किया था। दिपावली का पूजन किया। प्रकृति का पूजना करना इस शरद् ऋतु में बहुत ही अनिवार्य होता है। क्योंकि ऋतु नाम भी प्रकृति को कहा जाता है। इसीलिए हमारे यहाँ परम्परा से, वैज्ञानिक रूपों से ऐसा माना गया है। आचार्यों ने कहा, महर्षि वायु जी ने अंगिरा जी से कहा कि महाराजऐसा क्यों है !, उन्होंने कहा कि आज का दिवस यह दिवस है जब सबसे प्रथम हमारे यहाँ यज्ञ का आयोजन होता है। क्योंकि श्रवणी के पर्व पर वेदों का निर्माण हुआ उसके पश्चात् यज्ञों का प्रार्दुभाव हुआ क्योंकि आदि ब्रह्मा से सृष्टि के प्रारम्भ में यज्ञ का प्रार्दुभाव होता है। ऐसा कहा है कि यज्ञ करने से ही मेघों की उत्पत्ति होती है। जलों का उत्थान होता है। उसी से सुन्दर दृष्टि हुआ करती है। कृषक की भूमि पवित्र होती है। और नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता है। क्योंकि मानव के जीवन का जो निर्माण है, मानव के जीवन की जो आख्याति है वह मानो देखो, इस प्रकृतिवाद से, प्रकृति में नाना प्रकार की वनस्पतियों से हुआ करती है। अन्न से ही मानव के जीवन का निर्माण होता है। इसीलिए आज का यह पुनीत दिवस है जो सृष्टि के आदि से चला आ रहा है। अरबों वर्ष हो गएं जब अंगिरा आदि ऋषियों ने वेदों के द्वारा इस संसार में सबसे प्रथम यज्ञ

किया था। आज मैं इन वाक्यों को विलम्ब देने नहीं जा रहा हूँ। वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है कि आज हमें अपनी उस मानवता पर सदैव विचार करना चाहिए।
हमारे साहित्य में परम्परा से चर्चा चली आ रही है। उसके पश्चात् परम्परा से राजाओं के गृह में यज्ञ होता, राष्ट्र में प्रजा को सुन्दर उपदेश देना हमारे यहाँ चला आ रहा है। जहाँ वेद का निर्माण है, वेद की प्रतिभा का वर्णन आता है वहाँ चरित्र का भी वर्णन आता है। क्योंकि मानव के जीवन का सम्बन्ध मानव के चरित्र से विशेषकर रहता है। मेरी प्यारी माताओं के विज्ञान से विशेष कर रहता है। मेरी प्यारी माता के शरीर में जितना विज्ञान है प्रभु ने दिया है उस विज्ञान के साथ वेद की प्रतिभा वेद का अध्ययन करना शिरोमणी माना गया है। मेरे प्यारे हमारे यहाँ माता अनुसूर्या ने आज !ऋषिवर ! आज के !के दिवस महर्षि अत्रि मुनि महाराज से मध्यम रात्री में कहा कि प्रभु दिवस हमें क्या करना चाहिए। महर्षि अत्रि मुनि ने कहा था, सम् भवनाति देवगंप्रभातिरुद्रो मातप्रभे अकृत्रि रुशवानी देवं वेदाः। हे प्रिय देवी आज के दिवस तुम्हें वेद की प्रतिभा ! को जान लेना चाहिए। क्योंकि माताओं के द्वारा विशेषकर कई विद्याएं होती है। एक तो आयुर्वेद का जितना ज्ञान मेरी पवित्र माता को होना चाहिए इतना पुरुषों को नहीं होना चाहिए। माता काजो जीवन है वह दर्शनों से सुगठित रहता है। दर्शनों से विशेष सम्बन्ध रहता है। क्यों रहता है? क्योंकि जितना भी माता के द्वारा दर्शन होगा उतना ही माता के गर्भ स्थल में होने वाला बालक हैं, उसका निर्माण भी दार्शनिक होता चला जाएगा। माता का जी गर्भाशय है वह संसार में सबसे प्रथम विश्वविद्यालय कहलाया गया है, जहाँ विश्व का जो ज्ञान राष्ट्र में नहीं होता है वह माता के गर्भस्थल में हो जाता है। यदि माता सम्पन्न विद्या से सुशोभित हो तो ऐसा हमारे यहाँ परम्परा से माना गया है। इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना देना नहीं चाहता हूँ। यह तो ज्ञान है। मैं इसमें चलता चला जाऊंगा किन्तु इसमें मुझे मार्ग प्राप्त नहीं होगा।
उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि आज हम परम्परा को अपनाने का प्रयत्न करें। उसको शुद्ध रूपों में लाने का जो ऋषि मुनियों ने अपनी शुद्ध भावनाओं से शुद्ध विचारों

से राजा महाराजाओं ने सबने इसको पवित्र हृदय से माना है, उसी शुद्ध हृदय से यदि हम स्वीकार करते रहेंगे, तो हमारा जीवन सुन्दर बनेगा, महान बनेगा, पवित्र बनेगा, राष्ट्र जीवन और चरित्र दोनों का सुन्दर निर्माण होता रहेगा। आज मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। वाक्य उच्चारण करने का केवल अभिप्राय यह है कि हम अपनी मानव जाति को, मानवता को बनाने का प्रयत्न करें। और महान बनने के लिए हम सदैव कटिबद्ध रहें। इसी में हमारा जीवन है, इसी में हमारी मानवता है, इसी में हमारा राष्ट्र, समाज और धर्म और यज्ञ इसी में परणित होता रहता है। इसीलिए आज हमें इसके ऊपर विचार विनिमय करना चाहिए। आज अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ मेरे प्यारे महानन्द जी अपने कुछ सूक्ष्म से शब्दों में अपनी विवेचना ! प्रकट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यमा रथम् देवत्र प्रजाम् अत्र चत्रकृति विश्वानरोति भागाः। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव गुरुदेव ने अभी !मेरे पूज्यपाद !अथवा भद्र समाज !ऋषि मण्डल ! अभी अपने विचार प्रकट किये। उन विचारों में कितनी सार्थकता महत्व और मानव के जीवन के सम्बन्ध में कितने गम्भीर विचार थे। मुझे इस सम्बन्ध में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के समक्षमैं कोई वाक्य उच्चारण करूं तो शोभा नहीं देता। क्योंकि गुरुदेव तो सदैव पूजनीय ही होते है। उनका पूजन करना, उनकी वार्त्ताओं को स्वीकार करना, अपने हृदय को उज्ज्वल बनाना हमारा कर्त्तव्य है। तो आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक वाक्य प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। केवल वाक्य उच्चारण करने की अभिप्राय यह है कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव आज दिपावली के सम्बन्ध में अपना कुछ वाक्य प्रकट कर रहे थे। आज मैं अधिक चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। इस सम्बन्ध मे केवल वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय एक ही होगा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते हैं कि तुम अपने वाक्यों को कटुता में ले जाते हो परन्तु मैं इन वाक्यों को कटुता में नहीं ले जाता हूँ। इस संसार में यथार्थ उच्चारण करने का नाम ही मानो कटुता माना जाता है। प्रायः ऐसा होता रहा है कि जो भी यथार्थ वाक्य उच्चारण करता है उसी को इस संसार में नाना प्रकार की यातनाएं, नाना प्रकार के कष्ट दिए हैं। उसका परिणाम यह हुआ है कि वे

संसार से चल दिए हैं। इसी प्रकार में यथार्थ उच्चारण करने के लिए सदैव कटिबद्ध रहता हूँ। उसे उच्चारण करने में मुझे संकोच नपहीं होता। मैं उसमें किसी प्रकार को संकुचित्त भावनाओं को नहीं लाना चाहता हूँ।

आज के समाज में, आज परम्परा से दीपमालिका के सम्बन्ध में मेरे पूज्यपाद अपना प्रकाश दे रहे थे। आज के संसार में महाभारत के समय से इस संसार में, इस भारतभूमि पर क्या, तो सर्वस्व विस्व की चर्चा कर रहा हूँ। क्योंकि तब से इस संसार में अज्ञानता की इस प्रकार प्रतिभा आती रही है। जहाँ जिन गृहों में यज्ञ होते थे जिन गृहों में मानो यज्ञ की सुगन्धि होती थी आज मैं उन गृहों में दुर्गन्धि को दृष्टिपात करता रहता हूँ। आज वहाँ सुगन्धि नहीं है। उसे दुगन्धि कहना चाहिए। जहाँ विचारों की दुर्गन्धि क्या, प्रकृति कुछ अंशों को लेकर के उनसे भी दुर्गन्धि करता रहता है। जिन गृहों में मेरी पुत्रियां, मेरी बालिकाएं ब्रह्मचारी विद्यार्थी गण सब यज्ञ करने के लिए तत्पर होते थे, अग्नि की पूजा करने के लिए मानो सुगन्धि देने के लिए, आज वही बालिका दुर्गन्धि उत्पन्न करने के लिए, सदैव तत्पर रहती है। क्या मानव समाज का यही चरित्र है? इसकी मैं क्या उच्चारण कर सकता हूँ? इसको चरित्र नहीं कहा जा सकता। इसकी दुर्गन्धि ही कहा जा सकता है। क्योंकि जहाँ दर्शनों को शिक्षा, उपनिषदों इत्यादियों का वितरण और चित्रण चला आ रहा है। वह हमसे दूर होता चला जा रहा है। इसका मूल कारण क्या है? इसका मूल कारण है मानव का स्वार्थवाद। क्योंकि जब मानव में स्वार्थवाद आ जाता है तो देखो, छोड़ भी यहाँ महापुरुष आ जाएं, उस महापुरुष के वाक्यों को क्या भ्रष्ट कर दिया जाता है। मैं इसकी इस प्रणाली आधार पर उच्चारण कर रहा हूँ जो मैं आधुनिक काल में इस संसार में दृष्टिपात कर रहा हूँ कि आज के इस दिवस पर जिन महापुरुषों ने अपने अपने जीवन की आहुतियां प्रदान कर दी हैं, अपने जीवन में त्याग किए हैं। त्याग भावनाओं का परिणाम यह होता है कि उनकी त्याग भावनाओं को भी मानव अपने स्वार्थवाद में उसे ऐसे नष्ट करता चला जा रहा है। जैसे अग्नि ईधन को भस्म करती चली जा रही है।

मैं दीपमालिका के सम्बन्ध में प्रकाश देना चाहता हूँ मानी जहाँ कृषक अपने गृहों में

सुगन्धि करते हैं परन्तु वह दूसरे रूपों से की जाती है। उन रूपों को लाने के लिए मैं अपना वाक्य प्रकट करने के लिए तत्पर रहता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी दीपमालिका के सम्बन्ध में जो अपना विचार दिया है। उसके सम्बन्ध में मुझे शेष चर्चा करनी नहीं हैं। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि यहाँ इन पद्धतियों को नष्ट करने के लिए नाना व्यक्ति आये। परन्तु यह बीज रूपी वेद ज्योति नष्ट नहीं हो सकी। इसका मूल कारण क्या? कोई न कोई महापुरुष प्रभु के आँगन में आती रहा है। अपने जीवन का त्याग करके यहाँ से चला गया है। और जाने के पश्चात वह जो परम्परा है मर्यादा है वेद का जो प्रकाश है वह ज्यों का त्यों रहा है। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन प्रायः आ सकता है। परन्तु इतना नहीं जितना यह संसार लाना चाहता था।

मुझे स्मरण आता रहता है। मैं महात्मा मुहम्मद की चर्चा करता हूँ। महात्मा ईसा की चर्चा करता रहता हूँ। मानो देखो, संसार में इस भारत भूमि में आकर के नाना प्रकार की शिक्षाओं का अध्ययन किया। महात्मा ईसा का जीवन मुझे स्मरण आता रहता है। महात्मा ईसा यहाँ जहाँ महाराज हरिश्चन्द्र अपने राष्ट्र को त्याग करके गंगा के तट पर रहे उस नगर में उसी काशी में दस वर्ष तक विद्या अध्ययन करके यहाँ से गये। उन हूण जाति के व्यक्तियों ने उन्हें अपनाने का प्रयास किया। और अपना करके ही रहा जो अपृत होता है। उन मूल धाराओं को विचार विनिमय कर लेना चाहिए। मुझे इनसे कोई द्वेष नहीं है। यथार्थ वाक्य उच्चारण करने के लिए मुझे कोई संकोच नहीं होता है। महात्मा मुहम्मद को महात्मा कहते हैं परन्तु मैं उसे महात्मा नहीं कहा करता हूँ। मैं तो उसे यह कहा करता हूँ कि ज्ञान में वे बहुत अधूरे थे और भोग विलासों में सदैव परणित रहते थे। राष्ट्रवाद की परम्परा की तो वास्तव में ऊँचा बनाते थे। परन्तु जहाँ धर्म और मर्यादा है उससे बहुत दूर थे। इतने दूर थे जितना पृथ्वी से सूर्य दूर रहता है। परन्तु इन वाक्यों को उच्चारण करना अब मुझे शोभा नहीं दे रहा है। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय केवल यह है कि आज मैं उन वाक्यों को यथार्थ रूपों में उच्चारण करने लगता हूँ तो यह संसार कह सकता है कि यह महानन्द क्या उच्चारण कर रहा है? कैसी मूर्खों वाली वार्त्ता उच्चारण कर रहा है? परन्तु यह मूर्खों वाली वार्त्ता नहीं। यथार्थ रूपों की

वार्त्ता प्रकट करने में मुझे न किसी प्रकार का अपराध होता है न संकोच होता है।
यह मैं उच्चारण कर सकता हूँ कि संसार को दीपावली के दिवस अपना संकल्प धारण करना चाहिए। हम महात्मा दयानन्द की, महात्मा शंकर की वार्त्ताओं को स्वीकार कर अपने जीवन को उन्नत बना सकते हैं। क्योंकि महात्मा शंकराचार्या ने वैदिकता के लिए अपने जीवन की आहुति दे दी। महात्मा दयानन्द ने अपने जीवन की आहुति प्रदान कर दी। किसलिए? केवल वेद की प्रतिभा के लिए। वेद की जीवन के लिए मानव को सदैव कटिबद्ध रहना चाहिए। आज कोई मानव यह कहता है आज मानव संसार के मानवता के प्रवर्त्तक कहलाए गये। ईश्वर की प्रेरणा के आधार पर जिनका हृदय और मस्तिष्क दोनों वेदना से परणित हो जाता है, भरण हो जाता है वे मानव संसारके प्रलोभनों में नहीं आते हैं। सदैव संसार के द्रव्यवाद से उनका जीवन बहुत ऊँचा होता है, विशाल होता है, महत्ता वाला होता है। इसीलिए आज हमें उनके पदचिन्हों पर चलना चाहिए। उन्हीं की धाराओं को अपनाना चाहिए। यदि मैं आज दयानन्द के मानने वालों के विचार प्रकट करने लगूंगा तो संसार यह कहेगा कि यह क्या उच्चारण करने लगा है। महात्मा दयानन्द ने अपने विचार तो यथार्थ दिए हैं परन्तु उनके मानने वाले तो ऐसे अशुद्ध मार्ग में ऐसे स्वार्थवाद में परणित हो गएं हैं कि उन में न द्रव्य का त्याग हैं न जीवन का त्याग है। जिस त्याग के लिए उन्होंने अपना बलिदान किया अपनी जीवन की धारा को त्याग दिया। अरे, केवल प्राणी से उच्चारण करने से संसार ऊँचार नहीं बनता या धर्म और वेद ऊँचा नहीं बनता। वेद उस काल में ऊँचा बनता है जब मानव अपने जीवन को क्रियात्मक बनाता है और महान बनाता है।
मुझे स्मरण आता रहता है। भगवान राम का जीवन कितना क्रियात्मक था। भगवान कृष्ण का जीवन संसार में कितना क्रियात्मक रहा था। आज जिनका जीवन क्रियात्मक रहा है उन्हीं के जीवन में एक महत्ता आई है। संसार के लोकप्रिय बनकर के, राष्ट्र के क्या विश्व के लोक प्रिय बनकरके वे संसार सागर से पार हो जाते हैं। यह आज का वाक् मैं प्रकट करने जा रहा हूँ। पर आज मानव में रूढ़िवाद है। महर्षि दयानन्द ने एक वाक्य कहा बुद्धि के अनुसार संसार के प्रत्येक विद्या को अपनाने का प्रयास करो। उसी

को अपनाना हमारा धर्म और मानवता कहलाती है। वह वेद की प्रतिभा जो अन्तःकरण की प्रेरणा है उसी के आधार पर अपने कार्य को करते चले जाओ। हमें ऐसा करना चाहिए। आज हमें उन महापुरुषों के वाक्यों को लेना चाहिए। भगवान राम ने एक समय अयोध्यावासियों से कहा था अयोध्यावासियों आज मैं रावण को विजय करके अयोध्या ! में आ पहुंचा हूँ। राजा को वध करके मुझे अयोध्या का नरेश बनाना चाहते हो, तो तुम्हें अपने सदाचार और मानवता और वेद की प्रतिभा को अपनाना होगा। संसार के लोगों की संस्कृति से ओत प्रोत करना होगा। अन्यथा मेरा राजा रावण और मेघनाद जैसे त्यागी राजाओं को नष्ट करने का कोई अभिप्राय शुद्ध रूप से नहीं हो सकेगा। क्योंकि संस्कृति के बिना मेरे जीवन में सार्थकता नहीं आ सकेगी। जब तक भील, द्रविड़ इत्यादियों को अपनाया नहीं जाएगा तब तक मेरा अयोध्या राष्ट्र ऊँचा नहीं बनेगा। तो तब प्रजा ने उस वाक्य को स्वीकार किया। राष्ट्र में वह प्रतिभा, वह जागरूकता आ गई जिसके जागरुक होने के पश्चात भगवान राम का राष्ट्र पवित्रता में परणित हो गया। सदाचारता में परणित हो गया था। इसीलिए हमें उस महत्ता, को अपनाना है।

आज मैं इन वाक्यों को प्रकट करने चला हूँ। मैं आज उन महापुरूषों की अपने हृदय से वार्त्ता प्रकट कर रहा हूँ कि जिससे वेदी सदा जीवित रहे, सदैव उसमें प्रकाश होता रहे। ऐसी मेरी सदा कामना रहती है। इस कामना के साथ इन वाक्यों की समाप्त करने जा रहा हूँ। इन वाक्यों को उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है कि हमें उनके वाक्यों पर चलना, उनके वाक्यों को अपना कर वेद को अपनाना है। क्योंकि वेद संसार में सार्वभौम है। यही वेद का प्रकाश और भी लोक लोकान्तरों में परणित रहता है। जहाँ भी मानव रहते हैं, प्राणी रहते हैं, जहाँ राष्ट्र व्यवस्था है, जिस भी लोक में है वहाँ वेद का प्रकाश भी अवश्य है। इसीलिए यह लोकप्रिय माना गया है। क्योंकि वेद नाम प्रकाश को कहा गया है। कौनसा स्थान ऐसा है जहाँ प्रकाश नहीं होता। प्रकाश वहाँ नहीं होता जो मानव अपने आहार व्यवहार और चरित्र को नष्ट भ्रष्ट कर लेता है। वहाँ प्रकाश नहीं होता। वहाँ ऐसे अन्धकार को मानव अपने प्रकाश को लुप्त करना चाहता है, समाप्त करना चाहता है। वह चाहता रहता है कि मुझे कोई दृष्टिपात न कर ले। मैं सदैव अपने

वाक्यों को प्रकाश में लाता रहता हूँ। मुझे संसार समय पर प्राप्त होता है तो मैं अपने विचार व्यक्त करता रहता हूँ।

परन्तु वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय क्या है? हम सदैव महापुरुषों की छत्रछाया में पनपते रहें। उनके विचारों को अपने जीवन में धारण करते हुए इस संसार सागर से पार होते रहें। ऐसी सदैव हमारी कामना रहती है। परन्तु ऐसे महापुरुषों के निर्माण सदैव होने चाहिए। ऐसी मेरी सदैव कामना और इच्छा रहती है। इस कामना के साथ मैं अपने वाक्यों को विराम दे रहा हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज अपना विचार दिपावली के सम्बन्ध में दिया। मैं भी आज दिपावली के सम्बन्ध में इतना उच्चारण करना चाहता हूँ कि प्रत्येक गृहों में यज्ञ होने चाहिएं। दुर्गन्ध नहीं होनी चाहिए। हम मोहम्मद के मानने वालों की वार्त्ताओं को क्यों मानते हैं? जबकि हम अपनी संस्कृति को त्याग देते हैं। संस्कृति को त्यागना हमारा कर्त्तव्य नहीं है। क्योंकि हमारी संस्कृति एक महत्ता में परणित रहती है। बहुत सी अच्छाइयां मुहम्मद के द्वारा भी है। बहुत सी अच्छाइयां महात्मा ईसा के द्वारा भी हैं। जितनी भी अच्छाइयां वे सब वेद में है। परन्तु उन अच्छाइयों को एकत्रित करके अपनी संस्कृति और मर्यादा को नहीं त्यागना चाहिए। यदि मानव के द्वार से संस्कृति का स्तम्भ चला गया मानवता चली गई तो उस मानव के द्वारा कुछ नहीं रह जाता। जैसे मानव के शरीर में प्राण के चले जाने के पश्चात् मानव के जीवन का स्तम्भ चला जाता है इसी प्रकार मानव वेद के विचारने वाले जो मानव होते हैं यदि उनके द्वारा अपनी संस्कृति चली गई, अपनी मानवता चली गई, अपना चरित्र चला गया तो उस वेद की विचार धारा का स्तम्भ चला जाता है। स्तम्भ के चले जाने के पश्चात् मानवता नष्ट हो जाती है। इसीलिए मानव का जो स्तम्भ है वह प्रकाश है, प्रकाश को लाना चाहिए, अन्धकार को नहीं लाना चाहिए। ऐसे ज्ञान को अपनाना चाहिए जिसमें ज्ञान और विज्ञान, परमाणुवाद, प्रकृतिवाद, सूर्यवाद, तारामण्डलवाद ध्रुववाद जेष्ठाय नक्षत्रवाद संसार के लोक लोकान्तरों का ज्ञान व विज्ञान जिस संस्कृति में हो उसको अपनाने में मानव को संकुचित्त नहीं होना चाहिए। ऐसा मेरा

यह विचार है। इन विचारों के साथ में मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य !आज मेरे प्यारे !ऋषि मण्डल !धन्य हो। मेरे प्यारे.......... महानन्द जी ने अपने कुछ विचार दिये। परन्तु मुझे तो इन विचारों का अधिक परिचय नहीं है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने कहाँ कहाँ से वार्त्ता लाकर के एकत्रित की हैं। हम ! यह नहीं जान पाते कि इन्होंने यह वार्त्ता वायु मण्डल से ग्रहण की हैं या विचारों से ग्रहण की हैं। इन वाक्यों से हम बहुत दूर रहते हैं। परन्तु चरित्र के सम्बन्ध में और संस्कृति के सम्बन्ध में जो इन्होंने अपना विचार दिया है वह विचार सार्वभौम है क्योंकि सर्वत्र यह विचार ओत प्रोत रहता है। प्रत्येक मानव के लिए एक विचार सुगठित है। जहाँ तक इनका यह वाक्य है कि किसी महात्मा के सम्बन्ध में आलोचना करना कि वह धर्म के सम्बन्ध में नहीं जानते थे, अथवा जानते थे इस सम्बन्ध में मुझे कोई अधिक परिचय या लगाव नहीं रहता है। क्योंकि इनका वाक्य इनके साथ रहता है। मैं तो इनसे सदैव एक वाक्य कहा करता हूँ कि अपनी कटुता को त्याग देना ही यह महत्ता कहलाती है। चलो, कोई वाक्य नहीं, ये उच्चारण करते हैं यथार्थ वाक्य वास्तव में कटु ही प्रतीत होता है। ऐसा मुझे भी प्रतीत होता होगा।

आज महानन्द जी के विचार दिपावली के सम्बन्ध में रहे कि जहाँ यज्ञ होता है वहाँ दुर्गन्धी हो रही है तो आज हमें इन वाक्यों में अधिक प्रयोजन नहीं रहना चाहिए। जहाँ दुर्गन्ध होती है वहाँ सुगन्धी भी होती रहती है। क्योंकि प्रकृति स्वयं उसे सुगन्धि और शुद्ध पवित्र करती रहती हैं। रहा यह वाक्य की मानव उसकी अपनी वेद की, धर्म की प्रथा को त्याग देना ही संसार में मृत्यु कहलाई गई है। उस मृत्यु से पार होने का मानव को सदैव प्रयास करना चाहिए। महापुरुषों के वाक्यों को स्वीकार करना चाहिए। वेद की प्रतिभा को अपनाना चाहिए। क्योंकि वेद से ही संसार का ज्ञान उत्पन्न होता है। संसार में दो प्रकार का ज्ञान होता है एक तो मानव का आध्यात्मिक ज्ञान होता है और एक होता है जिसे हम समाजिक ज्ञान कहते हैं। सामाजिक जो प्रथा होती हैं, सामाजिक जो ज्ञान होता है, समाज का जो विचार होता है वह भी देखो, वेद से ही उत्पन्न होता है। मानव को कैसा रहना चाहिए, विचार कैसे होने चाहिए, पति पत्नि को किस प्रकार

गृह को शुद्ध बनाना चाहिए। सन्तोनोत्पति कैसी होनी चाहिए उसमें कितना ज्ञान होना चाहिए? माता का कैसा पठन पठन होना चाहिए? यह सब एक लोक प्रिय ज्ञान होता है। उसमें बहुत कुछ प्रथा होती है। इसको हमारे यहाँ भौतिक वेदना कहा जाता है। रहा आध्यात्मिकवाद की विवेचना। आध्यात्मिकवाद से जितना भी दीपमालिका का सम्बन्ध है, दीपमालिका के विचार है। जैसे आत्मा है परन्तु आत्मा के साथ साथ पांच ज्ञानेन्द्रियां है, पांच कर्मेन्द्रियां हैं, मन बुद्धि, चित्त अहंकार है भी जीव की तरह तथा जीव द्वारा प्रकाशमान रहते हैं। परन्तु मालिका आत्मा को कहा जाता है। इस आत्मा से कहा जाता है। इस आत्मा से ही इन्द्रियों का सम्बन्ध रहता है। अथवा ऐसे उच्चारण कर लें कि इन्द्रियों का सम्बन्ध आत्मा का प्रकाश यदि नहीं होगा तो इन्द्रियां अपना कार्य नहीं कर सकेंगी। इसी प्रकार ब्रह्म की जो चेतना है, ब्रह्म एक दीप कहलाया गया है। मालिका संसार की चेतना को कहा जाता जो चेतना है, वह चेतना देखो, ब्रह्मा की ही चेतना से प्रकाशमान हो रही है। ऐसी हम प्रकृति की उपासना करने के लिए सदैव तत्पर रहे।

देव पूजा हमें सदैव करनी चाहिए। देव पूजा का अभिप्राय क्या है? देवताओं को देना। देवताओं को हम देते क्या हैं? देवताओं को हमें सुगन्धि देना है। अपने विचार देने हैं। और दर्शन में ऐसा भी कहीं कहीं आता है कि हमें अपने दुर्गुणों को भी त्यागना है। और देवतव को हमें लाना है। वह भी देवताओं की पूजा कहलाती है। इसीलिए आज हम इन वाक्यों को जानने का सदैव प्रयास करते रहें। क्योंकि इसको जानने से हमारे जीवन में शुद्धता आती है। पवित्रता आती है। मानवता आती है। जीवन में एक महत्ता का दिग्दर्शन होता है। इसको अपनाना हमारा कर्त्तव्य है। जैसे संसार में अच्छाइयों को अपनाओगे तो अच्छाइयां आएंगी। दुर्गन्धियों को अपनाने का प्रयास करोगे तो दुर्गन्धि जीवन में आती रहेगी।

वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है कि संसार में जैसा तुम अपने जीवन को बना लोगे, जैसा तुम्हारा कर्म होगा, तुम्हारी प्रतिभा होगी वैसा ही प्रभु ने जो यह जगत रचा है। यह एक प्रकार का कल्प वृक्ष है। इसमें जैसी भी तुम्हारी कल्पना जैसा विचार होगा, जैसा कर्म होंगे उसी प्रकार का तुम्हारा जीवन चक्र चलता रहेगा। बेटा !

महानन्द जी ने अपना जो !मैं अधिक विलम्ब नहीं देने जा रहा हूँ। आज मेरे प्यारे विचार दिया है उनमें से अशुद्ध वाक्यों को नहीं स्वीकार करना। ज्ञान और विज्ञान से सुगठित वाक्यों क ो, धर्म और मानवता को अपनाने का सदैव प्रयास करो। आज का हमारा वाक्य अब समाप्त हुआ अब वेदों का पाठ होगा। बजे आर्य समाज 9 प्रातः), गुहाटी में दिपावली पर्व पर दिया हुआ प्रवचन(

३ 28 07 1971 पुष्प 23 संसार मे जन्म धारण

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक् !ष, कुछ वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ जो पद्धतियां हैं वे प्रायः परम्परा से ही विचित्र और महान मानी गई है। हमारे ऋषि मुनियों ने वैदिक विचार विनिमय करने के लिए भिन्न भिन्न प्रकार का अनुसन्धान किया है। क्योंकि वेदों का ज्ञान अनन्त होने के नाते उसकी प्रतियां एक महत्ता में परिणत रहती है। क्योंकि मानव का जो ज्ञान होता है, उसमें अल्पज्ञता होती है और परमात्मा का जो ज्ञान है जिसे हम वैदिक प्रकाश रहते हैं वह नितान्त और गम्भीर माना गया है और अनन्तता में परिणत माना है। इसलिए हम उस महान वैदिक ज्ञान और विज्ञान को मापा नहीं करते हैं और न वह मापा ही जाता है। क्योंकि जिसमें अनन्तता होती है वह मापा नहीं जाता। मानव में सीमितता रहती है वह सर्वज्ञ वस्तु को किस प्रकार माप सकता है? इसीलिए हमारे ऋषि मुनि अनुसन्धान वेत्ता ही परम पिता परमात्मा को नितान्त कहते हैं और अन्त में नेति नेति का प्रतिपादन करने लगते हैं।

अब विचार यह आता है कि आज हम वेदों का ज्ञान और विज्ञान मापने नहीं आए हैं केवल आज हम उस मनोहर देव की महिमा का गुण गान गाने आए हैं जो हमारे जीवन का सदैव साथी बना रहता है, जिसकी महिमा में बेटा यह जगत सदैव रमण ! करता रहता है। हम उस उसने प्यारे प्रभु की महिमा का गुणगान गाने आ पहुंचे हैं। उसकी आभा का वर्णन करने आ पहुंचे हैं। जो हमारे जीवन का सदैव साथी बना रहता है हमारे में ही मानव को जो चेतनित बना रहा है आज उस महान दैविक परम्परा

को अपनाने के लिए हम सदैव तत्पर होने के लिए आए है। उसका विचार विनिमय करने के लिए आ पहुँचे हैं। जो सदैव महत्ता में परणित रहता है। जिसका महान विज्ञान है। महान उसका दीर्घदर्शन हैं उस अपने प्यारे प्रभु प्रभु की महिमा का आज हम गुणगान गाने आ पहुँचे हैं।

आज के वैदिक विचार मैं हम उस परम देव विष्णु की महिमा का गुणगान गा रहे थे। जो विष्णु आत्मा है, हमारे शरीर में रमण करने वाला पवित्र आत्मा है, आज हम उस मनोहर विष्णु की महिमा गुणगान गाने आए हैं। हे विष्णुतू कितना ! पवित्र है तेरी ! महत्ता में यह जगत सदैव रमण करता रहता है। आज हम विष्णु ही बनना चाहते हैं। प्रत्येक मानव अपने मन में यह कल्पना करता है कि मैं विष्णु बनाना चाहता हूँ। हमारे हृदय में भी एक विचार उत्पन्न होता है कि हमें विष्णु बनाना चाहिए। परन्तु विष्णु उस काल में बनता है जब विष्णु की आभा को हम अच्छी प्रकार जाने लेते हैं। विष्णु के नाना पर्यायवाची शब्द माने हैं। परन्तु यहाँ विष्णु नाम केवल आत्मा को ही माना है। आज के वैदिक विचार में विष्णु नाम आत्मा को माना है।

आत्मा के दो गुण हैं। इसी आत्मा के दो दो सहायक बने रहते हैं। एक को जय और दूसरे को विजय कहते हैं। क्योंकि जय और विजय दोनों ही इसके पुत्र वत कहलाते हैं। दोनों ही इसके समीप रहते हैंजय और विजय ही इस संसार को !, संसार की आभा को जानने वाले होते हैं। जय और विजय, ज्ञान और विवेक को कहा गया है। जब मानव में ज्ञान और विवेक हो जाता है मानव विवेकी बन जाता है। अहः वह ! उन गुणों को वाहन बनाकर के विष्णु मानो पवित्र बनता चला जाता है। इससे उस मानव की संसार में विजय हो जाती है।

आज हमें इस संसार में विजय ही तो पाना है। कोई अपने शत्रु पर विजय पाना चाहता है, कोई अपने मानव मानव का शत्रु बन करके विजय करना चाहता है। कोई राष्ट्रीय बन करके राष्ट्रवादी बन करके दूसरे राष्ट्रों पर विजय करना चाहता है। परन्तु प्रत्येक मानव विजय के लिए सदैव तत्पर है। कोई वैज्ञानिक बन करके लोक लोकान्तरों पर विजय पाना चाहता है। कोई साधक अपनी माना प्रवृत्तियों पर विजय करना चाहता है।

कोई मानव अपनी इन्द्रियों के ज्ञान को अनुशासन में लाना चाहता है। परन्तु जहाँ तक हमारा विचार होती हुई दृष्टिपात आती है। मेरी प्यारी माता अपने पुत्रों पर विजय चाहती है। परन्तु पिता भी यही चाहता है। आचार्य कहता है मैं ब्रह्मचारी की प्रवृत्तियों पर विजय पाना चाहता हूँ। विद्या पर विजय पाना चाहता हूँ परन्तु प्रत्येक मानव विजय के आँगन में ही भ्रमण करता रहता है। मानव यह चाहता रहता है कि मैं विजय चाहता हूँ।

हमारे यहाँ विष्णु के दो विमान हैं। दो ही उसके गण कहलाते हैं। जय और विजय। आज हमें दोनों जय और विजय को ही जानना है। दोनों ही बेटा विष्णु के गण ! इसीलिए ज्ञान और विवेक को कहा गया !कहलाए जाते हैं। जय और विजय बेटा है। आज हमें ज्ञान और विवेक दोनों को ऊँचा बनाना है। जब ज्ञान से हम संसार को प्रव !विजय कर लेते हैं और विवेक से बेटा◌ृत्तियों को विजय कर लेते हैं ज्ञान और विज्ञान से तो हम संसार पर छा जाते हैं। संसार हमें ऐसा प्रतीत होने लगता है।

यह संसार प्रभु की, विष्णु की विभूति माना गया है। यहाँ ज्ञान कहते हैं व्यापकता को। आज मैं जिस वस्तु को विजय करना चाहता हूँ वह विजय किस प्रकार हो सकती है? ज्ञान के द्वारा विजय हो सकती है ज्ञान से प्रयत्न करता हुआ मानव लोक में लोक ! प्रिय बन जाता है। लोक पर छा जाता है। छा जाने के पश्चात् वह जय कर लेता है। संसार में जय हो जाती है उसकी। अहः, उसके पश्चात जब विवेक उत्पन्न होता है अर्थात ज्ञान के पश्चात विवेक की मात्र ◌ा आती है जब विवेक उत्पन्न हो जाता है विवेक के उत्पन्न होने पर इस संसार से उस मानव का मन उपराम हो जाता है। मान अपमान की धारा नहीं रहती।

विचारना यह कि ज्ञान से ही संसार को विजय कर सकते हैं। ज्ञान ही हमारा एक ऐसा गम्भीर विचार है जिस विचार से हम ज्ञानी बन करके संसार के ऊपर हमारी एक महान सफलता हो जाती है। हमारे विचार अमिट रूप से अंकित हो जाते हैं। उसी का नाम तो ज्ञान कहा गया है। परन्तु हम संसार को विजय करना चाहते हैं। आज हमारे द्वारा ज्ञान होगा तो संसार का कार्य शीघ्र ही कर सकते हैं। संसार को हम ऊँचा बना सकते हैं। परन्तु जहाँ हमारा विचार यह आता है कि हम अपनी आभा को विचित्र बनाना

चाहते हैं, अपनी आभा को सुन्दर बनाना चाहते हैं। वहाँ जय मानो जय की ही हमें घोषणा करनी होगी। हम विष्णु बनाना ही तो चाहते हैं। परन्तु देखो, हम संसार पर छाना चाहते हैं। संसार पर कैसे छाएंगे? जब हम अपनी इन्द्रियों पर सबसे प्रथम छा जाएंगे। क्योंकि इन्द्रियों का ज्ञान हमारे समीप होगा। संसार हमारा सर्वत्र कुटुम्ब बन जाएगा और उस कुटुम्ब में हम शिरोमणी बन जाएंगे। तो हम संसार को विजय कर सकते हैं। संसार में हमारी प्रतिष्ठा हो सकती है। ज्ञान तो बेटा संसार में एक महान ! है। ज्ञान से ही संसार ऊँचा बना करता है। देखों मानव के द्वारा जो आभाएं उत्पन्न होती हैं वे ज्ञान के द्वारा होती हैं इसीलिए मानव में ज्ञान होनी चाहिए।

मुनिवरोंदेखो !, जय और विजय का प्रश्न होता है। दूसरा मानव के समीप विवेक माना गया है। अब विवेक पर आ जाते हैं। विवेक किसे कहते हैं? विवेक उसे कहा जाता है जो ज्ञान के पश्चात मानव में मौन पन आता है। मानो उसका प्रवृत्तियों से उस कुटुम्ब में हम सर्वत्र व्यापक अपनी प्रवृत्तियों को बना करके ज्ञान के द्वारा हम उसमें छा जाते हैं। अब वे जो इन्द्रियों के विषय हैं वे मानव के सिमटने लगते हैं। हृदय विवेक के द्वारा समाहित हो जाते हैं। मानो जय और विजय दोनों को हम विवेक की दृष्टि से हम दृष्टिपात करते हैं आज हमें विवेक को पान करता है विवेक क्या है? हम विवेक को जानना चाहते हैं। वेद का विचार भी यही कहता है। विवेक कहते हैं अपनी प्रवृत्तियों का संयम करने को। अपनी इन्द्रियों के विषयों से जो तरंगे उत्पन्न होती हैं जब उनपर विजय हो जाती है अन्तरात्मा में ही उनका दिग्दर्शन करते हैं, हृदय स्थल में ही उसको हम अपने में समाहित होता दृष्टिपात करते हैं तो संसार में मानव का आत्मा उपराम हो जाता है। संसार में यह जो नाना प्रकार का भयंकर विषयों का जगत प्रतीत होता है इससे मानव का आत्मा उपराम हो जाता है। मानव की धारा में विचित्र वाद आने लगता है।

आओ मेरे प्यारेमैं कहाँ चला जा रहा हूँ !ऋषिवर !? वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह कि हम विवेकी बनाना चाहते हैं। आत्मा को जानना चाहते हैं विवेकी जो पुरुष होता है वह मन और प्राण का दोनों का निरोध कर लेता है। दोनों का जब निरोध

कर लेता है। दोनों का जब निरोध हो जाता है दोनों का घृत बनाया जाता है। घृत बना करके हृदयरूपी जो यज्ञ वेदी है हृदय रूपी जो एक स्थली मानो है जब उसमें हम आहुति देते हैं तो वह जो हृदय में विवेक रूपी अग्नि मानो शान्त हो गई थी उसमें ज्ञान के द्वारा वह जब आहुति दी जाती है तो विवेक की अग्नि प्रदीप्त की जाती है। विवेक ऐसे प्रदीप्त हो जाता है जैसे मानो पूर्णिमा का चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त हो जाता है। इसी प्रकार आज हम उस विवेक को जाने। वह विवेक जो हमारे मानवीय जीवन को उत्तम बनाता है। क्योंकि विवेक से ही देवता कहलाते हैं। विवेक न हो तो मानो ऋषि ऋषि नहीं बनेगा। मानो मुनि मुनि नहीं बनेगा। क्योंकि मुनि में सबसे प्रथम ज्ञान आता है। ज्ञान के पश्चात विवेक आ जाता है। देखो, पाण्डित्य आ जाता है और पाण्डित्य के पश्चात विवेक अपना हो जाने के पश्चात बाल्क प्रवृत्ति बन जाती हैं। और बाल्य प्रवृत्ति वाले ही देखो, ऋषि को मुनि कहा जाता है।

आज हमें इस महान विष्णु को जानना है। जो विष्णु संसार में हमारे इस मानवीय शरीरों में व्याप्त रहा है। व्यापक रूप से व्याप्त रहा। अहः वह प्रेरणा दे रहा है। आज ! हमें उस प्रेरणा को स्वीकार कर लेना चाहिए। वाक्य उच्चारण करता हुआ दूर न चला जाऊं। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा केवल यही है कि आजहम उस महान विष्णु को जय और विजय दोनों जो उसके गण हैं उन्हें जानना चाहते हैं। विष्णु क्या है? तो विष्णु सूर्य को माना गया है। यह जो चेतना हमें दृष्टिपात आ रही है जो मानव के शरीर में अपना कार्य कर रही है वह विष्णु की ही प्रतिभा मानी गई है। इसी प्रकार जब हम राष्ट्रीय बन कर दूसरों को विजय करना चाहते हैं तो उस समय हम जय और विजय को अपने समीप लाते हैं।

आज जब दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करता है आक्रमण करता हुआ देखो, जय और विजय की घोषणा करता है। विष्णु बन जाता है। विष्णु बन करके रुद्र रूप धारण करके अपने राष्ट्र को उत्तम बनाता है। उसे महत्ता में लाता है। कभी उस राष्ट्र की प्रतिष्ठा समाप्त न हो जाए राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाला चालक जो संचालक होता है। वह चाहता है कि विष्णु की कितनी महत्ता मानी जाती है? राजा विष्णु बनकर रुद्र को

धारणा नहीं कर सकता उस विष्णु की आभा को नहीं जान सकता। वह राजा राजा नहीं कहलाता। क्योंकि वह उसको क्रियात्मक बनाने का जब प्रयास करता है तो उसका जीवन एक महत्ता में परणित हो जाता है। एक महत्ता की वेदी पर वह अप्रत आरूढ़ होने लगता है। आओ मेरे प्यारे मैं इस विष्णु की महान घोषणा करने जा !ऋषिवर ! रहा हूँ। जिससे राष्ट्र भी पवित्र बना करते हैं। मुझे स्मरण आ रहा है कि जब महाराजा भगवान राम विष्णु बन गए थे। महाराजा वशिठ मुनि के कथनानुसार जब विष्णु बन गए तो उन्होंने वियज करने के लिए विचारा। माता की आज्ञा पा करके भयंकर बन को चले गए। परन्तु वह कैसा विचित्र महापुरुष था? जिसके द्वारा एक महान क्रान्ति उसके मस्तिष्क में आती रहती थी। मुनिवरोंदेखो !, उन्होंने महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज से यही कहा कि महाराजमैं विजय कैसे प्राप्त कर सकता हूँ !? महर्षि भारद्वाज बोले कि हे रामआज तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो तो विष्णु बनो !। और जय और विजय दोनों को अपनाने का प्रयत्न करो। मानो देखो, नीतिज्ञ बनो। जिससे देखो, तुम्हारी विजय हो जाए। आततायी जो आक्रमणकारी है वह नष्ट हो जाना चाहिए। भारद्वाज के इस विचार ने भगवान राम के आँगन में ऐसा स्थान ग्रहण कर लिया कि उसी वाक्य को उन्होंने अपने में धारणा किया। उसी वाक्य को उन्होंने अपने मैं धारणा करने के पश्चात उन्होंने दोनों का मिलान किया। मिलान करके विष्णु रूप धारणा करके आततायी को नष्ट किया। जो राजा विष्णु नहीं बन सकता अपने राष्ट्र की प्रतिष्ठा को ऊँचा नहीं बना सकता। उत्तम ब्राह्मण समाज को चाहिए कि उस राजा को राष्ट्र से दूर कर देना चाहिए। जो ज्ञानो और विवेकी न हो। यहाँ तो विष्णु बनने की ही तो विचारधारा है। इसीलिए समाज में भी मानो देखो, विष्णु बनने की सदैव आवश्यकता रहती है। विष्णु वह कहलाता है जो इन्द्रियों पर वियज करने वाला संयम करने वाला अपनी उस महान वियज की अग्रणी बनाकर के अग्नि के सदृश बना करके वह अग्रणी बन करके समाज को पवित्र बनाता है। महान बनता चला जाता है। इसी प्रकार आज हमें विचारना है। विष्णु बन करके हम ज्ञान के द्वारा नाना प्रकार के इन लोक लोकान्तरों में रमण करने लगते हैं। जहाँ यन्त्रों का आवागमन हो जाता है। महत्ता में मानो रमण करता रहता है।

परन्तु वह इस अन्तरिक्ष के परमाणुवाद पर विजय पाना है परन्तु विष्णु बन करके ही तो विजय पाना है परन्तु विष्णु बन करके ही तो विजय प्राणी जाती है। विष्णु नाम मानव की प्रवृत्तियों पर संयम करना होता है। परन्तु ज्ञान से ही प्रवृत्तियों को शोधन किया जाता है। वे जो शोधन की हुई प्रवृत्तियाँ हैं उन्हीं से जय और विजय की दोनों की घोषणा की जाती है।

आओ मेरे प्यारे कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आता !आज मैं बेटा !ऋषिवर ! हूँ। मैं केवल संक्षिप्त परिचय देने चला आया हूँ। इससे पूर्व शब्दों में मानव हृदय की कल्पना कर रहा था। हृदयग्राहः घ्रतम् ब्रह्म व्यापः मानो जब मानव को विवेक उत्पन्न होता है विवेक से ही मानव संसार को वियज कर लेता है। मानो केवल भौतिक विष्णु बनने में हम एक राष्ट्र को ही वियज प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु जब अध्यात्मिक विष्णु बन जाते हैं तो हम संसार पर विजय करने लगते हैं। संसार में हमारी प्रतिष्ठा हो जाती है। मानो संसार हमारी उस महत्ता के आँगन में रमण करता रहता है। मेरे प्यारे ! मैं अधिक चर्चा प्रकट कराने नहीं आया हूँ। वाक्य केवल यह है कि यहाँ !ऋषिवर अपनी मानवीय धारा को विचित्र बनाने का प्रयास करें। मानव जीवन कैसे ऊँचा बनता है? जब बेटा ज्ञान और विवेक मानव के समीप होगा। विवेक और ज्ञान ही जय और ! कहलाते हैं। जो विष्णु के गण हैं। विष्णु नाम आत्मा को कहा गया है। आज हम हम अच्छी प्रकार ज !आत्मवत बनना ही चाहते हैं। आत्मा को बेटाानना चाहते हैं। जहाँ आत्मवान बनकर के मानव विवेक को धारण करले विवेकी पुरुष कौन है? विवेकी वह होता है जिसके हृदय स्थल में मानो हृदय की एक महान प्रतिष्ठा विराजमान होती है। उसी हृदय की हृदयता को हम सदैव जानना चाहते हैं। इस हृदय को हम सदैव पवित्र बनाना चाहते हैं।

आज हमें उस हृदयों को पवित्र बनाना चाहिए। जिन हृदयों में जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान होते हैं। क्योंकि इन संस्कारों के आधार पर ही मानव संसार में आता रहता है। विच्छेद होता रहता है। वही तो बेटा आत्मबल में व्यापक प्रवे अस्ति ! सुप्रजः नाम् मयु केवल हृदय कृति रुद्र श्रदः। मानो यह जो हृदय है इसी में कारण

और सूक्ष्म और स्थूल शरीरों की प्रतिष्ठा मानी गई है। इसी में इनके अंकुर विराजमान होते हैं। इसीलिए आज हमें विचारना है कि हम ज्ञानी और विवेकी बनने का प्रयास करें। जहाँ तक मैं यह विचारता रहता हूँ ज्ञान और विवेक हो तो मानव को ऊँचा बनाते हैं। विवेकी बना देते हैं और विवेकी जो पुरुष होता है वह महान कहलाया गया है। महत्ता में रमण करने वाला पुरुष होता है। आओ मेरे प्यारे मैं वाक्य उच्चारण !ऋषिवर ! करने अधिक नहीं आया हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय केवल हमारा कया है? कि हम अपनी उस मानवीय महत्ता पर विचार विनिमय करने वाले बनें। जहाँ हमें विष्णु बनना है।

विष्णु की हम कल्पना करते रहते हैं। परन्तु इस केवल कल्पना से ही मानव सुन्दर नहीं बन जाता। मानव सुन्दर इस काल में बनता है मानव की कल्पना भी यथार्थ हो। संकल्प भी यथार्थ हों और जीवन धारा भी पवित्र होनी चाहिए। वह मानव एक महान और उज्ज्वल कहालया गया है। आओ मेरे प्यारे मैं वाक्य उच्चारण करता !ऋषिवर ! हुआ दूर न चला जाऊं। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमें जय और विजय को दोनों को जानना है। जय और विजय विष्णु के दोनों ही तो सेवक हैं। दोनों ही कृतभानु कहलाए गए हैं। जिसके ऊपर मानव को प्रायः संयम करना है। विचार विनिमय करना है। इस विचार विनिमय के साथ हम वास्तव में विचित्र ता की वेदी पर आए हैं। और हम वास्तव में अपने उस महान प्रभु की महिमा का गुणगान गाने आए हैं। हे विष्णु तू कितना पवित्र है। हे विष्णु जब हम तेरे आँगन में आते है तो तू हमारे जीवन को सुन्दर बना देता है। हम तेरी उस महान अग्निमय ज्योति में ध्यानावस्थित हो जाते हैं। हे विष्णु तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाला है। जब तू हमारा कल्याणकारी कहलाया जाता है महत्ता की बेदी पर मानव सदैव रमण करता है। आप ऐसे पवित्र देव है, आप ऐसे अगम्य हैं, ऐसे आनन्दमयी आप ज्योति हैं, जिस ज्योति को मानन धारण करने के पश्चात और ज्योतियों को आवश्यकता नहीं रहती।

प्रभुहे माँ तू कितनी भोली है तू कितनी पवित्र है !आप कैसी मेरी पवित्र माँ है !, कि हम तेरे आँगन में आते हैं, तू विष्णु रूप से भी कहलाई गई है। शक्ति रूपों से तेरा

प्रतिपादन किया गया है। माँ तू कितनी भोली है। मानो जब हम तेरे आँगन में आते है, ज्ञान और विवेक से युक्त होकर के आते हैं, माँ तू वास्तव में हमारे हृदय का भरण कर देती है। तू कैसी महत्ती है। कैसी ममतामयी है, बालक क्षुधा से पीड़ित हो रहा है माँ तू उसे लोरियों का पान कराती हुई उसकी क्षुधा और पिपासा को शान्त कर देती है। इसी प्रकार हे मांमैं तेरे द्वार पर विवेकी बन करके आना चाहता हूँ। मुझे शक्ति दे !, बल दे, ओज दे, तेज दे। जिससे माता मैं तेरी उस महान ज्योति का दर्शन कर सकूं। तेरी जो महान ज्योति है तेरी जो करुणामयी ज्योति है, जिस करुणा से हे विष्णु ! मैं भी तेरे द्वार पर आना चाहता हूँ। मानो !आप संसार का लालन पालन करते हैं उस पिपासा में मैं रमण करना चाहता हूँ। जिस पिपासा के लिए सदैव मानव अपने में ह्ी परणित हो जाता है। मेरे प्यारे जहाँ हम यह विचारते रहते हैं कि !ऋषिवर ! मानवीय ज्योति ही मानव का सदैव दिग्दर्शन करती है। जीवन की ज्योति में ही आभा में ही रमण करने वाला यह प्रिय जगत होता है। आज हम उस महान अपनी उस महान ज्योति को अपनाएं। माँ तेरी गोद में आना च्ाहते हैं, तेरी इस आनन्द मयी जो गोद है, लोरियां हैं, उसमें जब हम अपने को ऐसा ही अनुभव करते हैं, जैसे आज हम मोक्ष को प्राप्त हो गएं है। मानो उस परम आनन्द की ज्योति को जानने के पश्चात मानव का जीवन एक महान और विचित्र बन जाता है।

आओ मेरे प्यारे मैं उस !ऋषिवर !महान प्रभु की महिमा का गुणगान गाने आया हूँ। देव की और वेद की महिमा का गुणगान हमारा परम लक्ष्य कहलाया गया है। जहाँ मानव अपने जीवन का यज्ञ करता है उसको ही विष्णु यज्ञ कहते हैं। बेटा वह विष्णु ! यज्ञ ही तो कहलाया गया है। क्योंकि जब स्वयं पवित्र बन जाता है तो यह संसार भी पवित्र बनता चला जाता है। आओ मेरे प्यारे आज मैं अधिक चर्चा प्रकट !ऋषिवर ! करने नहीं आया हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है कि हम उस मनोहर देव की महिमा का गुणगान गाने आए हैं। जहाँ चरित्र मानव के समीप हो जाता है। महत्ता का दिग्दर्शन होन्े लगता है। वह मानव सदैव पवित्र होता है महान होता है उस विचित्र ता के लिए प्रत्येक मानव अपने अपने जीवन को सुन्दर बनाता है।

यह है आज का वाक्।
आज मैंने अपने वाक्यों की कुछ भूमिका बनाई है। समय मिलेगा तो कल मैं और भी विचित्र विचित्र वार्त्ताएं प्रकट करूंगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रा हमारा यह कि हम जय और विजय को जानने वाले बनें। ज्ञानी और विवेकी बने। जिससे हमारा जीवन व्यापक बन करके उस ममतामयी माता को प्राप्त होता रहे। यह है आज का वाक् आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है कि हमें प्रभु की महिमा का गुण गाते हुए इस संसार सागर से पार होना चाहिए। मेरे प्यारे ऋषिराज। ! मैं जब उस मनोहर देव की महिमा का गुणगान गाने के लिए तत्पर होता हूँ तब मुझे !ऐसा प्रतीत होता है कि मैं माता की लोरियों में ही विराजमान हो गया हूँ। मुनिवरों देखो, वह कितना सुन्दर एक विचित्र जगत कहलाता है। जहाँ मानव विष्णु बन करके इस सांर की आभा को विचार विनिमय करने वाला बन जाता है। यह है आज का हमारा वाक्य। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम राष्ट्र, समाज, जगत को विजय करना चाहते हैं। तो अपने को विजय करने वाले बनें, प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करें। कल मैं प्रवृत्तियों की चर्चा प्रकट करूंगा। आज का विचार हमारा संक्षिप्त है। कल समय मिलेगा तो बेटा गुरुजी...... मैं अधिक चर्चाएं प्रकट करूंगा। ! !बेटा !वाक्य तो आपका बहुत मधुर और प्रिय हो रहा है परन्तु समय बड़ा सूक्ष्म हास्य कल समय मिलेगा तो मैं शेष अधिक चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का विचार क्या कह रहा था? वह संक्षिप्त विचार था परन्तु वह भूमिका आत्मिक विचार की थी। कल ! मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएं प्रकट करूंगा आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा क्या कि हम जय और विजय को जानने वाले बनें। ज्ञानी और विवेकी बनें। जिससे हम संसार सागर से पार हो जाएं। आत्मा रूपी विष्णु को हम जानने वाले बनें। क्योंकि संसार में मानव के आने का उद्देश्य केवल आत्मा को जानना है। जय और विजय को जानना है। क्योंकि इसलिए मानव का संसार में आने का यही एक उद्देश्य होता है। यह आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पाठ होगा। महाशय कृष्ण हाल, जोर

बाग, नई दिल्ली 3।
४ 29 07 1971 वैदिक ज्ञान विमर्श
जीते रहोदेखो !, मुनिवरों आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों ! का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हेंप्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परा से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। आज हम उस परमपिता परमात्मा का पिपासु बनना चाहते हैं परमात्मा का पिपासु बनने वाला जो प्राणी है वह उस महान् ज्ञान और विज्ञान को जानने वाला बने। जिस ज्ञान और विज्ञान में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का सदैव दिग्दर्शन होता रहता है। तो बेटा आज हम परमपिता परमात्मा की उस ! मनोहर आभा में रमण करना चाहते हैं। जिस आभा में उस परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान सदैव ओत प्रोत होता रहता है। जब हम संसार पर दृष्टिपात करते हैं, सर्वत्र जगत हमें ज्ञान और विज्ञान की ही प्रतिभा में दृष्टिपात आने लगता है। तो इसीलिए बेटा हम उस परमपिता परमात्मा को ज्ञान और विज्ञान की !वेदी पर सदैव दृष्टिपात करते रहें और ज्ञान और विज्ञान में हमारी निष्ठा होती हुई उस पवित्र आभा को हम जानने वाला बनें।

मेरे प्यारे जब हम परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाने के लिए !ऋषिवर ! तत्पर होते हैं, विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर देते हैं, तो बेटा !हमें वह महान चेतना, ज्ञान और विज्ञानमय दृष्टिपात आने लगती है। आज हम बेटा उस मनोहर विज्ञान में ! दृष्टिपात करना चाहते हैं, जिस विज्ञान की धारा पर मानव योगेश्वर बन जाता है, महामुनि बन जाता है, ऋषि बन जाता है। तो मुनिवरों जब हम यह विचारने लगते ! हैं कि परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान पर अनुसन्धान करने वाला पुरुष एक महान वैज्ञानिक और परमपिता परमात्मा का पथिक बन जाता है। तो हमें परमपिता परमात्मा

को जानने से पूर्व हमें ज्ञान और विज्ञान की आभा में परिणत हो जाना चाहिए।

ज्ञान और विज्ञान

विचार यह आता है कि ज्ञान और विज्ञान किसे कहते हैं ज्ञान और विज्ञान क्या है ? हमारे यहां दो प्रकार के मार्ग ऋषि मुनियों ने स्वीकार किए हैं। सबसे प्रथम तो जो मार्ग है देखो, वह श्रेय है, जो परा भी कहलाया जाता है। दो प्रकार की विद्याओं में रमण करने वाला प्राणी सदैव विज्ञान में रमण करता रहता है, वही उसकी एक अमोघ आभा कहलाई जाती है। जिस आभा में वह रमण करता हुआ, अपनेपन में पवित्र बनते हुए, इस संसार सागर से पार हो जाता है। आओ, मेरे प्यारे जब हम यह !ऋषिवर ! विचारने लगते हैं कि ज्ञान किसे कहते हैं, बेटा जानकारी का नाम ज्ञान कहलाया ! गया है और उसे जब हमक्रियात्मक में लाना चाहते हैं, क्रियाशील बनाने लगते हैं, तो मुनिवरों वह एक विज्ञान कहलाया गया है। !

विज्ञान की धाराएँ

विज्ञान की भी नाना प्रकार की आभाएं स्वीकार की गई हैं। बेटादेखो !, आध्यात्मिकवेत्ता जो पुरुष होता है, वह भी एक वैज्ञानिक होता है। वह भी एक वैज्ञानिक है। जो आध्यात्मिकवेत्ता होता है, परमाणुवेत्ता होता है, उसको भी हमारे यहां विज्ञान में स्वीकार किया जाता है। विचार केवल यह है कि हम उस आध्यात्मिक विषय की चर्चा करना चाहते हैं, जो एक महान विज्ञान है। भौतिक विज्ञान उसके गर्भ में परिणत हो जाता है। जिस प्रकार मुनिवरों चन्द्रमा के उस घटामय मेघों के आंगन में आ जाने से पृथ्वी ! पर अन्धकार छा जाता है, इसी प्रकार बेटाजब मेघ मण्डल रूप मल !, विक्षेप, आवरण, छायामान हो जाते हैं। तो मानव अन्धकार में परिणत होने लगता है। 'अप्रेत' विज्ञान में उसकी प्रतिष्ठा नही रहपाती। इसीलिए आज हम उस विज्ञान को जानना चाहते हैं, जिस विज्ञान में रमण करने वाला प्राणी सदैव आत्मवेत्ता बन जाता है। मुझे नाना ऋषियों का आदेश, नाना ऋषियों का जो चरित्र है, वह स्मरण आता रहता है। जैसे हमारे यहां भृगु मुनि महाराज का जीवन है तथा इसी प्रकार और भी आदि आदि

ऋषियों का पवित्र जीवन कहलाया जाता है। उसमें एक आभा का सदैव दिव्यदर्शन होता रहता है, जिस दर्शन के लिए मानव सदैव दर्शनग्राही बनना चाहता है।

मानव का गृह

मेरे प्यारेमैं उस दर्शन में तुम्हें ले जाना चाहता हूँ !ऋषिवर !, जहां ऋषि मुनियों ने एक वाक्य कहा है, कि मानव का जो गृह है, उसको जानना है, उसकी आभा में परणित होना है। आज मानव यह नही जानता, कि तेरे गृह में क्या है क्योंकि परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में यह मानव शरीर बनाया, आत्मा का गृह बनाया, निर्माणवेत्ता ने निर्माण किया। परन्तु मानव इस शरीर को नही जानता। मानव के नेत्रों से कितनी आभाओं का जन्म होता है, कितनी तरंगें उत्पन्न होती है। हम इसको नही जानते। क्योंकि हमारे समीप होने पर भी हमसे से दूरी रहती है। तो बेटा इसका नाम अन्धकार ! कहलाया गया है। इसी को जानने के लिए सदैव मानवता की आवश्यकता रहती है। वह अनुसन्धानवेत्ता बनना चाहता है। इस मानवता को जानने के लिए, इस गृहवाद को जानने के लिए, जिस गृह को जानने के पश्चात मानव योगी बन जाता है, ऋषित्व को प्राप्त होता है।

शरीरों का मूल

अहाजब मैं यह विचारने लगता हूँ !ऋषिवर !मेरे प्यारे !, कि वास्तव में हमारा हृदय है, इसमें कितनी तरंगें उत्पन्न होती है। हृदय में ही तो हृदयग्राही जो प्राणी होता है वह जान लेता है कि तीनों शरीरों का जो मूल है, वह मानव का हृदय माना गया है। बेटा ! जब हम विचारते हैं, कि हृदय में मानव के नाना जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान रहते हैं। जिसे हमारे यहां प्रारब्ध भी कहा जाता है। उसको कर्म भोग चक्र भी कहा जाता है। आज जब हम अपने संस्कारों को जानने लगते हैं, संस्कारों की आभा हमारे समीप आने लगती है, तो हमारा हृदय चकित होने लगता है और हम अपने में अनुभव करने लगते हैं, कि उस महामना देव की जैसी इच्छा होती है, वैसा ही कार्य होने

लगता है।

मानव हृदय में विचार तन्तु

परन्तु जहां हम कर्म की अवस्था पर जाते हैं, प्रारब्ध पर आते है वहां परमात्मा की इच्छा को प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रभु ने मानव शरीर का निर्माण किया है। मानव का जो मस्तिष्क है इसमें नाना प्रकार के विभाग माने हैं, जैसे मस्तिष्क है, लघु मस्तिष्क है, चाक्राणी मस्तिष्क है, सोममुक मस्तिष्क है, और भी बेटा जिसे ब्रह्मरन्ध्र भी कहा ! जाता है। परन्तु ब्रह्मरन्ध्र में इस प्रकार के तन्तु होते हैं, इस प्रकार के अंकित हुए जो संस्कार होते हैं, जिनका सम्बन्ध इस भू मण्डल से होता है, नाना लोक लोकान्तरों से होता है। ऋषि कहते हैं, मुनि कहते हैं, यदि मानव के मस्तिष्क में वह अंकुर नहीं होगें, तो सूर्य की जानकारी भी मानव को नही होगी उनका नामकरण उच्चारण करना भी उनके मस्तिष्क में नही आएगा। क्योंकि विचार का जो प्रादुर्भाव होता है, वह मानव की हृदयस्थली से होता है और हृदय से उत्पन्न होता हुआ ब्रह्मरन्ध्र से उस धारा को शोधन हो करके, जब वाणी के द्वारा उसका प्रादुर्भाव होता है, उसका जो स्रोत है, वह मानव के हृदय में माना गया है, उस स्रोत पर हमें विचार विनिमय करना है। जिस स्रोत के द्वारा मानव की मानवता का वास्तव में दिग्दर्शन होने लगता है।

एक मानव को बेटाईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है !, परन्तु उस ईर्ष्या का जो स्रोत है, वह मानव का हृदय होता है। इसीलिए आत्मा का सम्बन्ध भी हृदय से होता है। हे मानव ! जब तू घृणा करता है दूसरे प्राणी से, तो प्रथम घृणा हमारे हृदय में उत्पन्न हो गई, परन्तु घृणा उत्पन्न हो जाना, मानव का विनाश हो जाना है। मानव के द्वारा अशुभ संस्कारों का जन्म होना है। उन्हीं संस्कारों के जन्म होते ही, मुनिवरों घृणा का जन्म ! होता है। घृणा मानव को मृत्यु के आंगन मेंले जाती है, मृत्यु के क्षेत्र में ले जाती है।

ब्रह्मवेत्ता पुरुष

यह जो मृत्यु का क्षेत्र है, वह कैसा प्रबल है। जहां मुनिवरों मानव को भय लगता !

रहता है, भयभीत होता रहता है। इसीलिए हमारे यहां ऋषि मुनियों ने कहा है, आचार्यों ने कहा है, कि मृत्यु का भय सभी प्राणियों को होता है। परन्तु उस प्राणी को नही होता, जो ब्रह्मवेत्ता होता है, जो विचारक होता है जिसके स्वप्न में भी घृणा नही आती, जो हृदय का उद्गार होता है, हृदय की प्रक्रिया को जानने वाला जो प्राणी होता है, उसकी संसार में बेटामृत्यु नही होती। अरे !, मृत्यु !किन प्राणियों की नही होती, जो अपने मानवीय हृदय और परमपिता परमात्मा के हृदय का समन्वय कर लेता है। कौन मानव है, जो हृदय, हृदय का समन्वय करता है मानव के मन में ?कैसा होता है ? जब व्यापकवाद आ जाता है, व्यापकता छा जाती है, जब इन्द्रियों के विषयों में बेटा ! जिस प्‌्रकार परमात्मा का हृदय व्यापकता में रमण करने वाला है, इसी प्रकार मानव का हृदय भी व्यापकता में रमण करने लगता है। तो बेटामानव के हृदय का !, परमात्मा के हृदय का, दोनों का समन्वय हो जाता है। वह जो हृदय, हृदय का समन्वय हो जाना है उसी को हमारे यहां ज्ञान प्रभावत् प्रतम् ब्रह्मव्यापः। वही तो मानव ब्रह्म को जानने वाला बनता है। बेटावह जो ब्रह्मवेत्ता पुरुष होता है !, वह महापुरुष कहलाया जाता है। उस मानव के हृदय में घृणा का स्रोत उत्पन्न नही होता और जब घृणा नही होती, तो उसका हृदय निर्मल होता है, स्वच्छ होता है। पवित्र होता है। जितना हृदय पवित्र होता है, उतना ही मानव परमात्मा के निकट होता है। अपनी प्रवृत्तियों को दमन करने वाला जो प्राणी होता है, परमपिता परमात्मा से सदैव उसका मिलान होने लगता है।

मेरे प्यारेबहुत पूर्व काल की वार्ता है !, जब मध्यम रात्रि में परमपिता परमात्मा का चिन्तन करते समय हृदय इतना विभोर हो जाता था, मृगराज शरण में आ जाते थे। मृगराज उस हृदय के चिन्तन को श्रवण करने लगते थे। क्योंकि हृदय की जो समाहितता है, उसमें सर्वत्र जगत समाहित हो रहा है। इसी प्रकार जिस मानव का हृदय विवेकी होता है, हिंसक प्राणी उसके लिए हिंसक नही रहता। की घोषणा 'अहिंसा परमो धर्मः' जिस घोषणा के द्वारा ?करने लगता है। कैसी विशाल यह घोषणा होने लगती है मानव पवित्र बनता चला जाता है। आज इस घोषणा को हम पुनः से चाहते !बेटा

रहते हैं।

वेद गान का प्रभाव

एक समय बेटा मध्यम रात्रि थी। सामगान गाया !जा रहा था। मेरे प्यारेमहानन्द जी !, सुमेनु ऋषि महाराज के द्वारा सामगान की ध्वनियां कर रहे थे। इतने में मृगराज ने अपनी वाणी प्रतम उच्चारण की, तो वह भयभीत हो गए। क्या, वेद का पठन पाठन करने वाला मानव भयभीत हो जाते हैं जो परमात्मा का चिन्तन करने वाला पुरुष ? होता है, वह मृगराजों से भयभीत नही होता। क्योंकि वेद 'प्रकाशाम् मनवेचः ब्रह्मे' क्योंकि मानव अक्षरों का बोधि बन जाता है। क्योंकि अक्षरों का बोधि बन जाने के पश्चात उसका आत्म चिन्तन नही होता, हृदय चिंतन नहीं होता। जब वह उस वैदिक प्रकाश को, वैदिक ज्ञान को, वैदिक ऋचा को, अपने हृदय में जब उसका चिन्तन करता है, हृदयग्राही बना लेता है उस समय मृगराज का भय नही होता उस प्राणी को। परन्तु जब तक अक्षरों का बोधि होता है अक्षरों को जानता रहता है, व्याकरणी ब्राह्मण होता है, व्याकरण को जानने वाला पण्डित होता है, परन्तु व्याकरण का शोधन जब तक नही हो पाता, जब तक ब्रह्मरन्ध्र में जो अंकित हुआ, जो अनहद एक ध्वनि होती है उस ध्वनि का और बाह्य व्याकरण का, जब तक दोनों का मिलान नही होता, जब तक वह मानव निर्भय नही होता। उसके द्वारा वह पवित्रता नही आती, जो पवित्रता वह लाना चाहता है।

व्याकरणी पण्डित

मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय श्वेतकेतु मुनि जी महाराज जब व्याकरणी बन करके अपने पिता सामभूमि के द्वार आए। उन्होंने कहा प्रभु मैंने व्याकरण को अच्छी ! उन्होंने ?प्रकार जाना है। तो ऋषि ने कहा कि व्याकरण को तुमने कैसे जाना है कहा प्रभु व्याकरण ब्रह्मव्ापक प्रवे कि मैंने प्रत्येक प्रत्याहार, उदात्त, अनुदात्त शब्दों की जो सुगठितता है, उसको अच्छी प्रकार जानता हूँ। उन्होंने कहा मैं तुम्हारे वाक्यों को स्वीकार करता हूँ। परन्तु मैं जानना चाहता हूँ, कि मस्तिष्क में जो ब्रह्मरन्ध्र कहलाता

है उस ब्रह्मरन्ध्र में कितनी वाहक नाडियां हैं जो अपने स्वरों से स्वर गान गा रही हैं। ? तुम्हें यह प्रतीत है !मानव के मस्तिष्क में अह, कौन सी नाड़ी इस प्रकार की है, जो एक दूसरे से ज्ञान विज्ञान का वर्णन निर्णित करती रहती है, जिसका सम्बन्ध हृदयम् ब्रह्मव्यापम् ब्रह्मयोग प्रतः अस्ति सुप्रजाः उस ब्रह्मरन्ध्र से होता है। ऐसा कौन सा तुमने व्याकरण जाना है मैं इस व्याकरण को तो नही जानता हूँ। !आचार्य पुत्र बोले प्रभु ? उन्होंने कहा तो तुम बाह्य व्याकरण को जानते हो, जो प्राणी व्याकरण का शोधन करना चाहता है, वही करता है। जो मानव के मस्तिष्क में ध्वनियां हो रही हैं, जिस ध्वनि को योगीजन पान करके, पण्डित पान करके, योगी बनते हैं और योगी पान करके मुनि बनते हैं और मुनि पान करके एक ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं। वे ब्रह्म में ही समाधिस्थ हो जाते हैं। व्याकरणी पण्डित को ऐसा ऊँचा बनना चाहिए।

क्रियात्मक जीवन से करोड़ों जन्मों का बोध

मेरे प्यारेअक्षरों का बोध !ऋषिवर !, मुझे प्रायः स्मरण आता रहता है। मैंने बहुत स्मृतियों का अध्ययन किया, दर्शनों का तो नहीं। परन्तु वेदों की नाना ग्रन्थियों का वर्णन किया, अपने में धारणा करने का प्रयास किया, बेटामुझे इतना स !मय आज्ञा नही देता, जो मैं पूर्व की भांति अपने विचारों का प्रवाह करता रहूँ। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव के कथनासुर न करने से कुछ करना बहुत सुन्दर होता है। ऐसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कहा करते थे। आज मुझे उन वाक्यों पर नही जाना है। विचारना केवल यह, कि आज हमें अपने उस हृदय को जानना है, जहां हृदय की पञ्चतन्मात्राएं मस्तिष्क में रमण करती हों, वहां तब मस्तिष्क में प्राण का सञ्चार होता है। प्राण की ध्वनियां की जाती हैं। उस समय बेटा ! मानव के मस्तिष्क में नाना प्रकार की नस नाडियां होती हैं। एक नाडी ऐसी होती है, जिसका सम्बन्ध ध्रुव मण्डल से होता है। जब उसका ब्रह्मरन्ध्र में चक्र चलता है, तो मुनिवरों मानव के जो करोडों जन्मों के संस्कार होते हैं वह जाग्रत हो जाते हैं। परन्तु ! जब तक हम इस क्रियात्मक जीवन को नही बना पाएंगें, जब तक हमारा जीवन हमारे जन्म जन्मान्तरों की जो पोथियां हैं, संस्कार हैं वे हमारे समीप किसी भी काल

में नही आ सकेगें।

ब्रह्मनिष्ट

आओ मेरे प्यारेमैं वाक्य उच्चारण कर रहा हूँ !ऋषिवर !, कि हम प्रभु की महिमा का गुणगान गाने आये हैं। प्रभु कि उस महान ज्ञानमयी और विज्ञानमयी धारा को जानने आए हैं। बेटा। आध्यात्मिक वि !ज्ञानवेत्ता जो पुरुष होता है. वह ब्रह्मनिष्ठ बनने की चेष्टा करता है। परन्तु ब्रह्मनिष्ट क्या होता है ब्रह्म का अपने और ब्रह्म में अन्तर्द्वन्द्व नहीं ? रहता, इतने प्रकाश में चला जाता है, इतना हृदय जब उसका व्यापक बन जाता है। व्यापक हृदय तो मानव को रसिक बनाता है, पवित्र बनाता है और व्याकरणी बना देता है। ब्रह्म की निष्ठा में ब्रह्मवेत्ता बन जाता है।

पवित्रता से परमात्मा मिलन

आओ मेरे प्यारे मैं वाक्य उच्चारण करता हुआ बहुत दूर चला जा रहा हूँ। !ऋषिवर ! वाक्य उच्चारण करता हुआ, मैं यह उच्चारण करना चाहता हूँ, कि मानव का जो मस्तिष्क है, मानव का जो हृदय है, इन दोनों का समन्वय होना चाहिए, परमात्मा से अपना मिलान करना चाहिए। बेटा जो मानव ?परमात्मा से कौन मिलान करता है ! अपनेपन में पवित्र होता है, जिसके द्वारा मल, विक्षेप, आवरण नहीं होते। वह मानव वास्तव में पवित्र होता है। मेरे प्यारेमैं पूर्व की भांति !ऋषिवर !, जब अपने पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे स्मरण कराया कि ब्रह्म व्यापः ब्रह्म लोकः ब्रह्म व्यापने प्रवे अस्ति देखो, हृदय को ऊँचा बनाने का प्रयास करो। हृदय में ही स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों के अंकुर होते हैं, इसकी उत्पति, इनका जो स्रोत है, वह मानव के हृदय से ही सम्बन्धित रहता है। इसीलिए आज हमें अपने हृदय को पवित्र बनाने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि हृदयग्राही जो मानव होता है, वह ममतामयी माता की गोद में अपने को स्वीकार कर लेता है, और यह अपने में अनुभव करने लगता है। कि माता की लोरियों में, अपने को स्वीकार कर रहा हूँ। माता की लोरियां कितनी पवित्र होती हैं, जिनसे हमें जीवन प्राप्त होता है, जीवन को पान करते हैं। यह जो आनन्दमयी, ज्ञानमयी, पवित्रमयी जो

लोरियों हैं उसे मानव को पान करना चाहिए। बेटाउस परमात्मा के ज्ञान और विज्ञ !ान में रमण करने वाला प्राणी, इस संसार सागर से पार हो जाता है।

आध्यात्मिकवेत्ता

आओ, मेरे प्यारे मैं आध्यात्मिकवेत्ता बनने की तुम्हें चेष्टा प्रकट करा रहा !ऋषिवर ! था। देखो, आज हम आध्यात्मिकवेत्ता वनना चाहते हैं, आध्यात्मिकवेत्ता कौन होता है? बेटा जो आत्मा !को जानने वाला होता है, मृत्यु को जानने वाला होता है, और जो मानव मृत्यु को नहीं जानता, देखो, वह आध्यात्मिकवेत्ता नही होता है । मानव को मृत्यु का भय लगा रहता है। भयभीत होता रहता है, वह मृत्यु को जानता ही नही, मुनिवरों ! आध्यात्मिकवेत्ता ही नही कहलाता, परन्तु वह अपने मन ही मन में अपने बाह्य वृत्तियों में संलग्न होता हुआ, आध्यात्मिकवाद की घोषणा करता है। परन्तु वह वास्तव में आध्यात्मिकवेत्ता होता नहीं। जब मानव ब्रह्मवेत्ता, व्यापक ज्ञान में रमण करता रहता है, उस मानव को भय नही होता।

वेदरूपी कवच

मुनिवरोंमुझे स् !मरण आता रहता है, जब माता चाक्राणी गान गाती रहती थी, साम गान गाती थी। यजुर्गान गाती थी, उस समय गान में इतना मधुरपन, इतना रस और इतने अंहिसा परमोधर्मः की ऊँची तरंगे होती थी कि मृगराज भी उनके चरणों को ग्रहण करते थे। माता का हृदय प्रफुल्लित रहता था, हर्ष ध्वनि करता रहता था। क्योंकि हृदय इतना स्वच्छ बन जाता है, तो वह मानव इस संसार सागर से पार हो जाता है।

मुनिवरोंदेखो !, एक समय माता चाक्राणी के, कुम्रुत ऋषि आ पंहुचें। कुम्रुत ऋषि शाण्डिलय गोत्र में उत्पन्न होने वाले थे। कुम्रुत शाण्डिल्य जब उनके द्वार आए तो वह नाना शंकाएं लेकर उनके समीप आए। गार्गी से बोले हे देवी मैं तुमसे यह !हे ऋषे ! जानना चाहता हूँ, कि तुम्हारे हृदय में कौन सी ऐसी तरंग है, जिस तरंग से तुम मृगराज से भयभीत नही होती और मृगराज तुम्हें अपना भोजन नही बनाता? उस समय चाक्राणी ने कहा कि प्रभुमुझे तो ऐसा ! प्रतीत होता है, कि मानव का जो हृदय है, उसमें भय

उस काल में नही होता, जब वह वेदों के प्रकाश में स्वयं पंहुच जाता है। वैदिक प्रकाश में रमण करने वाले और उसमें निहित होने वाले प्राणी को अन्धकार नही छाता, क्योंकि जितना हिंसकवाद है, वह केवल अन्धकार कहलाया जाता। जितना भी भय है, वह सर्वत्र अन्धकार कहलाया जाता है। हमारे यहां रात्रि को अन्धकार नही कहते। रात्रि को रात्रि नही कहा जाता है। रात्रि तो मानव का जीवन बढाने वाली है। वसुन्धरा कहलाती है। अपने में मानव को बसा लेती है। अपने हृदय से हृदय का मिलान करा देती है। उस माता को हम रात्रि अन्धकार नही कहते हैं। अन्धकार वहां होता है जहां मानव को भय होता है। मानव अन्धकार में वही होता है, जिसके द्वारा ज्ञान रूपी प्रकाश, वेद रूपी प्रकाश नहीं होता, वह अन्धकार में रमण करता रहता है। मुनिवरों रात्रि को हम ! अन्धकार नही कहा करते। अन्‌धकार नाम अज्ञान को कहा जाता है और अज्ञान उन प्राणियों को होता है, अज्ञान में वह प्राणी रमण करते हैं, जिन प्राणियों के द्वारा वैदिक प्रकाश नही होता, जो वेद के प्रकाश में रमण करने वाले नही होते, वह मानव अन्धकार में सदैव संलग्न रहते हैं। जो वेद रूपी प्रकाश का कवच धारण कर लेता है जिस प्रकार क्षत्रिय रणक्षेत्र में, कवच को, लोहे के कवच को धारण कर लेता है, स्वर्ण के कवच को धारण कर लेता है, वह निर्भय होकर संग्राम करता है। इस प्रकार जो वेद रूपी कवच को धारण कर लेता है, वेद रूपी कवच क्या हैज्ञान है ?, प्रकाश है। जो इस कवच को धारण कर लेता है, उस मानव के द्वारा हिंसक प्राणी उन तरंगों को छू नहीं पाता और छूता है, तो वह अंहिसा परमोधर्मी बन जाते हैं। इसीलिए आज हमें इस वेदरूपी कवच को अपने में धारण कर लेना चाहिए।

वेदरूपी प्रकाश

मेरे प्यारेमैं अधिक चर्चा प्रकट करने न !ऋषिवर !ही आया हूँ। केवल संक्षिप्त परिचय देने आता हूँ और वह परिचय क्या है? हम वेदरूपी उस प्रकाश को धारण करना चाहते हैं, उसके कवच को अपने में धारण करना चाहते हैं। बेटादेखो !मुनिवरों !, मृगराज अपनी सीमा में बद्ध हो जाता है , उस वेद रूपी पावन प्रकाश को धारण करने वाला,

नेत्रों से दृष्टिपात करने वाला, इसके प्रकाश मात्र से ही मानव के नेत्र भी शोधित हो जाते हैं, पवित्र हो जाते हैं। हृदय भी पवित्र बन जाता है। इसीलिए वेदरूपी प्रकाश में रमण करने वाला जो प्राणी होता है, वह अपनेपन में एक महान और पवित्र कहलाता गया है।

आओ, मेरे प्यारे मैं अधिक चर्चा प्रकट करने नही आया हूँ। संक्षिप्त परिचय !ऋषिवर ! देने चला आया हूँ। और वह परिचय क्या है, कि वेद रूपी प्रकाश के कवच को मानव को धारण करना चाहिए। इसी को अपना वस्त्र बना लेना चाहिए।

नग्न प्राणी

माता गार्गी नग्न रहती थी। एक समय सामभूमि ऋषि ने कहा कि हे देवी तुम !हे ऋषे ! उस समय उन्होंने कहा प्रभु मैं नग्न नही रहती। उन्होंने कहा तुम ?नग्न क्यों रहती हो मुझे दृष्टिपात आ रही हो, नग्न रहती हो। तुम्हारे द्वारा कोई वस्त्र नही है। उन्होंने कहा, हे ऋषिवरतुम कैसे मूर्ख बन गए हो। जो मानव ऋषि बन गया ! है, मुनि बन गया है, क्या वह भी नाना धागों के वस्त्रों को धारण करेगा वह धागे के वस्त्रों को धारण नही ? करता। उसका वेद रूपी जो आभूषण होता है, प्रकाश रूपी जो आभूषण होता हैं, जिसमें इन्द्रियां मनके की भांति जिस प्रकार मनके में धागे पिरोये हुए होते हैं, उसकी माला बन जाती है। इस प्रकार वेदरूपी प्रकाश में, वेदरूपी अनुपम वस्त्र से जब मानव की इन्द्रियां आच्छादित हो जाती हैं, उसमें वह उसको धारण कर लेती हैं, तो देखो, इन्द्रियां कोई नग्न नही होती। नग्न प्राणी कौन होता हैअरे ?, जिसके वस्त्र धारण करके ! भी मन की चंचलता नही जाती। वही तो संसार में नग्न रहने वाला प्राणी होता है। मेरे प्यारे वस्त्र धारण करने वाला अपनी !जो मुनिवरों ?नग्न व्यक्ति कौन होता है !ऋषिवर ! वस्त्र !चंचलता को नहीं त्यागता। अपनी धृष्टता को नही त्यागता। वह संसार में ऋषिवर धारण करने वाला भी नग्न होता है औरजो मानव अपनी इन्द्रियों को वेदरूपी वस्त्र से ढांप लेता है, इस वेदरूपी आंचल में धारण कर लेता है, वे इन्द्रियां बाह्य जगत में दृष्टिपात आती हैं। परन्तु जो आत्मिक जगत है वहां तो वेदरूपी कवच को धारण कर

लिया, वह मानव संसार में नग्न नही होता। नग्न कौन प्राणी होता है? जिसके द्वारा वस्त्र होते हुए भी वस्त्र नही होता। जिस प्रकार मानव दृष्टिपात करता हुआ दृष्टिपात नही करता। मानव नग्न रहता हुआ भी नग्न नही होता। कौन नग्न नही होता? बेटा जिसके ! जिसके द्वारा ज्ञान !द्वारा बेटा, विवेक होता है, मानवता होती है। वेदरूपी प्रकाश होता है वह !ऋषिवर !प्रकाश के आंचल में इन्द्रियां समाहित हो जाती है। मेरे प्यारे ? मानव संसार में नग्न नही होता। जब माता चाक्राणी ने, गार्गी ने यह उत्तर दिया तो सामभूमि ऋषि शान्त हो गए। उन्होंने कहा देवी तुम अपने विषय में महान् हो। !

तो इसीलिए बेटाहमारा य !ह वेद का विचार कह रहा है, कि मानव को अपनी इन्द्रियों को ज्ञान रूपी आंचल में शान्त कर देना चाहिए, कवच धारण करना चाहिए । मुनिवरों ! मानव नग्न रहता हुआ, नग्न नही होता। मानव वस्त्रधारी बना हुआ भी नग्न रहता है। इन्द्रियां जब उसकी विचित्र बन जाती है, वेद रूपी प्रकाश में पिरोई हुई होती हैं, ज्ञान रूपी प्रकाश उसके समीप होता है, वह परमात्मा के समीप चला जाता है और परमपिता परमात्मा के उस ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाला होता है। यह है बेटा आज ! का वाक्।

आज का वाक् हमारा क्या कर रहा थाआज हम परमपिता परमात्मा की आभा क ?ा वर्णन करते हुए, उस मनोहर दैवी सम्पदा को ऊँचा बनाना चाहते थे और चाहते रहते हैं। हमारी यह प्रेरणा रहती है, हम सदैव अन्तरात्मा से चाहते हैं, परमात्मा को जानने की हमारी सदैव उत्सुकता रहती है। परन्तु परमात्मा को वही जानता है जो ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाला प्राणी होता है। वही बेटा परमपिता परमात्मा की आभा ! को जानता हुआ इस संसार रूपी सागर से पार हो जाता है।

आओ, मेरे प्यारे मैं अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाता चला जा रहा था। !ऋषिवर ! तू कितना विचित्र है !हे प्यारे देव, तू कितना महान है, तू जब ब्रह्मव्यापक रेवकेति रूद्रः मानव तेरे आंचल में आना चाहता है, तेरे आंगन में तेरी आनन्दमयी तेरी क्षुधा शान्त करने वाली आनंदमयी लोरियों को पान करने वाला प्राणी, तेरी मुक्तावली को प्राप्त हो जाता है। आज का वाक्य तो हमारा समाप्त होने जा रहा है, बेटा आज के !

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है, कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा को सदैव जानने वाले बनें। मृत्यु का भय हमें न बना रहे। कल मेरे प्यारे महानन्द जी ! जो प्रश्न करेंगें, उनका कल भली भांति उत्तर दे सकेंगें।

आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है, कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा का सदैव दिग्दर्शन करना चाहते हैं। परन्तु उसकी महिमा को हम स्मरण करते हुए महान अमृतमयी को जानने वाले बनें। अपने गृह को जाने बिना संसार को हम नही जानेंगें, परमात्मा को नहीं जानेंगे । बेटा चेतना प्रत्येक मानव के हृदय में समाहित ! रहती है। यहवाक्य अब हमारा समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। अच्छा भगवन ! 1971 जुलाई 29 शान्ति। !आनन्द मंगलम्, रात्रि बजे 8.30, स्थान महाशय कृष्ण हाल, जोरबाग, नई दिल्ली।

५ 04 10 1971 पुष्प 23 मननशील बन बर वेद के मार्ग पर चल

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण किया। क्योंकि हमारे यहाँ वेद मन्त्रों की उस पवित्र आभा में सर्वत्र संसार का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। क्योंकि ज्ञान उसे कहा जाता है जो मानव दृष्टिपात करता रहता है और विज्ञान वह माना गया है जिसको हम क्रियात्मक रूप में लाने का प्रयास करते हैं और उसे क्रिया में लाने के पश्चात उसका साक्षात्कार करने लगते हैं। वह जो साक्षात्कार है उसी का नाम विज्ञान माना गया है। जिस प्रकार एक मानव यह दृष्टिपात कर हा है कि तेरे द्वारा मन है, चक्षु हैं, सर्वत्र इन्द्रियां दृष्टिपात आती हैं। परन्तु इन इन्द्रियों का साक्षात्कार करना उसे कहा जाता है जिस इन्द्रिय के स्वरूप को हम अच्छी प्रकार जान लेते हैं। जिसका स्वरूप हमारे सामने आ जाता है और उसी स्वरूप के आधार पर हम संसार को क्रियात्मक रूप में लाते हैं। तो बेटा उसका नाम विज्ञान कहा जाता है। !

एक मानव चन्द्रमा के दर्शन कर रहा है सूर्य के दर्शनों को कर रहा है जो लाखों योजन की दूरी पर रहने वाला है पृथ्वी मण्डल से और भी नाना प्रकार के लोक लोकांतरों का

दीर्घ दर्शन कर रहा है। उसको क्रिया में लाने का प्रयास कर रहा है, यन्त्र बन रहा है किरणों के आधार पर अपनी मनो भावना को, मन को शरीर को तपा रहा है। तपाने के पश्चात एक योगी बन करके सूर्य की आभा और किरणों के साथ साथ वह सूर्य मण्डल को अपने में साक्षात कर लेता है। चन्द्रमा को भी प्रकार, मंगल को भी इसी प्रकार जो साक्षात कर लेता है। यन्त्रों के द्वारा अथवा आत्मा की क्रिया के द्वारा। क्योंकि इनके भी नाना प्रकार के भेदन हमारे यहाँ माने गए हैं। विज्ञान के भी नाना प्रकार के भेदनों में आध्यात्मिक विज्ञान और महत्वपूर्ण होता है। भौतिक विज्ञान महत्वादायक होता है।

इनका भिन्न भिन्न स्वरूप हमारे समीप आ जाता है। जब हम विज्ञान के आधार पर अपने जीवन को निर्धारित कर लेते हैं अथवा दोनों प्रकार का पक्ष हमारे समीप होता है अर्थात एक पक्ष आत्मा का है दूसरा पक्ष विज्ञान के परमाणु वाद का माना गया है। परन्तु दोनों में एक ही भिन्नता मानी गई है, कि जहाँ परमाणुवाद का अन्त करने का प्रश्न आता है वहाँ से आध्यात्मिक विज्ञान, आत्मा का साक्षात्कार प्रारम्भ हो जाता है। हमें इन दोनों प्रक्रियाओं को विचार विनिमय करना है। ज्ञान और विज्ञान के उस आधार पर अपने जीवन को बनाना है। क्योंकि संसार में यह जितना भी जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है तथा मानव किसी भी लोक लाकांतरों में विचरण करने वाला प्राणी क्यों न हो पृथ्वी मण्डल का ही नहीं, मंगल का भी क्यों न हो, परन्तु प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या का जो जीवन है वह आध्यात्मिक वाद और भौतिक वाद, परमाणुवादों से गुथा हुआ माना गया है। अब इन दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं को जानना एक हमारा मौलिक कर्त्तव्य कहलाया गया है। क्योंकि मानव अपने संक्षिप्त विचारों में संलग्न रहता है। अपनी उन महान सूक्ष्म सूक्ष्म मान और अपमान की प्रक्रियाओं में संलग्न रहता है। परन्तु जब हम यह विचारते हैं कि हमारा जो मान अपमान में आ जाने पर हमारा जीवन कोई सुन्दर नहीं रहता है। हमारा मानव जीवन उस काल में सुन्दर बनता है जब हम ज्ञान और विज्ञान के आधार पर अपने जीवन को निर्णयात्मक रूप में लाने का प्रयास करते हैं। परन्तु अपने उस महान ज्ञान और विज्ञान का दोनों का साक्षात्कार कर लेते हैं। वही

तो मानव की एक महान पवित्र अवस्था कहलाई गई है।
आज का हमारा वेदमन्त्र केवल ज्ञान और विज्ञान की ही चर्चा नहीं कर रहा था। आज का वेद का पठन पाठन दीक्षा के सम्बन्ध में एक ऊँचा आदर्श हमें प्रकट करा रहा था। मानव को दीक्षा व्याचनोति, बनना चाहिए। मानव को दीक्षा लेनी चाहिए। जब मानव दीक्षा लेता है दीक्षात अपने जीवन को बना लेता है। उस मानवता में एक महत्ता का दर्शन होता है। उसकी इन्द्रियां उसके मनो भाव नग्न नहीं रहते। मुझे नाना प्रकार की वार्त्ताएं स्मरण आने लगती हैं। मैंने इससे पूर्व काल में भी दीक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार दिए थे आज भी हमारे समीप वे विचार आ गए हैं। दीक्षा क्या है? एक ब्रह्मचारी अपने गुरु के कुल से पृथक होता है मानो दीक्षा लेकर ही पृथक होता है। क्योंकि उसके पूर्व उसे दीक्षा नहीं प्राप्त हुई। जब वह दीक्षा व्याप्रोति, दीक्षा को अपना करके इस संसार के क्षेत्र में आ जाता है और दीक्षा को अपनाने के पश्चात उस मानवता की विचार धारा में एक महत्ता का दिग्दर्शन होने लगता है। क्योंकि अपने को यह स्वीकार करता है कि मैंने दीक्षा स्वीकार कर ली है। अब मैं दीक्षित बन गया है। दीक्षा को अपनाने के पश्चात ब्रह्मचारी में अपने को आचार्य उच्चारण करने का साहस हो जाता है। यदि इसको दीक्षा प्राप्त नहीं होती तो आचार्य नहीं बन पाता था। इसी प्रकार पति और पत्नी गृह आश्रम में जब प्रविष्ट होते हैं तो आचार्य से वह दोनों दीक्षा ले लेते हैं। परन्तु दीक्षा के पश्चात वह पति और पत्नी कहलाते हैं। अपना वाक्य अपने अपने समीप उच्चारण करने में उन्हें गौरव होता है। जब तक दीक्षा नहीं होती तब तक मानव विकृत होता है। उसका कोई मूल्य नहीं होता। उसमें कोई महत्ता का दिग्दर्शन नहीं होता। वह दीक्षा के पश्चात जब वह अपनी धाराओं को ले करके संसार क्षेत्र में आता है तो वह एक महत्ता की वेदी पर अपने जीवन को व्यतीत करने लगता है। मेरे प्यारे इसी प्रकार !ऋषिवर ! वानप्रस्थ है। उसमें भी दीक्षा ली जाती है। उसके पश्चात सन्यास आश्रम आता ा है। चारों आश्रमों में ही दीक्षा ली जाती है।
दीक्षा का रूप मैंने तुम्हारे समीप निश्चित किया था। दीक्षा कहते हैं ज्ञान को। दीक्षा कहते हैं संकल्प को। वह ज्ञान युक्त होकर के संकल्प वादी बनता है। वही तो दीक्षित

कहलाया गया है। आज हमें विचार विनिमय करना है कि आज हम मानो अपने जीवन को दीक्षित बनाना चाहते हैं। संकल्प वादी बनाना चाहते हैं। संकल्प ही तो मानव के जीवन को सुन्दर बनाता है। संकल्प के आधार पर यह जगत सर्वत्र एक प्रकार का संकलनमात्र माना गया है। हमारे यहाँ नाना ऋषियों के वचन जब हमारे समीप आते हैं विचार आता है एक माता है, उसका पुत्र है, माता और पिता का दोनों का, माता और पुत्र दोनों का एक ही संकल्प है। मानो संकल्प मात्र से वह माता और पिता बने हुए रहते है। संकल्प के आधार पर ही पति और पत्नी दोनों का व्यापार चला करता है। संकल्प मात्र से ही राष्ट्र और प्रजा दोनों का कार्य प्रारम्भ होता है। परन्तु संकल्पमात्र से ही गुरु और शिष्य दोनों अपने जीवन को व्यतीत करते रहते हैं। मेरे प्यारे !ऋषिवर ! आज हमें संकल्प वादी बनना चाहिए। दीक्षा का अभिप्राय है संकल्प। क्योंकि संकल्प इस सृष्टि !में ही सर्वत्र जगत माना गया है। जब बेटाका प्रारम्भ हुआ तो मेरे प्यारे ! प्रभु ने सृष्टि का संकल्प बनाया। इस सृष्टि में सर्वत्र एक प्रकार का संकल्प ही दृष्टिपात आ रहा है। एक परमाणु दूसरे परमाणु में मिलान करता है, एक दूसरा परमाणु एक दूसरे में अपनी क्रीड़ा प्रारम्भ कर लेता है। परन्तु उन परमाणुओं का स्वभाव भिन्न भिन्न माना गयाहै। तो यह क्या है? सर्वत्र एक प्रभु का यह संकल्प माना गया है। क्योंकि संकल्प मात्र से ही मानव का जीवत सुन्दर बना करता है। आचार्य और शिष्य, पति और पत्नी दोनों संकल्पवादी बनते हैं। पुत्र भी इसी प्रकार संकल्प में कटिबद्ध हो जाता है अतः आज हमें संकल्प की महिमा को जानना चाहिए। दीक्षा का अभिप्राय भी यही होता है।

इस सम्बन्ध में परम्परा की एक वार्त्ता मुझे आज स्मरण आती चली जा रही है जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा पहुंचा, तो मैंने अपने पूज्य गुरुदेव से कहा कि प्रभु मुझे दीक्षित बना दीजिए। उस समय पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा, हे पुत्र अभी तुम दीक्षा के ! इस योग्य नहीं हुए हो। दीक्षा के योग्य हो जाओगे उस समय मैं तुम्हें दीक्षा अवश्य पूज्यपाद गुरुदेव ने जब यह वाक्य कहा तो विचार !प्राप्त कराऊंगा। तो मेरे प्यारे इसी पर आता है कि दीक्षा का भीअधिकार होता है मानव को। जब तक अधिकार

नहीं होता तब तक दीक्षा भी मानव को प्राप्त नहीं होती। इसलिए आज हमें विचारना चाहिए कि हमें इस योग्य बनना चाहिए। जब हम इस योग्य बन जाते हैं तो हमारा अन्तरात्मा हमें दीक्षा देने लगता है। हमारा अन्तरात्मा बाह्य जगत में दीक्षित उच्चारण करने लगता है। इसलिए बेटाआज हमें विचारना चाहिए। दीक्षा का अधिकार !, सन्यास का अधिकार उसी मानव को होता है जो मानव अपनी इन्द्रियों को वस्त्र धारण करा देता है।

मुनिवरोंइंद्रियों का वस्त्र क्या !? क्या धागे का वस्त्र इंद्रियों का वस्त्र नहीं होता। विचार आता है कि इंद्रियों का वस्त्र क्या है? जब ज्ञान इन्द्रियां कई इन्द्रियां अपने अपने कर्त्तव्य से कर्त्तव्य रूपी वस्त्र को धारण कर लेती हैं तो उस मानव की इन्द्रियां नग्न नहीं रहती। इन्द्रियां किस की नग्न रहती हैं? वस्त्र होते भी मानव नग्न नहीं रहता है। और वस्त्र न रहते हुए भी मानव नग्न नहीं रहता। विचार आता है, बेटा जिस मानव के द्वारा दीक्षा ! आ जाती है दीक्षा का अभिप्राय है ज्ञान और विज्ञान। दीक्षा का अभिप्राय है जो व्यापक रूपों से अपने जीवन को जान लेता है। व्यापक रूपों से इस जगत को जान लेता है वह अपनी इन्द्रियों को ढांप लेता है। वस्त्रों को धारण कर देता है। मेरे प्यारे ! एक मानव नाना प्रकार के सुन्दर सुन्दर आभूषणों से युक्त है। नाना सुन्दर !ऋषिवर सुन्दर वस्त्रों को धारण कर रहा है। परन्तु मन की चंचलता नहीं जाती तो जानो कि !उसका मन नग्न रहता है। मेरे प्यारे ऋषिवर एक मानव अपनी सर्वस्व इन्द्रियों को ! वस्त्रों से आवृत करता रहता है परन्तु इन्द्रियों का जो विषय है उसमें चंचल हो रहा है तो जानो कि उसकी इन्द्रियां वस्त्र होते हुए भी नग्न की नग्न रहती है।

मेरे प्यारे कौन मानव संसार में नग्न नहीं रहता। जो यह !ऋषिवर !विचार लेता है कि मानो पृथ्वी ही मेरा आसन। दिशायें मेरा आभूषण हैं दिशायें आभूषण का अभिप्राय क्या है? दिशाओं में जो मानव जिस प्रकार देखो, इस जगत को इस संसार को दिशायें अपने में धारण करती रहती है। शब्द का वस्त्र क्या है? दिशायें हैं। क्योंकि शब्द उच्चारण होते ही मुखारबिन्द से शब्द बनते ही वह दिशाओं में जाता है। दिशाओं में जा करके उसका स्वरूप बनता है। स्वरूप बन करके वह द्यु लोक को प्राप्त हो जाता है। इसी

प्रकार हमारे यहाँ ऐसा माना गया है। कि वह जो शब्द है यदि उस शब्द में कटुता है उस शब्द में कोई सार नहीं है मिथ्यावादी है तो वह शब्द नग्न कहलाया गया है। और जिस शब्द में क्रिया होती है जिस शब्द में ज्ञान होता है, विज्ञान होता है जो शब्द अशुद्ध परमाणुओं को निगल जाता है वही तो शब्द हमारे यहाँ ज्ञान रूपी आभूषणों से युक्त रहने वाला है।

इसी प्रकार बेटानेत्रों की ज्योत !ि है। नेत्रों में कुदृष्टि जब नहीं रहती सुदृष्टि आ जाती है तो वह सुदृष्टि वाला वस्त्र है वही उस मानव की चक्षु इन्द्रियों को आभूषण से युक्त बनाने वाला है। मेरे प्यारे हमें स्मरण आ रहा है कि एक समय चक्राणी !ऋषिवर ! गार्गी से महर्षि स्वयंमुक ऋषि ने कहा था हे द ेवी संसार में कौन मानव नग्न रहता ! है? उस समय चक्राणी ने कहा वह मानव नग्न रहता है जिस मानव का मन सदैव चंचल रहता है। जो मानव अपनेपन में मानो अधुरापन रखता है। संकल्पवादी नहीं होता। जो मानव दीक्षित नहीं होता। वह मानव ऋषिवर संसार में नग्न रहने वाला ! होता है। इस ी प्रकार आज हमें विचारना चाहिए। संसार में मानव को नग्न नहीं रहना चाहिए।

नग्न की व्यवस्था क्या है? हमें यह विचारना चाहिए। मुझे स्मरण है। मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा था किसी समय में। हे पुत्रवत वर्ष तक वस्त्र 50 तुम्हें लगभग ! धारण नहीं करना होगा। म ुनिवरोंदेखो !, वह साधना कितनी कठोर होती है साधक के लिए। परन्तु यहाँ वस्त्रों से ब्रह्मव्यापः उस समय मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से एक समय कहा भगवनमैं नग्न कैसे रह सकता हूँ !? मैं क्या मानव की दृष्टि में नग्न हो जाऊं? प्रभु की दृष्टि में नग्न हो जाऊं? उस समय पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था कि संसार की दृष्टि में नग्न हो जाओ। संसार की दृष्टि में नाना प्रकार के धागों के वस्त्रों से मानव नग्न प्रतीत होता है। परन्तु वह मानव संसार की दृष्टि में नग्न दृष्टिपात आता है और जो ज्ञान रूपी आभूषण वस्त्र को अपनाता है वह प्रभु की दृष्टि में नग्न नहीं होता। वह समाज की दृष्टि में तो नग्न प्रतीत होता है। मेरे प्यारे और प्रभु की दृष्टि !ऋषिवर ! में कौन नग्न होता है? जो प्रभु को सर्वत्र न विचार कर के निर्लज्ज हो जाता है। वह

मानव सदैव नग्न रहता है। वह मानव प्रभु की दृष्टि में नग्न रहता है। मेरे प्यारे !ऋषिवर ! और जो प्रभ को कण कण में दृष्टिपात कर लेता है, कण कण में प्रभु की निष्ठा हो जाती है। वह मानव इस संसार की दृष्टि में प्रायः नग्न प्रतीत होता हो, परन्तु वह प्रभु की दृष्टि में नग्न नहीं होता।

हे मेरे प्यारेआज हमें विचारना चा !ऋषिवर !हिए। क्या संसार में मानव को नग्न नहीं रहना चाहिए। मुनिवरों प्रभु को न जानना संसार में नग्नवत कहलाया गया है। मानव ! ऊपरी संसार की लज्ञा को अपनाता हुआ वह नाना प्रकार वेफ मनो में चंचल भावों को अपनाता हुआ वह नाना दृष्टि में नग्न होता है। समाज की दृष्टि में वह ढांपा हुआ होता है। वस्त्रों से युक्त होता है। मुनिवरों विचार आता है कि हममें ज्ञान और विवेक ! होना चाहिए। जब तक हमारे द्वारा ज्ञान और विवेक नहीं होगा हमारा जीवन किसी काल में भी ऊँचा नहीं बनेगा। अतः आज हमें ज्ञान रूपी उस महत्ता को अपनाना चाहिए, जिससे बेटाहम !ारा जीवन सदैव ऊँचा बनता रहे। मेरे प्यारे संसार !ऋषिवर ! ऋषि मुनि एकत्र विराजमान !का वह साहित्य मुझे प्रायःस्मरण आता रहता है जहाँ बेटा जब मुझे !ऋषिवर !हो करके अपना विचार विनिमय प्रारम्भ करते थे। मेरे प्यारे महात्मा महर्षि दधीचित्त की वार्त्ताएं स्मरण आती हैं तो विचार आती है कि उनका कितना महान अखण्ड जीवन कहलाया गया था। जिनके जीवन में सदैव मानवता नृत्य करती रहती थी। मानवता उन्हीं के हृदयों में होती है।

मेरे प्यारे ने कोई ऐसी घोषणा नहीं की कि तुम आज चन्द्रमा !ऋषि मुनिवरों !ऋषिवर ! में चले जाओ। आज मंगल में चले जाओ। नाना प्रकार के अस्त्रों शस्त्रों से युक्त हो जाओ। किसी ऋषि मुनि ने कोई घोषणा नहीं की। परन्तु ऋषि मुनि एक ही घोषणा करते थे, कि हे मानव जिस गृह में तुम सदैव रमण करते हो जिस गृह को तुम ! सजातीय बनाते हो उस गृह को अच्छी प्रकार जान लो। यही तुम्हारा जीवन कहलाया गया है। आज जब हम जिस गृह में रमण करते हैं, जिस गृह में आहार करते हैं, गृह के लिए वस्त्र धारण करते हैं, परन्तु उस यह गृह को हम यह नहीं जानते कि गृह में क्या क्या वस्तु हैं? कितना ज्ञान है? कितना विज्ञान है? कितनी धारायें हैं? अरे, यह

नहीं जानते तो ऋषि मुनि कहते हैं कि मानव को सर्वत्र यही जानना चाहिए कि हमारे गृह में क्या हैं? हमें इस गृह में किस प्रकार सुकृत प्राप्त होता। किस प्रकार गृह में रमण करते हुए हम अपनी मानवता को सजातीय बना सकते हैं। यह हमारे ऋषि मुनियों की घोषणा रही है कि इस गृह को जानने का प्रयास करो। जिस गृह में नेत्र अपने संसार को दृष्टिपात कर रहे हैं। घ्राण मन्द सुगन्ध को दृष्टिपात कर रही है। इसी प्रकार हस्त अपना कार्य कर रहे हैं। दिशाओं का देवता अभरुक तमभ्रम व्यापः श्रोतमहः श्रोत बने हुए हैं। आज हमें प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को जानते हुए इनकी सामग्री बना करके, एकत्रित करके अपने हृदय को जानना चाहिए। उस महान हृदय को जानना चाहिए जिससे बेटादेखो !, मानव सुन्दर बन करता है। मानवता की विचित्र धारा मानव के समीप आ आती है।

मेरे प्यारे मुझे स्मरण आता है कि हृदय से दुर्जन की जानकारी होती है। !ऋषिवर ! इसी हृदय से कृतियों की जानकारी होती है। मुझे स्मरण है एक समय द्वापर के काल में जब आचार्य कुल में द्रोणाचार्य के द्वारा महाराजा युधिष्ठिर इत्यादि जब शिक्षा ग्रहण करते थे। एक समय आचार्य ने यह जान लिया कि इनमे कौन सुन्दर है। एक समय युधिष्ठिर से कहा हे युधिष्ठिर! जाओ, संसार में तुम अपने दुर्जन की जानकारी करो। संसार में तुम्हारे से अधिक दुर्जन कौन है? महाराज युधिष्ठिर ने संसार में भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने अपने राष्ट्र में दूसरे राष्ट्रों में दृष्टिपात किया। दृष्टिपात करके अपने पूज्यपाद गुरुदेव के समीप आ गए। गुरुदेव से कहा हे भगवान संसार में मेरे ! से दुर्जन मुझे कोई प्राप्त नहीं होता। क्योंकि मैं एक ऐसा दुर्जन हूँ कि जिसकी मुझे इसी प्रकार मानो महाराजा दुर्योधन से !अब तक जानकारी नहीं हो सकी। मुनिवरों तुम संसार में अपने से कोई !जाओ पुत्र !कहा। हे दुर्योधन ऊँचा जानकार के आओ। तुमसे संसार में ऊँचा कौन है? कौन बुद्धिमान है? उस समय दुर्योधन ने अहह भ्रमण ! करना प्रारम्भ कर दिया जब भ्रमण करने लगे तो सर्वत्र राष्ट्रों में भ्रमण करके वे गुरु मेरे से बुद्धिमान !के समीप आए। गुरु ने कहा बोलो पुत्रवत। उन्होंने कहा प्रभु मुझे कोई प्रतीत नहीं हुआ। बेटा अभिप्राय क्या कि संसार में जो अपने को बुद्धिमान !

वह बुद्धिमान वास्तव में नहीं होता। परन्तु जब वह यह दृष्टिपात !स्वीकार करता है बेटा करता है कि मैं इतना निर्लज्ञ हूँ संसार में मैं अपने को ही नहीं जान सका हूँ कि मैं क्या हूँ? मानो यह अभिमान की मेरे में नाना प्रकार की मात्रा रहती है। तब तक वहाँ दुर्जन और सज्ञन की जानकारी कैसे हो सकती है? संसार में वह मानव कितना गम्भीर होता है जिस मानव के द्वारा अपने से दुर्जन संसार में कोई दृष्टिपात नहीं आ रहा।

मेरे प्यारेवे महान व्यक् !ऋषिवर !ति बना करते हैं क्या उनका धर्म और उनकी मानवता संसार में क्या बना करती है जो मानव यह स्वीकार कर रहा है कि मैं बुद्धिमान है मानो मेरे से ऊँचा कोई जगत में है ही नहीं। मुनिवरों वह मानव अपनी एक प्रक्रिया ! को भी नहीं जानता। क्योंकि मैं का जो शब्द उच्चारण होता है इतना अभिमान पूर्ण होता है उसमें प्रकृति के तत्त्व होते हैं। क्योंकि जितना भी मैं वाद है यह बना ही अभिमान की मात्राओं से है इसलिए हमें विचारना है आज हमें अपने को कितना दीक्षित बनाना है। कितना विवेकी बनाना है। विवेकी पुरुष वही होता है जिसके द्वारा बेटी दीक्षा होती है। जो मानव इस जगत में ऊँचे भाव को अपनाता हुआ अपनी मानवता को सुन्दर बनाता है।

मैं आज कोई अधिक चर्चा तो प्रगट करने आया नहीं हूँ। केवल संक्षिप्त विचार देने आया हूँ। वह विचार किया कि आज हम अपना जीवन ऊँचा बनाने का प्रयास करें। अपनी इन्द्रियों को सजातीय बनाने का प्रयास करें। जब हम अपनी इन्द्रियों को ऊँचा बना लेते हैं हृदय को ऊँचा बना लेते हैं तो हमारा जीवन वास्तव में पवित्रता को प्राप्त हो जाता है। इस महत्ता का दिव दर्शन करने लगते हैं। महान प्रभु की ज्योति हमारे समीप आनी प्रारम्भ हो जाती हैं। हम वेद के उस महान आदेश का पालन करते हैं। जो वेद हमें आज्ञा देता है हे मानव तू मननशील बनने का प्रयास कर। ऊँचा बनने ! का प्रयास कर। जिससे मानव तेरी आभा जगत में आभायित होती है।

मेरे प्यारे आज मैं अधिक चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। केवल वाक्य उच्चारण !ऋषिवर ! करके मैंने सक्षिप्त परिचय कराया है। कि आज हम दीक्षा को अपनाने का प्रयास करें। दीक्षा एक संकल्प को कहा जाता है जो अपने मन में संकल्प को धारण करता है वही

तो संसार में ऊँचा है और संकल्प बिना यह जगत कदापि अपनी क्रिया नहीं कर रहा है। संकल्प मात्र से ही वायु रमण कर रहा है। संकल्प मात्र से ही अग्नि अपने तेज में रमण कर रहा है। संकल्प मात्र से होज अपने वेग में रमण कर रहा है। यह सब प्रभु का संकल्प माना गया है। आज हमें उस संकल्प को अपना कर अपनी उस महत्ता से अपने जीवन को सुन्दर बनाने का प्रयास करना चाहिए। एक मेरी प्यारी माता है, वह संकल्प मात्र से ही तो माता है। उस पुत्र की माता बनी हुई है उसका जो हृदय है वह माता का हृदय माना गया है। हृदय के कारण ही इसीलिए ऋषियों ने कहा कि हृदय इतना पवित्र होना चाहिए। क्योंकि जब तक मानव का हृदय पवित्र नहीं होता तब तक जीवन कदापि सुन्दर नहीं बना करता है। इसीलिए हृदय पवित्र होना चाहिए। हृदय में मानवता का सदैव दिग्दर्शन होना चाहिए।

आज मैंने संक्षिप्त परिचय दिया कि मानव को नग्न नहीं रहना चाहिए। और कौन मानव नग्न रहता है जो अपने ज्ञान और विवेक को नहीं अपनाता। वह मानव संसार में सदैव नग्न रहता है। आज हमें ज्ञान और विज्ञान की आभाओं पर सदैव विचार विनिमय करना चाहिए। ज्ञान क्या है? विज्ञन क्या है? जिसको अपनाने के पश्चात हमारी आभाएं सुन्दर बना सकती हैं। जीवन में एक महत्ता की वह ज्योति हमारे समीप आ जाती है। जिसको अपना करके हम अपने पन में ऊँचे बन जाते हैं। पवित्रता को धारण कर लेते हैं। प्रकृतिवाद को अपने नीचे दबा देते हैं। महत्ता के दिग्दर्शन से हमारे जीवन में एक महान ज्योति प्रगट हो जाती है। वेदाघ्रतम उस वेद की आभा को अपनाना हमारा कर्तव्य है। वेद कह रहा है आज तुम्हें प्रकाश के लिए रमण करना है अन्धकार को त्यागना है। अन्धकार कहते हैं अज्ञान को और ज्ञान का नाम प्रकाश माना गया है। इस प्रकाश को अपनाने के पश्चात हमारा जीवन पवित्रता में रमण करता हुआ मानवता की वेदी को अपनाता हुआ इस संसार सागर से पार हो जाता है।

आज हमें इस सागर से पार होने का प्रयास करना है। जहाँ मान और अपमान होता है। उस सागर से पार होने के लिए विवेक रूपी नौका को अपनाना है। उस महान माँ दुर्गा को अपनाना है। अष्ट भुजाओं बाली माँ दुर्गा को अपनाना है जिसको अपनाने के

पश्चात इस संसार सागर से हम पार हो जाते हैं। बेटा माँ दुर्गा कौन है। दुर्गम् ब्रह्म ! व्याप। जो दुर्गाहै जो अष्ट भुजाओं वाली है। दुर्गा कहते हैं जो हमें दुर्गम बनाती है, पवित्र बनाती है। दुर्गा वह माँ है जिसे मानो हम विद्या कहते हैं, सरस्वती कहते हैं। सरस्वती नाम दुर्गा का है वैष्णावी भी उस महान पवित्र विद्या को कहा गया है। क्योंकि योगिनी जिसे कहते हैं योगिनी का नाम भी दुर्गा है उसके आठ अंग योग के कहलाए गए हैं जो योग के आठ अंगों को अपनाता है वह माँ दुर्गा की आठों भुजाओं को जानने लगता है। वह जो आठों भुजाएं हैं उनको अपनाने का मानव प्रयास करता है। आज हमें अपनी उस महान ज्योति को अपनाने का सदैव प्रयास करना है। जिस ज्योति को अपनाने के पश्चात हम माँ दुर्गा को, माँ वैष्णावी को अपनाते उसकी आठ भुजाओं को जानने लगते हैं। क्योंकि वे आठों जो अंग योग के हैं उन्हें हमें सदैव अपनाना है। क्योंकि हम उस महान एकः प्रभुः योगा प्रवे। उस योग की आभा को अपनाते हुए हम संसार रूपी सागर से पार होने का प्रयास करें। आज का हमारा !यह है बेटा 26 शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज के वाक्य !वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा मैं बेटा उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है कि हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाने वाले बनें। और अपनी उस माँ ममतामयी को अपनाने का प्रयास करें। ज्ञान और विज्ञान को जानने का प्रयास करें। सर्वत्र हमारा एक यह हमारा मौलिक कर्त्तव्य कहलाया गया है। अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चा कल प्रकट करूंगा। क्योंकि आज मैंने संक्षिप्त परिचय देना था। संक्षिप्त परिचय दिया कि मानव को नग्न नहीं रहना चाहिए, विचित्र बनना चाहिए। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय तुमने जान मिला होगा। प्रायः वाक्य सूक्ष्म रहा है परन्तु संक्षिप्त परिचय दिया। कल समय मिलेगा तो अधिक चर्चाएं कल प्रकट होगी। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। 1971 अक्टूबर 4, आर्य समाज नया नांगल, समय रात्रि 8. बजे 30

६ 13 11 1971 पुष्प 23 यज्ञोपतीव का महत्व

देखो, मुनिवरो, आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का

गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। परम्परा से ही जो हमें वैदिक साहित्य मैं प्राप्त होता है उसका हमारे ऋषि मुनियों ने चित्रण किया है। हमारे यहाँ आचार्य जनों ने वैदिक मीमांसाएं की और वेदों के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार का विचार रहा है। आज मैं भिन्न भिन्न विचारों में नहीं जाऊंगा। केवल वाक्य यह कि हमारे यहाँ वेदों की चार मूल संहिताएं स्वीकार करते चले आए हैं। उनकी उन मूल चार वेदों की शाखाएं 1127 वेदमन्त्र की 2 स्वीकार की गई हैं। हमारे यहाँ परम्परा से ही वैदिक आचार्यों ने एक बहुत विशाल मीमांसायें की हैं। ये शाखायें उन मूल चारों वेदों की मानी जाती 1127 हैं। वास्तव में वेद नाम तो प्रकाश को ही कहा गया है। हमारे यहाँ वेद प्रकाश को कहा है। जो राष्ट्रीय प्रकाश हो, मानवीय प्रकाश और आत्म प्रकाश हो। जिसमें सर्वत्र प्रकाश हो। जिसमें सर्वत्र प्रकाश का दिग्दर्शन किया जाता हो। उसकी को हमारे यहाँ वेद की आभाओं से प्राप्त किया हुआ एक अमूल्य प्रकाश ही माना जाता है। मेरे प्यारे ! हमारे यहाँ नाना आचार्यों ने ऋषि मुनियों ने इन चार काण्डों के विषय में !ऋषिवर बहुत कुछ अपना प्रकाश दिया।

हमारे यहाँ त्रिविद्या का वर्णन आता रहता है। त्रिविद्या बेटाज्ञान !, कर्म और उपासना को कहा गया है। ये त्रिविद्या मानी गई हैं। त्रिविद्या के ऊपर बहुत सी मीमांसाएं की गई हैं। आचार्यों ने अपने भिन्न भिन्न प्रकार का निरूपण किया और उन्होंने इन लेखनियों के ऊपर अपना एक अमूल्य विचार, अमूल्य धारा परणित की। आज मैं बेटा अमूल्य ! धाराओं के विषय में अपना कोई विचार प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। वाक्य यह कि हमारे यहाँ त्रिविद्या मानी जाती हैं ज्ञान कर्म और उपासना। चरतप्रवे ऋति विद्या, चतुर्थ में ऐसा माना जाता है कि अभ्रहे चतुर्थ हमारे यहाँ विज्ञान को कहा गया है। इस त्रिविद्या का जब मन्थन किया जाता है तो मन्थन करने के पश्चात जो वस्तु होती है उसका नाम विज्ञान कहा गया है जैसे आज हमें यह चन्द्रमा दृष्टिपात आया है, मंगल दृष्टिपात आता है, वशिष्ठ और अरूण मण्डल आज हमें दृष्टिपात आता है। ये दृष्टिपात तो आ रहे हैं परन्तु इनमें से एक यह मंगल हैं, यह चन्द्रमा है, यह बुद्ध है, यह शुक्र हैं, यह सूर्य है।

परन्तु इनका ज्ञान तो हो गया, अनुमोदन भी हो गया गया परन्तु विचार विनिमय अब यह करना है कि ये जो लोक लोकान्तर हैं इनका ज्ञान तो हो गया, मन के द्वारा। मुनिवरोंइसकी जो प्रतिभा है इस !में जो विज्ञान है, इसमें जो वस्तु है, खनिज है, खाद्य है, प्राणीमात्र हैं मुनिवरों इन लोक लोकान्तर में जैसी भी अभय आभा है आज ! वहाँ जो जाने का मार्ग है उस मार्ग में जाने वाले जो यन्त्र हैं हमारे यहाँ उस जानकारी का नाम विज्ञान कहा गया है।

जैसे एक आध्यात्मिक वेत्ता अपनी टिप्पणियां देता है। यौगिक आचार्यों ने अपने यम और नियम के द्वारा अपनी आत्मा का उत्थान किया। विचार आया जब दर्शनों में, यह अध्ययन किया गया क्या यह जो आत्मा है इनके तीन शरीर माने जाते हैं एक स्थूल दूसरा सूक्ष्म और तीसरा कारण। परन्तु यह धर्म शास्त्रों तथा वेद मन्त्रों के द्वारा यह निर्माण तो हमने कर लिया कि तीन शरीर हैं। परन्तु अब तीनों शरीरों की जिस जिस प्रकार की आभा है उन आभाओं को जानने का नाम आध्यात्मिक विज्ञान कहा जाता है। आज जब हम यह विचारने लगते हैं कि आध्यात्मिक विज्ञान में जाना है, आध्यात्मिक वाद को विचारना है तो यम और नियम के द्वारा अपने उन धर्मज्यप्रवे, अपने अपने जीवन को उस आँगन में लाने का प्रयास किया जाता है। जिस आँगन में लाने के पश्चात एक मानवता का सुन्दर दिग्दर्शन हो जाता है। हमारा यह स्थूल शरीर है। इसमें मुनिवरोंमानव क्या क्या कर्म कर !ता है? कैसा विचारता है 2? एक मानव जीवन कुटुम्ब बना लेता है। माता के द्वारा तरह की आत्मा कहाँ से आ करके एकत्रित हो जाती 2 हैं। हे माँ तुझे यह प्रतीत नहीं था कि कौन आत्मा तेरे गर्भ के लिए निश्चित है। मेरी पुत्र संस्कार से पूर्व यह प्रतीत नहीं कौन तेरा पति निश्चित हुआ है। परन्तु यह कैसा सुन्दर और कैसा आश्चर्यजनक एक परिवार बन जाता है। कैसा सुन्दर कुटुम्ब बन गया है। वह जो कुटुम्ब है अब मुनिवरोंदेखो !, कुटुम्ब प्रबल हो गया। यह कुटुम्ब है क्या? अन्तिम इसका निश्चय क्या है? मुनिवरों इन वाक्यों को विचारना और इनकी !क्रिया में लाने का नाम विज्ञान कहा जाता है मेरे प्यारे आज प्रत्येक मानव प्रत्येक !ऋषिवर ! महानन्द जी ने वर्णन कराया इनके उपदेश इनकी !देवकन्या जैसा मुझे मेरे प्यारे

विचारधारा एक महान और पवित्रता मे सदैव रमरा रहती है। परन्तु इन्होंने वर्णन कराया कि आज हम मातासे जब यह प्रश्न करते हैं कि मां तू आओ ब्रह्मव्यापहः ! कौन बालक तेरे कौन आत्मा कहाँ से आएगा? तो माता को प्रतीत नहीं। परन्तु उस आत्मा का, आत्मा के गृह का निर्माण माता के गर्भ में हो रहा है। निर्माणवेत्ता निर्माण कर रहा है। परन्तु माता को यह प्रतीत नहीं वह आत्मा कहाँ से आकर तेरे उदर में स्थित हो गया है। जिसके लिए इस गृह का निर्माण तेरे गर्भस्थल में हो रहा है। तो मुनिवरों !यह विचित्रता है। उस विज्ञान को विचारना क्रियात्मक में लाने का नाम बेटा ! विज्ञान कहा जाता है।

मुझे यह संसार बहुत ही परम्परा से स्मरण आता रहता है। जब मैं संसार की नाना प्रकार की साहित्यिक चर्चाएं प्रकट करने लगता हूँ तो बेटा हमारा हृदय गदगद होने ! एक यन्त्र में मानव के !लगता है। मुझे स्मरण है एक मानव एक विज्ञानवेत्ता मुनिवरों चित्र को लाना चाहता है परन्तु उस चित्र को हमारे यहाँ चित्र अंग्रीही ग्रेत नाम का यन्त्र कहा जाता है। जिसमें चित्र चित्रण करने लगते हैं। कोई चित्र है उसको हम एक यन्त्र में लाना चाहते हैं। वायु मण्डल में इन चित्रों का प्रसारण करना चाहते हैं। तो मुनिवरोंएक आध्यात्मिक वेत्ता !, योगाभ्यास करने वाला, एक महान ऋषि यह जानता है कि आज मेरे इस श्वास के द्वारा कितना परमाणुवाद जाता है एक मानो विज्ञान भौतिक विज्ञानवेत्ता यन्त्र में अपने चित्र को लाना चाहता है। मानो वह उस चित्र को विज्ञान की सुमिनाराई, अप्रीति, विभ्रहः यह नाना यन्त्रों के द्वारा अपनी उस वाणी को शरीर के चित्रण को जिसमें प्रकृति का एक ऐसा उपदेश है, जैसे हमारे इस मानव शरीर में चित्त नाम की भूमि है उसको चित्त कहा जाता है। वह संसार का चित्रण करता है। मुनिवरों उस सूक्ष्म से चित्र में यह सर्व संसार समाहित हो जाता है। वह उसका ! चित्रण कर लेता है उसका चित्रण उस चित्त नाम में अंकुर रूपी से विराजमान होता है। एक मानव स्वप्न को दृष्टिपात कर रहा है। वह स्वप्न के वृद्ध हो जाता है अरे, यह उस वृद्धपन का चित्र मानव के अन्तःकरण में उस चित्त में विराजमान था। जब मुनिवरोंदेखो !, मन आत्मा के प्रकाश में पहुंचा इस मानव के शरीर में ही उस स्वप्नवस्था

के कारण एक नवीन संसार की रचना हो गई। वह कैसा सुन्दर विज्ञान है आज हमें इसे विचार लेना चाहिए कि मन के द्वारा कितनी सुन्दर जगत की रचना होती है। मानव के चित्त में पत्नियाँ नहीं होती परन्तु पत्नियों का निर्माण हो रहा है आनन्दित हो रहा है। राष्ट्र नहीं होते परन्तु अधिराज बना हुआ है। राष्ट्र का निर्माण कर रहा है। मेरे प्यारे ! वह स्वप्न में !वह दर्शनों का कहीं कहीं अध्ययन भी कर रहा है। मुनिवरों !ऋषिवर !आत्मा के जब यह मान आत्मा के प्रकाश में अपना कार्य करने लगता है तो मुनिवरों !स्वप्न में नवीन से नवीन एक वृद्ध मानो बेटा बाल्यकाल के चित्र को चित्रण कर रहा है। यह कैसी विचित्रता है? उस मेरे प्यारे प्रभु ने यह कैसा चित्र आग्नेय एक यन्त्र ! बनाया है जिसमें संसार का चित्रण किया जाता है। संसार के चित्र क्या, राष्ट्र का राष्ट्र, मुनिवरोंदेखो !, नाना राष्ट्र इस अन्तःकरण में, इस चित्त नाम की भूमि में विराजमान हो जाते हैं। जिस प्रकार मुनिवरोंवट वृक्ष है उसका सूक्ष्म अंकुर है !, बीज है उसी अंकुर में मुनिवरोंदेखो !, सर्वत्र वृक्ष इसमें समाया हुआ है। इसी प्रकार मुनिवरों मानव ! जो चित्त है, इसमें संसार का विज्ञान क्या, इसमें राष्ट्र के राष्ट्र समाहित हो जाते हैं। निर्माण सुन्दर हो जाता है, समुद्र के समुद्र समाहित हो जाते हैं, कैसी विचित्रता है।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे स्मरण कराया कि एक सूक्ष्म से चित्त को जान करके ! मानव यह जानता है कि मैंने सारे सौतिकवाद जाना है। अरे, उस विज्ञान स्वरूप के दर्शन करने का प्रयत्न करो। जिस विज्ञानवेत्ता ने मानव के शरीर में चित्त नाम की भूमि बनाई। जिसमें राष्ट्र का राष्ट्र समाहित हो जाता है। नाना राष्ट्र समाहित हो जाते हैं। नाना राष्ट्र ही नहीं अनुसन्धान करने के पश्चात नाना लोक लोकान्तर उसमें समाहित हो जाते हैं। कैसी विचित्रता है? वह प्रभु कितना वैज्ञानिक है? उसके विज्ञान को क्या कोई माप सकता है? वह मापा नहीं जाता। इसी प्रकार आज कोई मानव यह कहे कि संसार के विज्ञान को मैंने जाना है तो वह यह असम्भव उच्चारण कर रहा है। क्योंकि परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान अनन्तता में परणित रहता है। एक मानव का मान स्वप्न को प्राप्त हो रहा है। मुनिवरोंकिसी मानव को !, पण्डित को, अनुसन्धान वेत्ता को यह विचारना चाहिए इस अन्तःकरण में संस्कार किस काल के चित्रण होकर मेरे शरीर में 2

विराजमान है। मुझे इसका अध्ययन करता है। जब वह मन और प्राण को दोनों को एकाग्र समाहित करके जन्म जन्मान्तरों के संस्कार उस मानव के सहित नृत्य करने लगते हैं जन्म जन्मांतरों के संस्कारों का जब वह अध्ययन करता है, पठन पाठन करता है, चित्त को एकाग्र करके हृदय स्थली में हृदयनाम के स्थल में जब यह समाधिस्थ होता है, उस समय जन्म जन्मान्तरों का चित्रण इसके समीप होता है।

मुझे प्यारे ऋषि ने एक वाक्य कहा है, महर्षि मुद्गल जी ने और भी आदि ऋषियों ने ऐसा कहा है क्या करोड़ों करोड़ों जन्म का संस्कार मानव के समीप आ करके नृत्य करने लगता है। मेरे प्यारेजिस अध्ययन को मैं आज कर र !ऋषिवर !हा था, जिन शाखाओं का मैंने आज से बहुत पूर्व काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन किया था, उस काल को कितना समय हो गया है। परन्तु आज भी मैं उसे वर्णन कर रहा हूँ। वह जो चित्त नाम की भूमि है उसमें उस पठन पाठन के चित्रण हैं, चित्रवलियां हैं।

इसी प्रकार ऋषि कहते हैं कि यदि मानव प्रत्येक श्वास के साथ ही जो अध्ययनशील होते हैं, आध्यात्मिक वेत्ता होते हैं, ब्रह्म वेत्ता होते हैं वे प्रत्येक श्वास के परमाणुओं को गणना कर लेते हैं। उसी गणना के साथ में मानव अपने चित्र को चित्रण कर लेता है। वह योगी इस प्रकार का महापुरुष बन जाता है। मुनिवरों जो श्वास की गति को ! जानता है और अपने सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के परमाणुवाद पर जब अध्ययन कर लेता है वह मानव को यथार्थ स्थूल रूप में दृष्टिपात नहीं आता है। उस मानव की इस प्रकार गति बन जाती है। जब आत्मवेत्ता बनने के लिए जब ब्रह्मवाद में जाते हैं, तो यही प्रतीत होता है कि हमें आज इस आध्यात्मिक विज्ञान को जानना चाहिए जिससे हम संसार का चित्रण कर सके। एक मानव ब्रह्म और परमाणवेत्ता भौतिक विज्ञानवेत्ता को भौतिक वादी इसीलिए कहा करते हैं कि वह भूतों के परमाणुओं का निरीक्षण कर रहा है। उन पर अनुसन्धान कर रहा है। इसीलिए उसे भौतिक विज्ञानवेत्ता कहते हैं क्योंकि वह पञ्च महाभूतों पर अनुसन्धान कर रहा है। यन्त्रों का निर्माण कर रहा है। लोक लोकान्तरों में जाने वाले यानों का निर्माण कर रहा है। अपने इस शरीर का

चित्रण वायु में प्रसारण करके यन्त्र के द्वारा उसका चित्रण कर रहा है।

यह क्या है? इसको कहते हैं भौतिक विज्ञान, परन्तु इस भौतिक वाद में मानव के विनाश के यन्त्रों का निर्माण अधिक किया जाता है। और मानव के लाभ के लाभ के सूक्ष्म निर्माण होते हैं। तो भी इसीलिए मैं आज इस विज्ञान का विरोध नहीं करने जा रहा हूँ। वाक्य उच्चारण करने का मेरा अभिप्राय क्या? उसमें इस विज्ञान में मानव को आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त नहीं होती। मानव क्या चाहता है? जब मुनि बरो इस संसार ! से मानव ऊब जाता है तो मानव आत्म शान्ति चाहता है, वह आत्मा की उन्नति चाहता है, अब आत्मा की उन्नति बिना ज्ञान के नहीं होती। बेटा हमारे यहाँ ज्ञान सबसे प्रथम ! आता है। ज्ञान, कर्म और उपासना हमारे यहाँ यह त्रिविद्या मानी है ऋषि मुनियों ने। प्रश्न उत्पन्न होता है जब यह त्रिविद्या है तो यह चतुर्थ विद्या कहाँ से आ गई? चतुर्थ कांड कहाँ से प्राप्त हो गया? तो इसका आचार्य उत्तर यह देते हैं कि ज्ञान कर्म और उपासना इन तीनों का मन्थन किया हुआ ही तो विज्ञान कहलाता है। उसी को विज्ञान कहते हैं। इसीलिए विज्ञान के लिए हमें सर्वत्र प्रयत्नशील रहना चाहिए। बेटा विज्ञान ! क्या है? आज हम विज्ञान के आधर पर जब अपनी मानवीयता को दृष्टिपात करने लगते हैं तो हमें यह मानवीय चित्रण हमारे समीप आने लगता है। हमारा जीवन हमारी दृष्टि में रमण करने लगता है। आज मैं अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यही है कि आज हम अपनी उस मानवीय वेदी को विचारने का प्रयास करें।

मैंने अपनी प्यारी माताओं के सम्बन्ध में कई काल में कई वाक्य प्रकट किए हैं। आज मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय ! मुझे वर्णन कराया और यह इन्होंने कहा कि आधुनिक काल का जगत यह स्वीकार करता है कि यह जो विज्ञान ह ै चन्द्रमा में जाना, मंगल की कल्पना करना यह विज्ञान नवीन है। परम्परा का नहीं है। परन्तु यह विद्या बुद्धिमानों के मस्तिष्क में रही है। यह महात्मा अश्विनी कुमारों के और दधीचि के भी मुस्तिष्कों में विराजमान होती रही है। मुझे स्मरण है बेटाजब अश्विन !मुनिवरों !ी कुमारों को ब्रह्म विद्या को पान करना था

तो मुनिवरोंदेखो !, इन अश्विनी ने महर्षि दधीचि के मस्तिष्क के भाग को दूर करके उसे औषधियों में वनस्पतियों के लेपन से सुरक्षित कर लिया था। अश्व के मुखारबिन्दु से उन्होंने ब्रह्म के उपदेश को पान किया। क्योंकि राजा इंद्र की घोषणा थी कि जो अश्विनी कुमारों को ब्रह्म विद्या देगा ब्रह्मवाद की शिक्षा देगा उसके मस्तिष्क को दूर कर दिया जाएगा । तो महाराजा इंद्र ने जब यह श्रवण किया(अर्थात काट दिया जाएगा) कि महर्षि दधीचि मुनि महाराज अश्विनी कुमारों को ब्रह्म का उपदेश दे रहे हैं। ब्‌्रह्म क्या है? प्रकृति क्या है? आत्मा क्या है। जब इसका उपदेश प्रारम्भ होने लगा तो प्रश्न वह उत्पन्न होता है क्या मानव अश्व की वाणी को जान सकता है? उस समय इसका उत्तर मैं बड़े सुंदर रूपों से दिया ही करता हूँ। क्योंकि मानव का यह जो आध्यात्मिक वाद है, मन की प्रतिभा है यह एक पक्षी की वार्त्ता ही नहीं, मुनिवरों आज के ! मुखारबिंद को ही नहीं, वृक्षों में जो तरंगें होती हैं उनको भी मानव जान लेता है। यह तब तो अश्व ही था। योग का ऋषि कहता है कि हमारे यहाँ ऋषि हुए हैं परन्तु मुझे महर्षि पातंजली जी का जीवन भी स्मरण आता रहा है। महर्षि पतंजलि आदि ऋषि मुनियों के मस्तिष्क में योग की प्रतिभा विराजमान रहती है। यौगिक ऋषियों ने कहा है, जब मानव अपने मनों की, चित्त की वृत्तियों को निरोध कर लेता है और निरोध करके जब हृदय स्थल में उसका वास हो जाता है यह हृदय परमात्मा से मिलान होने की वेदी कहलाती है।

जिस प्रकार यज्ञमान यज्ञशाला में विराजमान होता है तो यज्ञोपवीत हो धारण करता है। वह यज्ञोपवीत परम पवित्र कहलाता है, यज्ञों का उपवीत है, ऋण को उतारने के लिए उपवीत का विधान किया जाता है। जो यज्ञम् यज्ञ के समीप विराजमान होता है उसको ऋणों से उऋण होने का प्रयास करना चाहिए। मेरे जीवन में कोई ऋण नहीं रहा है। ऋण का अभिप्राय यह है पितर ऋण ऋषि और हमारे यहाँ मातृ ऋण ये तीन प्रकार के ऋण होते हैं इन ऋणों से हम ऊऋण होते चले जाएं। जब इन तीनों ऋणों से मुक्त हो जाते हैं उस समय यज्ञ के समीप जाने का हमें अधिकार होता है। हम परम पवित्र हो कर के चलें। परम पवित्र का अभिप्राय यह है कि मन, कर्म, वचन से पवित्र

हो जाएं और परम पवित्र क्योंकि परा से पवित्र हो जाएं। ब्रह्म विद्या में लिप्त हुआ हमारा शरीर हो तो हमारे यहाँ परम पवित्रता उसमें होती है।
हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने तीन प्रकार के ऋण माने हैं। मुनिवरों नौ द्वार माने गए ! हैं। इसीलिए यज्ञोपवीत में प्रत्येक एक बटे हुए धागे में नौ धागे होते हैं। तीन बटे हुए मोटे मार्ग होते हैं। एक एक मैं नौ नौ धागे होते हैं। अभिप्राय क्या कि हमारे इस मानव शरीर में नौ द्वार माने हैं। अहा प्््रभु की रचना !तू कितना महान् है। हे प्रभु !हे प्रभु ! तू कितना विचित्र है। अपने इस मानव शरीर का निर्माण किया इसमें नौ द्वार बनाए। नौ द्वार वाली इस नगरी में विराजमान होने वाला अन्तरात्मा वह निकस नहीं पाता। वह निकसता नहीं इस शरीर में कैसी विचित्रता है उस मेरे प्यारे प्रभु की। मानव ! नाना प्रकार का आहार व्यवहार करता है। आहार करता है, उदर में जाकर के वह परिपक्व होता है। वह घ्राण इन्द्रिय के द्वारा सूक्ष्म परमाणु होकर के वायु मण्डल में चला जाता है। वायुमण्डल में जितने अशुद्ध परमाणु वह त्यागता है उतने शुद्ध परमाणुओं को वह लाता है शरीर में मुनिवरोंदेखो !, परमाणुओं का आवागमन हो रहा है और कैसी परमाणुवाद है? ऋषि मुनियों ने उन परमाणुओं की गणना की है। लगभग खरब 85 के लगभग एक श्वास में परमाणु जाते हैं मानव के शरीर से। मैं उसकी गणना पूर्ण रूप से नहीं कर रहा हूँ। वाक्य केवल यह कि वे जो परमाणु हैं वे इतने हो जाते हैं और वे अन्तरिक्ष से इतने ही लेता है।
परन्तु वह जो आत्मा है वह कितना सूक्ष्म है? अरे, इन परमाणुओं से भी सूक्ष्म है। वह कितना सूक्ष्म है? एक परमाणु के जब सौ भाग किए जाते हैं तो सौवां जो भाग होता है उसके भाग किए जा 60ते हैं। और देखो !वां जो भाग होता है उसके मुनिवरों 60, आत्मा विराजमान है। मेरे !101वां इस मानव शरीर में बेटा भाग किए जाते हैं। 101 वह कितना सूक्ष्म आत्मा है !ऋषिवर !प्यारे? परन्तु देखो, परमाणु चला जाता है। परन्तु आत्मा नहीं जाता। प्रभू तू कितना विचित्र है? आज हम इस विज्ञान को जब जानने का प्रयास करते हैं तो हमारा हृदय गदगद होने लगता है। मैं यह कहा करता हूँ कि उस प्रभु का जितना हमें गुणगान गाना चाहिए उतना गाया नहीं जाता। वह द्वारा वाले 9

इस शरीर में विराजमान है और क्यों विराजमान है? परन्तु निकल नहीं पाता। माता के शरीर में जब गर्भाशय की स्थापना होती हैं तो वह अन्तरात्मा रज और वीर्य के रूप में माता के उस महान स्थल में विराजमान हो जाता है। वही तो इतना महा परमाणु रूप इतना सूक्ष्म है। माता के शरीर में प्रविष्ट हो गया है। उन नौ द्वारों का निर्माण हो रहा है। कैसी विचित्रता है बेटा उस मेरे देव की। आज मैं अपने उस देव की महिमा का ! गुणगान गाने में असमर्थ हूँ। क्योंकि वाणी में इतने शब्द नहीं है जो उसकी मैं प्रशंसा माता के शरीर में प्रविष्ट हो जाते ही नौ द्वारों !ऋषिवर !मेरे प्यारे !कर सकूं बेटा का निर्माण हो रहा है। उसमें विराजमान होने वाला अन्तरात्मा वह कैसा विचित्र है कैसा महान है। नौ द्वारों वाले शरीर रूपी इस नगरी में से नहीं निकल पाता। इसीलिए ऋषि कहते हैं एक एक धागे में 9 देखो !धागे होते हैं। इसीलिए मुनिवरों 9, ज्ञान, कर्म और उपासना के द्वारा मुनिवरोंदेखो !, नौ द्वारों को हमें जानना चाहिए।

यह जो द्वार हैं क्या इन नौ द्वारों का कार्य है। इनको जानना और इन द्वारों में 9 प्रविष्ट हो करके इस गृह को दृष्टिपात करना यह महान ऋषियों का कर्त्तव्य होता यह इसीलिए हमारे यहाँ यज्ञोपवीत को पवित्र माना है। यह !ऋषिवर !है। मेरे प्यारे ज्ञान और विज्ञान का प्रतीक माना गया है। आज हम इसको परम पवित्र जब उच्चारण करते हैं तो परम पवित्र क्यों हैं? क्योंकि नौ द्वारों पर हमें संयम करना चाहिए हम अपनी वाणी से आवेशों में आकर के अशुद्ध वाक्य न उच्चारण करें। क्योंकि वाणी भ्रष्ट हो जाएगी, वाक्य अशुद्ध हो जाएगा। मुनिवरों इसीलिए हमारे दो घ्राण के छिद्र हैं। ! दो हमारे यहाँ श्रोत्रों के छिद्र है और दो चक्षु के छिद्र हैं। उपस्थ और गुदा ये नौ द्वार माने गए हैं।

इन नौ द्वारों में नौ ही देवता विराजमान हैं। एक एक स्थान पर दो दो देवता विराजमान है। जैसे हमारे यहाँ उपस्थ के द्वारा जल, अभ्रम दोनों ही प्रधानता में परणित रहते हैं और गुदा के द्वारा पृथ्वी जल दोनों प्रधान हैं। इसी प्रकार मुखारिबन्द में अन्तरिक्ष और जल की दोनों की प्रधानता मानी गई है। घ्राण के द्वारा वायु और अन्तरिक्ष दोनों की प्रतिभा मानी गई है। और चक्षुओं में प्रकाशम् सूर्य प्रभा अग्नि का प्रकाश माना गया है

अग्नि और वायु की आभाओं में रमण करता रहता है। इसी प्रकार दिशाओं का दिशा यह जो श्रोत्र हैं इनका दिशाओं से सम्बन्ध रहता है। अश्विनी कुमार इनके देवता माने गएं हैं। तो बेटाहमें प्रत्येक देवता को जानना है। औ !र वह जो देवता है उस देवता को जान कर के हमें भौतिक विज्ञान और आदूयात्मिक विज्ञान दोनों का मिलान करके अपने राष्ट्र को पवित्र बनाना है। मेरे प्यारे राष्ट्र उस काल में पवित्र बना !ऋषिवर ! करता है। जब दोनों विज्ञानों का समन्वय होता है। जब दोनों विज्ञानों का समन्वय हो जाता है तो हमारा जीवन हमारा राष्ट्र हमारी मानवता पवित्रवाद में रमण करने लगती है।

आओ मेरे प्यारे मैं आज अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। वाक्य !ऋषिवर ! यह कि हमारे यहाँ यज्ञमान जब यज्ञ के समीप जाता है तो यज्ञशाला में यज्ञोपवीत को धारण करता है। यज्ञोपवीत को उपनयन भी कहा गया है। परन्तु आज हम जब यह विचारते हैं कि हमें वास्तव में इस आभा को विचारता है। इस यज्ञोपवीत को हमें धारण करना है। वह इतना महान है कि इसको धारण करने के पश्चात् मानव को अपनी कृतियों पर आहार और व्यवहार पर उसका नियन्त्रण होने लगता है। पर आज जैसा मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने प्रगट कराया है यज्ञोपवीत को धारण करके भी जो ! आज का मानव दूसरों के मांस को भक्षण करता है वह नारकीय कहलाता है। जैसा महानन्द जी ने मुझे प्रकट कराया है कि वह नारकीय किसलिए बनता है? क्या ऋषियों का वाक्य, ऋषियों का ऋण उसके समीप होता है? यदि वह दूसरों की वेदना को अपने में धारण करता अपने उदर में धारण कर लेता है तो उस मानव की आभा का विनाश हो जाता है आज हम कहाँ चले जा रहे हैं? वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है कि आज हम इन आभाओं को सदैव विचार विनिमय करने का प्रयास करें। जब हम परम पवित्र बनकर के यज्ञ के समीप जाते हैं तो उस समय यज्ञ का अभिप्राय क्या है? इन नौ द्वारों पर हमें संयम करना है नौ द्वारों पर संयम करना यज्ञमान को हमारे यहाँ कर्म काण्ड की पद्धति में कहा है।

यज्ञशाला में जो अग्नि प्रदीप्त होती है उस अग्नि को और नेत्रों की ज्योति, दोनों का

समन्वय कर देना चाहिए। दोनों का समन्वय करने का अभिप्राय इस ज्योति का दिग्दर्शन करना चाहिए। उसके दर्शन करने का अभिप्राय क्या कि उससे मानव एकाग्र चित्त वाला बनता है और उस यज्ञमान का जो इष्ट है, घर है वास्तव में वह उसे प्राप्त होता है। जैसी अग्नि यह प्रदीप्त हो रही है इसी प्रकार हमारा जो हृदय है इस हृदय में इसी प्रकार ज्ञान की अग्नि प्रदीप्त हो रही है। जब मानव ब्रह्म इन्द्रियों के इन्द्रियों के विषयों को वह जो यज्ञशाला में हृदय रूपी यज्ञवेदी में ज्ञानरूपी अग्नि प्रदीप्त हो रही है, प्रचण्ड हो रही है उस अग्नि में जब इन्द्रियों के विषय में जाकर के स्वाहा कहकर के अर्पित कर दिए जाते है उस समय वह ऋषि बना है, ब्रह्मचारी बना है, तपस्वी बना है वह इन्द्रियों को इन द्वारों को अपने हृदय में ही दृष्टिपात करता है।

विश्वकर्मा ने यज्ञशाला का जब निर्माण किया तो यज्ञशाला में छिद्रों का भी निर्माण किया। जिससे मुनिवरों जो यज्ञशाला में जो नाना प्रकार की दुर्गन्ध है वह उसमें से ! द्वार हैं। क्या 9 दूर होती रहे। इसी प्रकार हमारा जो मानव शरीर है इसीलिए इसमें इसमें हम इससे प्रकृति को अशुद्ध करते रहते हैं। घ्राण के द्वारा, नेत्रों के द्वारा, मानों श्रोत्रों के द्वारा, उपस्थ और गुदा के द्वारा हम संसार को में प्रकृतिवाद को अशुद्ध करते रहते हैं। नाना अशुद्ध परमाणुओं से दुर्गन्ध से मुनिवरोंदेखो !, जब इसी नौ द्वारों को एकाग्र करके हम यज्ञ करते हैं तो हम जहाँ दुर्गन्ध करते हैं वहाँ सुगन्धि भी करते हैं और वह जो सुगन्धि है वह दुर्गन्धि के परमाणुओं को निगल जाती है। वह वातावरण को शोधन कर देती है, पवित्र बना देती है। क्या मानव जो मन में दुर्गन्धि करता है मन में चंचल भाव आ जाता है। वह हृदय रूपी यज्ञवेदी से ही मानव को पवित्र बना देता है। वह उसी काल में उसको पवित्र बनाता है जब मुनिवरों हृदय ब्रह्म व्याप हृदय ! रूपी यज्ञवेदी में इन्द्रियों के विषय, मन को एकाग्र कर के इन्द्रियों के विषय उसमें भस्म हो जाते हैं। क्योंकि मन का विषय मन की जो दुर्गन्धि है वह हृदय की अग्नि से ही पवित्र बना करती है। उसका शोधन हृदय से ही होता है।

आज मानव के हृदय में नाना रूपों वाला कपट का वाक्य होता है मन में कुछ कुछ और बाहर कुछ होता है तब अरे, मानव तेरा जीवन इस संसार में व्यर्थ है। ऐसे !

प्राणियों को संसार में प्रभु की सृष्टि में जीवन व्यतीत करने का अधिकार नहीं दिया है। क्योंकि जो हृदय में एक मानव के प्रति नाना प्रकार का छिद्र होता है ऊपरी मानव मधुर वाक्य उच्चारण करता है वह मानव मुनिवरों परमात्मा के राष्ट्र में अन्धकार में ! जाते हैं। यहाँ वह मानव कहीं कहीं जहाँ वाक्य छिद्रम् ब्रह्म व्याप, जिस वाक्य को हमें अपने में शान्त करना है। वाक्य को अपनी प्रतिभा में लाना है। उस वाक्य को हम वास्तव में पवित्र बनाना चाहते हैं इस हृदय से, पवित्रता मानी हृदय से होती है। जितना हृदय पवित्र होता है उतना ही वातावरण पवित्र होती है। और जितना वातावरण पवित्र होता है उतना ही मुनिवरों मानवीय जीवन पवित्र होता है और राष्ट्रवाद में ऊँची तरंगे !

आज मैं अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। !होती हैं। बेटा

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमारा हमें यज्ञ के समीप जाना चाहिए, परम पवित्र होकर के जाना चाहिए। प्रभु का वास्तविक भक्त बन करके हृदय को पवित्र बनाना चाहिए। हमें ज्ञान और विज्ञान का दोनों का मिलना करना चाहिए। मेरे प्यारे !ऋषिवर ! प्रभु का विज्ञान विशाल है हमें प्रभु के विज्ञान पर विचार विनिमय करना है। प्रभु का विज्ञान कितना विशाल है, कितना महान् है, कितना पवित्र है, इस वाक्य को बारम्बार हमें विचार विनिमय करना चाहिए। इसीलिए आज हम प्रभु की महिमा का वर्णन कर रहे थे। आज मेरे प्यारे हमारे वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि प्रभु !ऋषिवर ! की महिमा का गुणगान गाते रहें और प्रभु की उस महान देव की अनुपम कृपा से इस संसार सागर से पार होते रहें। यह है बेटा आज का वाक्। आज का वाक् उच्चारण ! करने का अभिप्राय यह कि हम प्रभु की गोद में जाने का प्रयास करें। भौतिकवाद को आज मैं उच्चारण !भीविचारों ज्ञान और विज्ञान की आभा में रमण करने वाले बनें। बेटा कर रहा था त्रिविद्या कोमन्थन करने के पश्चात् विज्ञान उत्पन्न हुआ करता है आज हमें ज्ञान और विज्ञान की वेदी पर विचरण करना चाहिए। महान् और पवित्र बनना चाहिए। अपने हृदय स्थल में हम प्रभु का दिग्दर्शन करें। यह आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। धन्य हो13........

नवम्बर 1971 स्थान चतुर्वेद पारायण यज्ञ समारोह :

७ 11 03 1972 पुष्प 23 मानव की आयु श्वासो पर निर्भर

जीते रहोदेखो ! !, मुनिवरोंआज हम पूर्व की भांति !, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान, गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस वेदवाणी में ज्ञान और विज्ञान की विवेचना करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। क्योंकि प्रत्येक मानव प्रत्येक मेरा प्यारा ऋषि तथा मनि यह चाहता रहता है कि मैं इस संसार के क्षेत्र में सबसे ऊँचा और महान बनूं। वह अपनी उड़ान भी ऊँची ही उड़ना चाहता है। संसार में कोई मानव यह नहीं चाहता कि मुझे आनन्द प्राप्त न हो। आनंद की उस मानव को आकांक्षा रहती है। परन्तु यहाँ वेद का ऋषि कह रहा है कि आनंद की ईच्छा तो रहती है परन्तु वह आनंद प्राप्त किस प्रकार होता है? उन कर्मों को, विचार को, उस मानवता को लाने का भी तो प्रयास करना चाहिए।

केवल विचार से ही आनंद प्राप्त नहीं होगा जब तक मानव के जीवन में क्रियात्मक चरण नहीं होता। मुनिवरों क्रिया करना यह मानव का स्वभाव बना रहता है स्वभाव ! तो बना रहता है परन्तु उसको कौन सी क्रिया करनी है? किन आदेशों का पालन करना है? इसके ऊपर अनुसन्धान करना है मैंने पूर्व काल में तुम्हें यह प्रकट कराते हुए कहा था कि यह जो संसार है इसके कितने स्तम्भ हैं? उन स्तम्भों पर मैंने कई बार अपना विचार दिया। आजमें उन स्तम्भों में जाना नहीं चाहूँगा। विचार यह कि आज का हमारा वेद पाठ क्या कह रहा हैहमारी वेद की ध्वनि क्या कह रही है !? बेटा इसके ऊपर ! आती (निर्णय) विचारना है। हमारे यहाँ वेद मन्त्रों में भिन्न भिन्न प्रकार की विवेचनाएं रहती हैं। आज भी ऋषि मुनियों का एक विचार आ रहा था यज्ञों के सम्बन्ध में। मैंने कई कालों में यज्ञों की विवेचना की उनका निरूपण विचारपूर्वक (भली भांति विचारना) निर्णय भी किया। परन्तु यज्ञों की प्रतिभा में क्या है? कर्मकांडका जो रहस्य है वह कितना सूक्ष्म है क्योंकि मानव को कर्मकांड केवल भुजाओं से ही नहीं करता है कर्मकांड

का अभिप्राय यह है कि जो आत्मा का प्रकाश है, आत्मा की ज्योति है उस ज्योति को हमने उस ज्योति से समन्वय करना है जो ज्योति देवताओं का दूत बना हुआ है। जो देवताओं की एक प्रतिभा बनी हुई है। हमें उस ज्योति से अपना मिलान करने का प्रयास करना है। तो यहाँ वेद के ऋषि ने बहुत सुन्दर कहा है। यज्ञमानम प्रवे प्रकृति अस्वतम मम वेतु यज्ञमानः, हे यज्ञमान तू आज अपनी प्रवृत्तियों को अपनी मानवता ! को विचाराने का प्रयास कर।

हे यज्ञमान तू संसार को क्या देवताओं से अपनी आयु के विषय में सक्रिय प्रार्थन कर ! कि आयु को प्रदान करें। क्योंकि मैं आयु को पान करना चाहता हूँ आयु कैसे प्राप्त होता है? मानव को नाना प्रकार का संदेह रहता है कि आयु मानव के श्वासों के ऊपर रहती है। किन्हीं आचार्यों का यह मत है कि प्रारब्ध के ऊपर रहती है क्योंकि किन्हीं आचार्यों का मत है कि आयु मानव को पूर्व जन्म संस्कार से प्राप्त होती है। मानव में भिन्न भिन्न प्रकार का विचार विनिमय होता रहता है। बेटा अब विचार यह है कि कि ! यहाँ दर्शन क्या कहता है? दार्शनिक पुरुष क्या निर्णय देते हैं? कोई मानव कहता है कि आयु जो है यह श्वासों के ऊपर है। जितने मानव श्वास अधिक ले लेता है उतनी आयु को सूक्ष्म बनाना है। कोई कह रहा है कि आयु मानव के प्रारब्ध से है। और यदि प्रारब्ध से है तो मानव आयु को ऊर्ध्व कैसे बना सकता है? आयु को कैसे अधिक बना सकता है? यह मानव के मस्तिष्कों में प्रश्न आता रहता है। तो बेटायह प्रश्न भी प् !रश्न रह जाता है।

परन्तु इसका संक्षिप्त उत्तर यह है कि आज हम प्रारब्ध पूर्व जन्म का जो संस्कार है उसके आधार पर जैसा हमारे यहाँ कहा है कि 1. आयु 2. जाति 3. भोग यह पूर्व जन्मों के संस्कारों से प्राप्त होते हैं। आयु कितनी है? जाति मनुष्य है। पक्षी है कौन सी योनि प्राप्त होनी है बेटा1 ये जातियां हैं। कौन सी जाति प्राप्त होनी है !. आयु 2. जाति और 3. भोग जो भी हमें भोग भोगना है इस संसार में जितना भी कलंकित होना है जितना भी हमें सुख प्राप्त करना है वह सब हमें पूर्व जन्मों के संस्कारों से प्राप्त होते हैं ऐसा भी आचार्य जनों ने माना है परन्तु आज मैं दार्शनिक विचार देने यह आया हूँ !

!कि इसमें दार्शनिक पुरुष क्या कह रहे हैं। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने एक समय बेटा वायु मुनि महाराज का जो सिद्धान्त है उनका जो विकार है वायु मुनि वंश में ही महर्षि कुकुट मुनि जी हुए !मुनिवरोंग्रौर कुक्कुट मुनि के जो सातवें बाबा थे महर्षि भृंगी जी। उन से भी कुछ इस सम्बन्ध में विचार विनिमय करता रहा हूँ। परन्तु देखो, उस वंश का एक निर्णय है। इन ऋषि मुनियों के विचार के अनुसार महर्षि अंगिरा की भी विचार में कुछ अपना विश्वास करते हैं। वह विचार क्योंकि 1 आयु 2. जाति और 3. भोग को हम किन रूपों में परणित करते हैं। पूर्व जन्मों से प्राप्त होती है अथवा वह आयु ही श्वासों के ऊपर होती है।

बेटा जहाँ तक यह प्रश्न है कि पूर्व जन्म के संस्कार तो मानव के सहित होते ही हैं। ! इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसमें मानव का द्वित ीय विचार नहीं है। न दो मत रहते हैं। क्योंकि वैदिक विचार विनिमय करने वाले जो पुरुष होते हैं बेटा वे यह स्वीकार ! करते चले आए हैं कि मानव का जन्म या किसी भी योनि में जाना इस आत्मा को यह किसी द्वितीय रूपान्तर का ही भेदन है। ऐसा हमारे यहाँ स्वीकार करते हैं। यह रूपान्तर है। आज कोई मानव यह उच्चारण करता है कि मृत्यु क्या है? क्योंकि मृत्यु के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार का भेदन रहता है तो मैं और आचार्य क्या केवल मैं ही नहीं हमारे ऋषि मुनियों ने भी यह कहा है कि मृत्यु का अभाव रहता है। संसार में तो आज यह विचारना चाहिए कि जितने बुद्धिजीवी विवेकी पुरुष होते हैं, विवेकी माताएं होती हैं वे अपने मस्तिष्क से इस वाक्य को दूर कर देते हैं कि मृत्यु का संसार में अभाव है। यह तो मानव शरीर का रूपान्तर होना है। रूपान्तर का नाम ही और अज्ञानता का नाम मृत्यु कहलाया गया है। इसलिए मृत्यु का संसार में प्रश्न उत्पन्न होने का कोई विचार नहीं है दार्शनिक पुरुषों का।

परन्तु विचार केवल यह है कि आज 1. आयु 2. जाति और जो 3. भोग है कितना मुझे भोग भोगना है? कितनी मेरी आयु है? बेटाआयु का अभिप्राय क्या है !? विचारना यह है दार्शनकारों ने भी कहा है, आचार्यों ने भी यह कहा कि दर्शनम ब्रह्म व्यापः अस्वत लोकः। क्योंकि उस दर्शन को विचारना चाहिए जिस दर्शन में मुनिवरों भोगों का !

विवरण आता है, आयु का विवरण आता है। तो मेरे विचारने को बेटा यहाँ वाय मुनि ! का सिद्धान्त तथा उनके वंशजों का यह है कि मानव की जो आयुहोती है वह श्वांसों के ऊपर होती है। श्वास की गति को जितना धीमा बनाया जाता है जितना उसको अपने में धारण कराया जाता है उतनी ही आयु दीर्घ होती चली जाती है। परन्तु श्वास के साथ में जितना परमाणुवाद है एक एक परमाणु जो अन्तरिक्ष से लेता है जितना भी उसका सुन्दर वातावरण होगा सुन्दर परमाणु, होंगे, मुनिवरो, वह प्राण के साथ में आवागमन करते रहेंगे तो उतना मानव का हृदय प्रसन्न रहता है। उस प्रसन्नता को लाना है जो प्रत्येक श्वास के साथ में मानव में प्रसन्नता उत्पन्न हो। बेटा वह क्या है आज ! हमें परिस्थित को बनाना है। उन्हींवाक्यों को लाना है। उन्हीं परमाणुओं को लाना है। जिससे बेटा मानव का हृदय पवित्र होता है। मेरी प्यारी माता प्रसन्न होती है। !

एक मेरी प्यारी माता का पुत्र है। परन्तु वह पुत्र को दृष्टिपात करके कितनी प्रसन्न होती है। उसकी प्रसन्नता का मूल कारण यह है कि वह माता का हृदय है। यदि माता का हृदय नहीं होता तो माता को प्रसन्नता उत्पन्न होने का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। क्योंकि वह जो प्रसन्नता है वह हृदय से करती है। क्योंकि अपने हृदय से उसे स्नेह करता है। इसलिए बेटाविचार क्या कि जो श्वास है श्वास की गति को जानन !े वाला जो प्राणी होता है, उसे संसार में सर्वस्व सुख होता है। और सुख क्यों होता है? क्योंकि वह जो प्राण है, वह जो परमाणुवाद है, वह जो आभा है जब मानव के हृदय से उसका उदगार उसका जन्म होता है। और हृदय में उसका मिलान होता है। इसलिए बेटा ! प्रत्येक श्वास के साथ मेंं मानव प्रसन्न चाहता है। प्रायः मानव दुखित हो करके यह कहा जाता है कि क्या मुझे तो एक भी श्वास जगत में ऐसा नहीं आया जो मैं प्रसन्न रहूँ। जो मुझे सुख आ जाए। परन्तु जहाँ सुख का प्रश्न है केवल सुख उसी मानव को प्राप्त होता है जो मानव हृदय को जानता है हृदय की विचित्रता को जानता है बेटा ! हृदय के उदगार को जानता है। और उसके प्राण की जो उत्पत्ति होती है प्राण का जो उद्गार है उसी को जानने वाला मानव संसार में प्रसन्न रहता है। उसी को सुख प्राप्त होता है। वही संसार में आनंदित रहता है। उसके लिए यह जगत चाहे नग्न रहे।

परन्तु वह उन वाक्यों पर, उन विचारों में चला जाता है जिन विचारों में मानव को वृष्यता वीर्य), बल, आनन्द यह !आती है विचारों में वृष्यता आने के पश्चात मुनिवरों (वृष्यता वाला प्राणी बन करके इस नाना प्रकार का जो भौतिक जगत् है इससे वह उदासीन हो जाता है। उदासीन का अभिप्राय केवल क्या? क्योंकि वह ब्राह्मण बन जाता है। मैंने बेटा ब्राह्मण की कल सूक्ष्म विवेचना की। ब्राह्मण की विवेचना करने वाले ! पुरुषों ने कहा है कि ब्राह्मण बनो। ऋषि कहता है वेद का ऋषि कहता है ब्राह्मण इत् आब्रह्मन् ब्राह्मणों ब्रह्मवर्चसी जायताम्0) जायताम।यादि यजु22 अध्याय 0, मं0) है। प्रभु संसार में ब्राह्मण दे। परन्तु वह ब्राह्मण क्या है? जो ब्रह्म को जानता है जिसको एक एक श्वास सुख का आता है। उसी को ब्राह्मण कहते हैं। मुनिवरोंदेखो !, उस ब्राह्मण के हृदय में निराशा नहीं आती। निराशा का नाम उसके मस्तिष्क में आता ही नहीं। क्योंकि वह सूक्ष्म वार्त्ताओं पर न जाता है। न केवल उदासीन रहता है। वह सदैव प्रसन्न रहता है।

बेटाप्रसन्नता कहाँ से आती है !? प्रसन्नता आती है मुनिवरो, इस प्राण के द्वारा। प्राण में प्रसन्नता कहाँ से आती है? मुनिवरो, इस वायुमण्डल से। वायुमण्डल में प्रसन्नता कहाँ रहती है? मुनिवरोंदेखो !, उसकी आभाओं में। वायु की आभाओं में प्रसन्नता कहाँ से आती है। मुनिवरोंद्युलोक से द्यु लोक में प्रसन्नता कहाँ रहती है !? क्योंकि द्यु लोक स्वयं ही प्रसन्नता से पूर्ण होता है। उसमें प्रसन्नता का अभाव उत्पन्न ही नहीं होता। क्योंकि जिसको द्यु लोक कहा जाता है, द्यु मण्डल है उसका सम्बन्ध मानव के हृदय से होता है। इसीलिए हृदय में वह समाहित होता है। हृदय से ही वे तरंगे उत्पन्न होती हैं। तो मुनिवरो, इसीलिए वेद का ऋषि कहता है कि इस वायु मण्डल को पवित्र बनाने चले जाओ। हे यज्ञमान आज तू अपनी मानव आभा के द्वारा इस अन्तरिक्ष को भरण ! करते चले जाओ।

कैसा भरण? बेटायज्ञमान का अभिप्राय क्या है !? यज्ञमान तो प्रभु को कहा गया है। ! यज्ञमान एक यजशाला में सपत्नीक विराजमान होता है। उसे भी यज्ञमान कहते हैं। यज्ञमान इस आत्मा को भीकहा गया है। यज्ञ ब्रह्म। जो यज्ञ करता है वह यज्ञमान है।

बेटा आचार्यकुल में आचार्य आने ब्रह्मचारी को शिक्षा दे रहा है। वह यज्ञ कर रहा ! है। यज्ञमान है। कैसा यज्ञमान है? बेटा वह माता कितनी सुन्दर यज्ञमान है जो यहाँ ! कणाद और गौतम को जन्म देने वाली, महर्षि मुद्गल और वायु को जन्मदेने वाली कितनी सौभाग्यशालिनी होती है। बेटा वह माता कितनी प्रसन्न होती है। उस माता ! का हृदय कितना उद्गम होता है। ऐसा ऋषि कहते हैं। मुनिवरो, कल मैंने कुछ सूक्ष्म चर्चाएं प्रकट की थीं और वे क्या थीं कि माता को स्नेह पूर्व ही प्रथम माह में जब माता के गर्भ में आत्मा प्रविष्ट हो जाती है तो आत्मा के आते ही माता को सदैव मुनिवरों ! देखो, ऐसे स्थान में प्रविष्ट होना चाहिए जहाँ शुद्ध वायु प्रविष्ट होती हो। यज्ञ करनाचाहिए, सुगन्धि देनी चाहिए, उस सुगन्धि के द्वारा उत्पन्न अन्न का पान करना चाहिए, जैसे गो घ्रत है जैसे माह है इनका भात बना करके और गो (चावल) है तन्दुल (मांश गड़द) घृत के द्वारा इसको लवण रहित और मिष्ठान्न रहित होना चाहिए। इसको सूक्ष्म पान करने वाली माता गो घृत में जब अपने मुखारबिन्द का चित्रण 2 समय (थोड़ा) करती है तो मुनिवरो, वह माता अपने गर्भ में उस बालक का निर्माण कर रही है अपनी बाह्य क्रियाओं से। ऐसा मुझे स्मरण आता रहता है।

वेद का ऋषि कहता है कि बेटा जब !माता निर्माण करती है। उस समय मुनिवरों ! पूर्णिमा का दिवस आता है तो पूर्णिमा के दिवस रात्रि भर जागरण करना चाहिए। चन्द्रमा की आभाको दृष्टिपात करना चन्द्रमा की आभा को श्वांस के द्वारा, नेत्रों के द्वारा, श्रोत्र के द्वारा उस चन्द्रमा की कान्ति को समय समय पान करना चाहिए। पान करने का अभिप्राय क्या है? क्योंकि वह शरीर में स्पर्श तो करेगी। पान का अभिप्राय यह है कि उस चन्द्रमा के मुखारबिन्द से अपने मुखारबिन्द का मिलान करना। मिलान करने का अभिप्राय क्या? यह भी मैं स्पष्टीकरण किए देता हूँ। मिलान का अभिप्राय यह क्या उस चन्द्रमा में जो एक आभा है एक क्रान्ति है अपनी कान्ति का और उसकी शान्ति का दोनों का मिलान करना इसमें मस्तिष्क में विचारना हृदय में उसको धारण करना। हृदय में चन्द्रमा को नेत्रों से नेत्र चन्द्रमा के मिलान होते हैं। माता नेत्र शान्त करके जब

उसका ध्यान करती है, अर्न्तध्यान तो उसको मुनिवरो, वह पान कर रही है।

माता तो वह अमावस्या के दिवस जब वह चिन्तन करती है तो वह मुनिवरो, गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक मानो सोम को पान कर रहा है। माता के द्वार सोम को पान करता हुआ इस सागर से आवृत होने लगता है। ऐसा मुझे स्मरण आया है। आज वेदाचार्य कहते हैं आयुर्वेद के ऋषियों ने कहा है। मुनिवरों अमावस का दिवस आता ! है। अमावस के दिवस शान्त गति रहना। उस समय अन्धकार में प्रकाश का ध्यान करना। अन्धकार क्या है? अन्धकार, मुनिवरों रात्रि का चन्द्रमा तथा सूर्य के न रहने ! को अन्धकार नहीं कहते हैं। सबसे अधिक अन्धकार वह होता है कि मानव में ज्ञान और विवेक का अभाव ही अन्धकार कहलाया गया है। उस समय वह माता के गर्भ में अपनी आत्‍मज्योति का चिन्तन करता है। बेटा इस प्रकार से महर्षि अगस्त मुनि ! जो माह होते हैं 9 के 9 इसी प्रकार !ऋषिवर !जैसों का जन्म होता है। मेरे प्यारे इनमें प्रत्येक माह में इसी प्रकार का चिन्तन करना।

द्वितीय माह में सोम वाली वस्तु को पान करना है। बेटावे सोम लता !ंए होती हैं। जैसे शंख भूनि होती है, सोम भानि होती है। अमावस् के दिवस पूर्णिमा के दिवस व्रत रहना और नाना प्रकार की औषधियों का पान करना। बेटा उस माता के हृदय से ! उत्पन्न होने वाले बालक का हृदय जब तक वह बालक जीवित रहेगा, उसका हृदय कदापि भी सूक्ष्म नहीं बन सकेगा। मुझे नाना प्रकार की वार्त्ताएं स्मरण आती रहती है। बेटा मैं इस विषय को अधिक नहीं लेना चाहता हूँ। अधिक उच्चारण करना नहीं चाहता ! हूँ।

विचार क्या है कि हमारे यहाँ मुनिवरोंदेखो !, विचार यह चल रहा था कि प्रत्येक श्वास के द्वारा आनन्दित होना चाहिए प्राणी को। आनन्द कैसे प्राप्त होता है? जब बेटा वह ! अपने में धारणा करता है? वह नाना वस्तुओं को धारणा करता हुआ एक वैज्ञानिक है। वह चन्द्रमा की यात्रा में जा रहा है। यात्रा करना चाहता है उसको कितनी निष्ठा है, कितनी आस्था है, क्या उसे मृत्यु का भय नहीं है? केवल यह विचार उसके मस्तिष्क है, यह निष्ठा है। कि मुझे चन्द्र यात्रा करन है, मुझे चन्द्रमा पर जाना है। यह नहीं

विचारता कि विधुत में, अग्नि की तरंगों में यह जो तुम्हारा यन्त्र जा रहा है वायु की तरंगों और अग्नि कि तरंगों में ही जो उड़ान उड़ रहा है जो प्राणी उसको मृत्यु का भय नहीं होता। उसे केवल एक निष्ठा होती है। वह कितना त्यागी उदासीन हो गया हो इस जगत से, इसी प्रकार बेटा उसको वास्तविक उदासीन नहीं कहते। उदासीन जो ! वे चन्द्रमा का धातुओं का यन्त्र बनाते हैं। परन्तु जो !महापुरुष होते हैं। मुनिवरों वास्तविक उदासीन होते हैं आत्मिकउदासीन होते हैं वह मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का यन्त्र बनाकर के बेटा !ऋषिवर !मेरे प्यारे !लोक लोकान्तरों में विराजमान रहते हैं। बेटा ! । आज का विचार मैं क्या देने चला गया। विचार केवल यह है कि हम इन वाक्यों को बारम्बार विचार विनिमय करने वाले बनें।

मुझे स्मरण रहता है बेटा महर्षि भारद्वाज मुनि एक समय विराजमान थे और राजा ! कुम्भकर्ण भी उस यज्ञशाला (भाई) रावण के पुत्र नरान्तक और राजा रावण के विधाता में विराजमान थे। यज्ञ कर रहे थे। कुछ अनुसन्धान चल रहा था। परमाणुओं का मिलान कर रहे थे। तो महर्षि भारद्वाज मुनि ने कुम्भकर्ण जी से एक वाक्य कहा था। कुम्भकरर्ण का बाल्यकाल का नाम अश्विनी केतु था। अश्विनी केतु से वह प्रश्न कर रहे थे। परन्तु कुम्भकर्ण का नामोच्चारण इसलिए करने लगे क्योंकि वह बलवान था, बलिष्ठ था हृदय का विशाल था। क्योंकि कुम्भकर्णाम प्रवे, जैसे कुम्भ के मुनिवरोंदेखो !, जल होता है, जल शीतल होता है, सौम्य होता है उसी प्रकार उनका भी स्वभाव शीतल और सौम्य रहता था। विचार बहुत रहता था तो उसको कुम्भ के तुल्य उसको कुम्भकर्णाम् प्रवे क्या तुम कुम्भकरर्ण की तरह बलवती हो। कर्ण का अर्थ श्रवण इन्द्रिय है। उसका मस्तिष्क इतना विशाल था जैसे कि कुम्भ का आकार होता है वह नाना प्रकार की वस्तुओं को श्रवण करने वाला कुम्भकरर्ण था। महर्षि भारद्वाज उसे कुम्भकरर्ण कहा करते थे। तो मेरे प्यारे कुम्भकर्ण में यह विशेषता थी कि वह निद्रा को !ऋषिवर ! बहुत सूक्ष्म पान करते थे। उन्हें निद्रा बहुत ही सूक्ष्म आती थीं। उन्हें कम क्यों आती थी? क्योंकि वे सदैव अनुसधान में लगे रहते थे। एक समय महर्षि भारद्वाज मुनि ने यह कहा कि आज तुम्हें यन्त्र में विराजमान हो करके उड़ान उड़नी है। तो मुनिवरों उन्होंने !

को आज्ञा हो। तो महर्षि भारद्वाज मुनि !कहा प्रभुके कथनानुसार उन्होंने एक इस यन्त्र का निर्माण किया था।

वह प्रातःकाल के यज्ञ करते, यज्ञ करते हुए यज्ञ में जब स्वाहा करते थे तो वे 284 प्रकार की औषधियों को एकत्रित करके सामग्री बनाते थे। और वह जो साकल्य देखो !था वनस्पतियां थीं मुनिवरों, किसी में अग्नि प्रधान, किसी में वायु प्रधान किसी में जल प्रधान, औषधियों में भी इन्हीं में से किन्हीं तत्त्वों की प्रधानता होती है। परन्तु उनके द्वारा जब वह साकल्य बना करके आहुति देते थे। उनके यहाँ लगभग कोण 9 कोण वाली यज 9 कोण की यज्ञशाला होती है उस 9 वाली यज्ञशाला थी। जो्ञशाला में सुगंधित साकल्य प्रदान किया जाता था। उससे सुगंधि उत्पन्न होती थी। उस सुगंधियों को उस परमाणु को उन यन्त्रों में लेते थे। तब उनसे वे यन्त्र में उन धातुओं को एकत्रित करके उसमें विराजमान हो करके वह मंगल की यात्रा करते थे। मंगल की यात्रा करने वाले कुम्भकरर्ण जैसे वैज्ञानिक हमारे यहाँ थे। मुझे बेटा वह काल भली भांति स्मरण ! आता रहता है। एक समय महर्षि भारद्वाज की आज्ञा के अनुसार वे यन्त्र, में विराजमान हो करके जब उन्होंने उड़ान उड़नी प्रारम्भ की तो ऐसा कहा जाता है वह यन्त्र इतना शक्तिशाली था कि दो रात्रि और दो दिवस में इस पृथ्वी मण्डल से मुनिवरों यह मंगल ! ऐसा मुझे स्मरण है। देखो !मण्डल में उसका वास हो गया। बेटा, वहाँ प्राणी रहते हैं। वहाँ मानव रहते हैं।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने प्रकट कराया कि आधुनिक काल का जो यन्त्र है वह मंगल ! के द्वार पर जाने के लिए तत्पर है। मंगल के मार्ग में इतने पृथ्वी के रज आते हैं क्या यन्त्र को पार करना बड़ा दुरूकर है। परन्तु मैंने एक वाक्य कहा बेटा क्या संसार में ! यह विज्ञान परम्परा से बुद्धिमानों के मस्तिष्कों में रहता है। मानो इस विज्ञान को जानना हमारा तो जन्मसिद्ध अधिकार है। क्योंकि वैदिक साहित्य में वैदिक विचार में वैदिक मन्त्रों में उनकी व्याख्या ही विज्ञान है। मेरे प्यारे आज मैं वेद की !ऋषिवर ! प्रशंसा नही करना चाहता। क्योंकि वेद एक प्रकाश है और जो इसके प्रकाश को जान

लेता है उसके लिए कौन सा लोक ऐसा है जिसमें वह यन्त्र बना करके नजा सके। परन्तु आज का मानव प्रकाश में जाना नहीं चाहता। प्राणी प्रकाश को जानना नहीं चाहता। जैसा मुझे महानन्द जी ने सम्बोधित करते हुए कहा कि आज के संसार का मानव तो वेद को पखारड की पुस्तक उच्चारण कर रहा है। परन्तु विचारना यह कि पाखरड उच्चारण करना तो बहुत ही प्रिय है। परन्तु पाखरड को विचारना है कि पाखरड कहते किसे हैं? इसको विचारने के पश्चात जब उच्चारण करोगे तो पाखरड नाम की जो वस्तु है वह कोई संसार में नहीं है। क्योंकि पाखरड तो अशुद्ध वाक्य को ही कहते हैं। ऐसा परन्तु वेद अशुद्ध नहीं है। वेद तो अशुद्ध हैं, मानव के अन्तःकरण की ज्योति है। बेटा को जान (परमात्मा) जो उस ज्योति को जान लेता है वह उस अखरड ज्योति ! प्रभु ने मनुष्यों का प्रदान की है !लेता है। जो अखंड ज्योति उस मेरे प्यारे, जो सृष्टि में प्रकाश हो रहा है। सूर्य अखंड रूप में प्रकाश दे रहा है। मुनिवरों !देखो, अग्नि द्यु लोक में नाना प्रकार की आभाओं से प्रकाशित हो रही है। वह प्रकाश वह ज्योति अदृश्य ज्योति एवं दृश्यमान ज्योति ये सर्व ज्योतिएं प्रभु के मुखारबिन्द से उत्पन्न होती हैं। यह प्रभु की एक चेतना है और उस प्रभु का जो विज्ञान है, ज्ञान है बेटाउसको ह !मारे यहाँ वेद कहा गया है। वेद किसी पोथी का नाम नहीं है। बेटा वेदानाम एक प्रकाश का है ! और इस प्रकाश का है जो मानवीय हृदयों के अन्धकार को विदीर्ण करने वाला हो। मानवीय हृदयों को पवित्र बनाने वाला हो। मानवीय हृदयों को ऊँचा बनाने वाला हो। उसी को हमारे यहाँ वेदकहा गया है।

आओ मेरे प्यारे मैं वेद की चर्चा नहीं करना चाहता हूँ। विचार यह कि महर्षि !ऋषिवर ! भारद्वाज मुनि आश्रम में देखों यहाँ पुलस्त्य ऋषि महाराज के जो पौत्र हैं वे मंगल की यात्रा करने के लिए तत्पर रहते थे। इनका विचार अनुसंधान प्रायः चलता रहता था। एक समय महाराजा कुम्भकर्ण ने यह कहा कि भगवन मैं यह जानना चाहता हूँ कि ! निद्रा क्या वस्तु है? संसार में उस समय उन्होंने कहा यह जो निद्रा है जिसको हम सुषुप्ति कहते हैं यह सुषुप्ति क्या है? यह मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार एक स्थान में आ जाने का नाम ही निद्रा कहलाई जाती है। उसको हमारे यहाँ सुषुप्ति कहते हैं। सुषुप्ति

क्या है? क्या मन का जो व्यापार है, मन की जो रचना है जो संसार में दृष्टा बना हुआ था, उसको शान्त होने की अवस्था का नाम निद्रा कहते हैं। सुषुप्ति कहा जाता है। परन्तु प्रकृति का जो जागरूक अवस्था का व्यापार है वह समाप्त हो जाता है। उसको निद्रा कहते हैं। सुषुप्ति कहा जाता है।

परन्तु आत्मा का जो व्यापार है, आत्मा और परमात्मा के राष्ट्र में रात्रि नहीं होती। और न वहाँ निद्रा आती है। बेटावह प्रभु का राष्ट्र कैसा है !ऋषिवर !मेरे प्यारे !? किस माता की लोरियों में निद्रा नहीं आती। सुषुप्ति नहीं आती। आलस्य प्रसाद नहीं होता। उस माता की लोरी कैसी है? उस माता की लोरियों को विचारने वाले बनो। वे कैसी लोरियां हैं माता की, क्या जिसमें ज्ञान और प्राण की प्रतिभा का आत्मा के साथ मिलान होता है तो वह माता की लोरी हैं। वह परम आनंद को प्राप्त करा देती है। मेरे प्यारे ऋषि ! हमारा विचार यह कि आज हम उसको विचारने वाले बनें जो हमें एक आनंनद !वर प्राप्त होता है प्रभु के राष्ट्र में जहाँ आलस्य और निद्रा नहीं है। प्रभु के राष्ट्र में प्रमाद नहीं है। उस माता की लोरियों में जहाँ प्रमाद का कोई लेखमात्र नहीं होता। बेटा ! वहाँ आहार, व्यवहार भी विचित्र होता है ऋषि कहते हैं कि जब मुनिवरोंदेखो !, इस आत्मा की चेतना को मन और प्राण को चेतना को एक करके जब मानव ब्रह्मरन्ध्र में इनकी धारा चलती है वही धारा सुखद धारा है। प्रभु से मिलान कराने की धारा है। उस धारा का नाम हमारे यहाँ प्रभु से मिलान कहा गया है। माता की लोरियों में जाना कहा है। यहां जो माता की लोरी है उसमें यह विशाल जगत उसके समीप होता है, प्रभु के विशाल जगत में उस राष्ट्र प्रभु की जो चेतना है उसमें आलस्य, प्रमाद और निद्रा नहीं रहती। क्योंकि प्रकृति के स्वभाव को दवा लिया जाता है। जब प्रकृति के स्वभाव को दवा लिया जाता है तो बेटा वहाँ निद्रा का प्रश्न और प्रमाद का प्रश्न उत्पन्न ! नहीं होता। उसको हमारे यहाँ जो निद्रा के रहस्य को जानता है सुषप्ति के रहस्य को ब्राह्मण कहा है !जानता है उसको हमारे ऋषियों ने बेटा।

मेरे प्यारेब्राह्मण कौन है !ऋषिवर !? ब्राह्मण उसे कहते हैं जो ब्रह्म माता की लोरियों का पान करता है। उसके द्वारा यह जो संसार है, यह जो नाना प्रकार का क्षेत्र बना

हुआ है भोग विलासों का क्षेत्र है यह क्षेत्र यह नहीं होता। हमारे यहाँ वह जो इन्द्रियों के जो शिष्य हैं उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। बेटा इसीलिए जब उसका अपना ! कोई अस्तित्व नहीं है। इन्द्रियां व्यापार इसलिए नहीं करती कि मन का और प्राण का तो मिलान हो ही गया है। वह तो माता की लोरियों को प्राप्त हो गया है। तो वहाँ भोग विलास का क्षेत्र नहीं होता औरजब भोग विलास का क्षेत्र नहीं होता तो वहाँ उदासीनता रहती है जब मुनिवरों भोग विलास का क्षेत्र नहीं होता तो प्रसाद भी नहीं होता आलस्य ! वहाँ सुषुप्ति अवस्था !भी नहीं होता और जब आलस्य और प्रमाद नहीं होते तो मुनिवरों भी नहीं होती। तो विचार क्या कि यह तो शरीर केसाथ में व्यापार लगा हुआ है परन्तु आत्मा के साथ में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, प्राण का मिलान करने से सांसारिक व्यापार अपना अस्तित्व नहीं रहता। जब अस्तित्व नहीं रहता तो इनका दोष भी नहीं रहता। मन के कारण ही संसार में आवागमन का चक्र बन जाता है।

मेरे प्यारे !ऋषिवरआज का हमारा यह वेद का ऋषि क्या कह रहा है !? मैं वेद के ऋषियों की कुछ चर्चाएं प्रकट कर रहा था। कुछ विज्ञान की चर्चाएं प्रकट कर रहा था। विज्ञान क्या कह रहा है? बेटाहमारे यहाँ देखो !, मैंने इससे पूर्व महात्मा ध्रुव की चर्चाएं प्रकट की। आज मैं बेटात्रेत !ा के काल में महर्षि भारद्वाज मुनि की चर्चाएं प्रकट कर रहा था। महात्मा महर्षि भारद्वाज मुनि ने अपने जीन में और इनके शिष्यागणों ने 36 देखो !लोकों में अपने यन्त्रों के द्वारा यातायात को बनाया। बेटा, छत्तीस लोक इस प्रकार के हैं जो सूर्य के अर्न्तगय रहने वाले हैं। जैसे मंगल है जैसे शनि है, बुद्ध है इसी प्रकार जैसे रोहणी है, अभूषणम् है, यह नाना प्रकार के लोक हैं जो सूर्य के अन्तर्गत रहते हैं। इन छत्तीस लोकों में उनका यातायात रहा है। एक चन्द्र मण्डल ही नहीं और भी नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में उनकी गति रहती थी। बेटा केवल ! वे अनुसन्धान करते रहते थे। परमाणु, महा परमाणु, त्रसरेणु, चतसरेणु, पंचाणु, षडाणु, सप्ताणु, अष्टाणु इसी प्रकार प्रकार के जो परमाणु हैं उनको वे जानते रहते थे। 36 परन्तु आत्मा जो उस मानव शरीर में रहता है आज तब बेटा इतना विज्ञान संसार ! में रहा परन्तु आत्मा इतना सूक्ष्म अणु है क्या उसको आज तक कोई वैज्ञानिक दृष्टिपात

नहीं कर सका है। आत्मा इस शरीर में रहने वाला है। आत्मा इस शरीर में कितना सूक्ष्म है? मुनिवरोंदेखो !, एक हमारा जो केश है जिसे बाल कहते हैं यदि हम उसके एक ऊपर विभाग को इतना ही अकीत और इतना ऊर्ध्व हो इतना ही तो वह रेत के तुल्य रहने वाला हो उसके गोल भाग को ले लेते हैं। एक केश के गोल भाग को ले लो, उस गोल भाग के लगभग पिण्डाकार के उस बाल के लगभग भाग किए 99 99वां भाग है उसके सात भाग किए जाते है और वह जो सातवां जाते हैं और वह जो भाग क 99 भाग है उसकेिए जाते हैं 99)ग इतना (607वां भाग ग 88 ग 99 ग 7 सूक्ष्म इस शरीर में आत्मा रहता है। इस सूक्ष्म आत्मा को कोई वैज्ञानिक अब तक इतना विज्ञान संसार में रहा। भौतिक यन्त्रों के !ऋषिवर !नहीं जान सका है। मेरे प्यारे द्वारा मानव जगत में भ्रमण करता रहा। और इसमें जो आत्मा है मुनिवरों वह जो ! भाग करो और 99 भाग के सात भाग करो और सात भाग के 99 वां भग है उस 99 99) भाग करो 36ग 45 ग 34 ग 36 ग 99 ग 7 इतना सूक्ष्म (673वां भाग आज हमें विचारना है क्या प्रभु !ऋषिवर !जगत में प्रभु माना गया है। मेरे प्यारे !बेटा और !कितना सूक्ष्म हैप्रभु से यह आत्मा कितना सूक्ष्म है? दोनों पिता और पुत्र की भांति संसार में रहते हैं। कितनी सूक्ष्मता उसके द्वारा है। आज हमें इस आत्मा को इतनी सूक्ष्म वस्तु को जानना चाहिए।

अरे, ये जो मानवों में वेद का पठन पाठन करने वाले जो ब्राह्मण हैं इनकी ऊर्ध्व गति होनी चाहिए। मैं सदैव यह चाहता रहता हूँ कि संसार में ब्राह्मण होने चाहिए और कैसे ब्राह्मण हों? जो आत्मा को जानने वाले हों। आत्मवेत्ता हों। इस संसार में उदासीन रहने वाले हों। ऐसे विचारक पुरुषों को बेटा सुख और आनन्द के लिए ही जगत में मानव ! क्रियात्मक कर्म करतारहता है। सुखद का सांस लेना चाहता है।

बेटादेखो !संसार में मुनिवरों !, आयु का अभिप्राय क्या है? मेरा आयु का विषय रह गया 1. आयु, 2. जाति, 3. भोग यह पूर्व जन्म के संस्कार से प्राप्त होते हैं अथवा नहीं। ये होते तो पूर्व जन्मों का संस्कार भी होता है परन्तु जगत का वातावरण भी होता

है और जिस स्थान में रहता है उस स्थान का भी प्रभाव होता है। परन्तु मानव में यह जगत और उसका प्रभाव यह मानवता में परणित रहने वाला है। इस स्वभाव से और ऐसी परिस्थितियों में यह मानव इस संसार में पनपता रहता है। विचार विनिमय करता रहता है। अहा विचार क्या कह रहा है? विचार यह कहता चला जा रहा है कि मानव की जो आयु है वह श्वासों के ऊपर रहता है। किन्हीं किन्हीं ने प्रारब्धों के ऊपर माना है। संस्कारों के ऊपर माना है। परन्तु मेरा जो विश्वास है, अनुसंधान है कुछ सूक्ष्म सा, वह मेरा श्वासों के ऊपर विश्वास रहता है। श्वासों के ऊपर मानव की आयु होती है। इसीलिए प्राणायाम करने वाला जो प्राणी है उसकी आयु ऊँची होती है। दीर्घ बन जाती है। मुनिवरोंदेखो !, यदि प्रारब्ध के ऊपर आयु का स्थान होता तो आयु सूक्ष्म होना, ऊर्ध्व होना, अधिक होना यह नहीं बन पाता। इसीलिए जितना श्वास मानव धीमी गति से लेता है और मन्द गति होती है उतना ही मानव का दीर्घ आयु होता है। ब्रह्मचर्य का पालन जितना करता है उतनी श्वास की गति प्रबल होती है, महान होती है जितना मानव योगाभ्यास करता है आत्मा को जानता है उतना ही श्वांसों में सुन्दर परमाणु आते हैं।

इसीलिए यज्ञ वेत्ताओं से कहा तुम आत्मिक यज्ञ करते रहो। हमारे यहाँ दो प्रकार के यज्ञ माने गए हैं भौतिक यज्ञ और आध्यात्मिक यज्ञ। आध्यात्मिक यज्ञ वह जो आत्मा को जानना है अपनी इन्द्रियों का साकल्य बना करके हृदय रूपी यज्ञशाला में आहुति देने का नाम आत्मिक यज्ञ है और भौतिक यज्ञ संसार की सुगन्धि देना और ऊँचे ऊँचे कार्य करना, सभी महान कार्य करने का नाम यज्ञ है। यह है बेटा आज का हमारा ! संसार में !वाक्य। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि मुनिवरों निद्राजीत होना चाहिए। ऊँची उड़ान उड़नी चाहिए। मानव को लोक लोकान्तरों में जाना चाहिए। वेद का ऋषि कहता है वेदाचार्य कहते हैं। परन्तु अपनी मानवता और मानवीय दर्शन भी मानव के समीप होना चाहिए। यह है बेटा आज का वाक् अब ! महानन्द जी !मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। कल मेरे प्यारे भी कुछ समय अपना लेना चाहते हैं परन्तु ये अपने दो शब्दों की विवेचना कल प्रकट

करेंगे आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। ग्राम माछरा जि उत्तर) मेरठ 0 8 समय रात्रि (प्रदेश.बजे 00

८ 17 08 1972 पुष्प 24 त्रवैदिक विज्ञान

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। जिस देव की करुणामयी, आनन्दमयी जो प्रतिभा है, वह मानव को परम्परा से ही मानवता का विचार अथवा चिन्तन करने के लिए प्रेरित करती रहती है। आज हम उस प्रेरणा को अपने में धारण करने वाले बनें। क्योंकि वह प्रेरणा मेरे उस प्यारे प्रभु की है, जिस देव ने हमारे इस मानव शरीर का निर्माण किया, अथवा इस ब्रह्माण्ड का निर्माण किया, वह जो निर्माण वेत्ता प्रभु है आज हम उसकी प्रेरणा को स्वीकार करें।

उसकी प्रेरणा आन्तरिक हृदय में ही प्रायः उत्पन्न हुआ करती है। क्योंकि मानव अपने शुभ और अशुभ कर्मों को स्वयं अपने अन्तःकरण में विचार विनिमय करने लगता है। उसका कोई उच्चारण नहीं करता। परन्तु वह स्वयं ही अपने ऊपर चिन्तन करना जब प्रारम्भ कर देता है तो उसे स्वयं यह प्रतीत होने लगता है कि मेरे जीवन में नाना त्रुटियां हुईं नाना विडम्बनाएं जीवन में होती रहीं। परन्तु ये सब मानव के (लज्जा) अन्तःकरण में जो एक मानवीय प्रेरणा होती है वह उस मेरे प्यारे प्रभु की है। आज ! हम उस प्रेरणा के उपासक बनें। परन्तु प्रेरणा को हम जब स्वीकार करने लगते हैं तो हमारा अन्तरात्मा पवित्र हो जाता है। हम संसार के नाना प्रकार का जो वैभव !बेटा है अथवा नाना प्रकार की जो हम अपने नेत्रों से, हृदय से संसार की कुटिलता को दृष्टिपात करते हैं तो वह कुटिलता अन्तरात्मा में नहीं रहती। वह समाप्त हो जाती है। क्योंकि जहाँ प्रभुकी प्रेरणा के अनुकूल अपने जीवन को मानव अपने में धारण करने के लिए तत्पर हो जाता है तो उसकी मानवता वास्तव में पवित्र बन जाती है।

आओ, मेरे प्यारे हम उस मार्ग !ऋषिवर !के लिए परम्परा से ही याचना करते आए हैं,

उस प्यारे प्रभु से। हे प्रभुतेरा बनाया जो यह मानवीय शरीर है !, तेरी प्रेरणा से प्रेरित हो करके जो क्रीड़ा कर रहा है। हे पभु हम आपको और अपने को दोनों का समन्वय ! करना चाहते हैं। संसार में योगी क्या करता है? योगी यही कहता है कि वह अपने हृदय और परमात्मा के हृदय का दोनों का मिलान करने लगता है। परन्तु जहाँ दोनों के हृदय का समन्वय हुआ जब मध्य में जो अन्तर्द्वन्द्व है वह नहीं रहता। इस ब्रह्माण्ड की प्रतिभा, लोक लोकान्तरों की प्रतिभा उसके समक्ष आने लगती है। क्योंकि प्रकृतिवाद उसके नीचे दब जाता है। प्रकृति के ऊपर उसका अधिपथ्य हो जाता है।
मानव के शरीर में चित्त नाम का जो स्थान है उस चित्त नाम के स्थान में प्रकृति की सूक्ष्म धाराएं हैं अन्यथा उसका सूक्ष्म मण्डल है। मुनिवरों उससे जब आत्मा का मिलान ! आत्मा का सन्निधान चित्त के द्वारा होता है तो चित्त अपने स्वभाव में गति करने लगता है। जिस प्रकार परमात्मा के सन्निधान मात्र से ही सृष्टि कर्म में गति प्रारम्भ हो जाती है। पञ्च महापरमाणुओं में गति प्रारम्भ हो जाती है स्वयं अपनी अपनी परिधि में प्रत्येक परमाणु रमण करने लगताहै। वही परमाणु इस संसार की रचना करता है। आज जो रचना हमें दृष्टिपात आ रही है, वह रचना सूर्य के रूप में हो, मंगल के रूप में हो, चन्द्रमा के रूप में हो, ध्रुव, बृहस्पति और शनि के रूपों में हो, बुद्ध और शुक्र के रूप में हो चाहे वह नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों के रूपों में क्यों न हो सप्त ऋषि मण्डल में ही क्यों न हो। वह सर्वत्र रचना केवल प्रभु के और प्रकृति के चित्त का सन्निधान मात्र की एक सुन्दर रचना दृष्टिपात आती है। जिस प्रकार बेटा मानव के शरीर में ! चित्त के ही गतिम न होने पर संसार और नाना प्रकार का एक सुन्दर कुटुम्ब बन जाता है। प्रवृत्तियों का वृक्ष बन जाता है। उन प्रवृत्तियों के वृक्ष बन जाने के पश्चात् मानवता की एक मानो सुन्दर रचना होने लगती है। उस रचना का जो मानहै उसकी जो प्रतिभा है, वह एक मानवता में ही नहीं, वह यौगिकता में परणित होने लगती है। तो मेरे प्यारेआज हम य !ऋषिवर !ह उच्चारण करने के लिए तत्पर हैं कि यह जो भी कुछ रचना है अथवा जो रूपों में है अथवा जो ब्रह्मण्ड और लोक लोकान्तरों के रूपों में वह सर्व रचना केवल प्रभु की चेतना और प्रकृति के चित्त के ही सन्निधान मात्र से ही संसार

विभाजित होता दृष्टिपात हो रहा है।
मुनिवरों! देखो, आज उन वाक्यों पर हम जाना चाहते हैं जिन वाक्यों के ऊपर हमारे आज ऋषियों ने बहुत टिप्पणियां की हैं, अनुसन्धान किए हैं। आज हम भी उन वाक्यों पर प्रायः टिप्पणियां करते रहते हैं। अनुसन्धान भी करते रहते हैं। क्योंकि मानव का तो जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह अनुसन्धान की वेदी पर विराजमान है, प्रत्येक वस्तु का अनुसन्धान करता रहता है। प्रायः उसमें जिस प्रकार की बुद्धि होती है, उसी प्रकार का उसका अनुभव होता है। परन्तु चित्त में जैसा संस्कार होता है, चित्त में जैसे अंकुर होते हैं उसके अनुकूल ही इस बाह्य जगत में भी प्रायः अनुसन्धान करने लगता है। यह तो मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। चाहे वह मानव इस पृथ्वी मण्डल पर विचरण करने वाला हो अथवा वह मंगल में हो, शनि में हो, चन्द्र में सप्तऋषि मण्डल में हो, रोहिणी नक्षत्र में क्यों न हो, पुण्य में, ज्येष्ठा आदि नक्षत्रों में ही क्यों न हो। अनुसन्धान करना उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। क्योंकि इसकी प्रवृत्ति में यह स्वभाव है।
प्रभु ने जब मानव के शरीर का निर्माण किया तो मानव के ब्रह्मरन्ध्र में जो सूक्ष्म वाहक नाड़ियां है उन सूक्ष्म वाहक नाड़ियों का सम्बन्ध प्रायः सूक्ष्म वायु की धाराओं से होता है। सूक्ष्म अग्नि की धाराओं से होता है। सूक्ष्म पृथ्वी की धाराओं से होता है, सूक्ष्म जल की धाराओं से होता है और उनका सम्बन्ध लोक लोकान्तरों से भी होता है। वे जो धाराएं हैं वे केवल कुछ संक्षिप्त रूपों से हैं और जब मानव अनुसन्धान करने लगता है तो वही नाड़ी ऊर्ध्व रूप धारण करके मानव के मस्तिष्क में उसी प्रकार का चमत्कार, उसी प्रकार की चेतना जागरुक होने लगती है। वह जो चेतना है जैसा हमने बहुत पूर्व काल में कहा यदि मानव के इस चित्र मण्डल में यदि चन्द्रमा की कोई स्मृति नहीं होगी, चन्द्रमा से सम्बन्ध जोड़ने वाली वाहक नाड़ी नहीं होगी तो बेटा चन्द्रमा की हम ! जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते। हम उसका विभाजन कर ही नहीं सकते। क्योंकि विभाजन जितना भी होता है वह मन और प्राण की दोनों की सहकारिता से हो प्रायः आज हम इस सम्बन्ध में अधिक !ऋषिवर !प्राप्त होता रहता है। तो मेरे प्यारे विवेचना नहीं करेंगे। केवल विवेचना यह है कि आज का हमारा जो वैदिक साहित्य है वह

विज्ञान के लिए घोषणा करता रहता है, घोषित करता रहता है और यह उच्चारण करता है आओ विज्ञान की वेदी पर मानव को जाना चाहिए। !
जैसे कल इससे पूर्व शब्दों में मेरे वत्समहानन्द जी ने यह ! कहा कि संसार में विज्ञान का सदुपयोग होना चाहिए। परन्तु हम परम्परा से ही इस वाक्य को स्वीकार करते चले आएं हैं। आज हमें वास्तव में विज्ञान के ऊपर अनुसन्धान करना चाहिए। चन्द्रमा में मानव की गति हो, सूर्य मण्डल में हो, ध्रुव मण्डल में जाने वाले यान होने चाहिएं। क्योंकि हमारे यहाँ परम्परा से ही प्रायः वैज्ञानिकों ने नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में जाने की प्रगतियां की हैं। क्योंकि मैंने बहुत पूर्व काल में भी कहा है, समय समय पर अनेक बार उच्चारण किया है।

मुझे मेरे प्यारेमहानन्द जी ने यह प्रकट कराया कि आज का ! विज्ञान चन्द्रमा (मानव) की यात्रा कर रहा है चन्द्रमा में शयन कर रहा है। हमने बहुत पूर्व काल में इनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा कि द्वापर के काल में भीम और उनके पुत्र घटोत्कच के बहुत से यान ऐसे हैं जिन यानों को आज का वैज्ञानिक जब चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में जाने का प्रयास करेगा तो वे यान आज भी इन्हें प्रायः प्राप्त हो सकते हैं और इन्हें प्राप्त होंगे। वह पुरातन काल का विज्ञान मुझे प्रायः स्मरण भी आता रहा है उसविज्ञान की तुलना हम किसी काल से नहीं किया करते। क्योंकि अपने समय का विज्ञान अपने समय की ऊर्ध्व गति को प्रातः प्राप्त होता रहा है। मुनिवरों हमारे यहाँ वैज्ञानिकों का ! यह कथन है क्योंकि हमारे यहाँ महर्षि भारद्वाज आदि ऋषियों का भी यह कथन है कि एक यन्त्र का जब हम निर्माण करते हैं, उस यन्त्र में वायु की तरंगें और अग्नि की धाराओं का दोनों का मिश्रण करते हुए जल की उसमें पुत्र लगाते हुए हम ऐसे विशेष परमाणुओं को एकत्रित करते हैं। उन परमाणुओं को एकत्रित करके यदि हम एक सूक्ष्म से पात्र में, एक यान में स्थिर कर देते हैं और वह यान हमें चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में अथवा सूर्य मण्डल की वह परिक्रमा करने के लिए तत्पर हो जाता है। हमने निश्चय किया है तो इस प्रकार का हम परमाणु एकत्रित करते हैं। उसे जब यान में स्थिर करते

हैं तो उस यान की एक एक क्या कई लाख वर्ष की अवस्था के लिए उसमें परमाणुओं को भर देते हैं और वह सूर्य की परिक्रमा करता रहता है। चन्द्रमा की परिक्रमा भी करता है परन्तु जो वैज्ञानिक केवल दो वर्ष, चार वर्ष, पञ्चम, दशम वर्ष का परमाणु यन्त्र में परणित कर सकता है वह वैज्ञानिक अनुसन्धान करे तो मुनिवरों वह सहस्त्रों ! आज हम इस सम्बन्ध में !और लाखों पर भी जाने को तत्पर हो जाता है। मुनिवरों अधिक विवेचना नहीं करेंगे। क्योंकि केवल उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है कि आज हम उस विज्ञान में जाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं जो सूर्य मण्डल की परिक्रमा करता रहता है।

कल मेरे प्यारे महानन्द जी ने यह कहा कि आज का वैज्ञानिक जो लोक लोकान्तरों ! का वैज्ञानिक है वह पृथ्वी मण्डल पर अनुसन्धान करने वाले वैज्ञानिक के समान विचार कर रहा है। इसी प्रकार का मंगल का वैज्ञानिक भी विचार कर रहा है। इसी प्रकार सूर्य मण्डल का वैज्ञानिक भी विचार विनिमय कर रहा है और भी नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों का वैज्ञानिक विचार विनिमय कर रहा है। परन्तु आज हमारा वैदिक साहित्य तो आदि काल से ही यह उच्चारण कर रहा है। क्योंकि वैदिकता क्या हैं? आज प्रत्येक मानव को यह विचार आता रहता है कि वैदिकता है क्या? वैदिकता वही है जो लोक लोकान्तरों के विज्ञान में परमात्मा की जो सम्पन्न विद्या है। आज जितना भी मानव अनुसन्धान कर सकता है जो वैदिक साहित्य में प्रायः जिसका विश्लेषण प्राप्त होता है। उसकी विचारधारा उसमें धर्म की प्रतिभा ओत प्रोत होती है। उसी का नाम मुनिवरों वैदिकता कहा जाता है। वैदिकता का अभिप्राय यह कि आज जोभी हमारा ! जीवन है अथवा कर्मकाण्ड है, वह वेद के आधार पर जब होता है तो वह इतना सुन्दर होना चाहिए, इतना पवित्र होना चाहिए, इतना शान्त होना चाहिए, क्रियात्मक जीवन वाला होना चाहिए जिससे उस कर्मकांड में उस क्रिया में विज्ञान निहित होता हो। क्योंकि विज्ञान किसी की सम्पदा नहीं है। विज्ञान कोई रूढ़ि नहीं है। विज्ञान तो एक सामान्य विचार है। एक मस्तिष्क का विचार है। उसको लाने के लिए सदैव मानव को प्रयास करना चाहिए। प्रायः जैसा मेरे प्यारे ने इससे पूर्व शब्दों में उच्चारण किया कि !

वैज्ञानिक अनुसन्धान कर रहे हैं कि जहाँ चन्द्रमा का क्या, मंगल इत्यादि सूर्य और वृहस्पति और भी नाना मण्डलों की जहाँ परिधियों की मानो प्रतिक्रियाएं एक सामान्यता में परणित हो जाती हैं। वहाँ एक स्थली बनाने का विचार रहता है। उस विचार में मानव प्रायः अनुसन्धान करता ही रहता है। क्योंकि नाना प्रकार की स्थली वन तो पाती नहीं। विचार प्रायः करते रहते हैं क्योंकि विचार करना तो मानव का स्वभाव बना रहता है। क्योंकि जहाँ एक दूसरे मण्डल की आकर्षण शक्ति है। एक स्थान ऐसा है वायु मण्डल में जिसको हम सौर मण्डल कहा करते हैं। एक स्थल ऐसा है जहाँ तीन सौर मण्डलों की परिधि, उनकी सीमा प्रायः प्राप्त होती हैं। वहाँ कोई भी वस्तु यदि निर्धारित की जाए तो वह स्थिर हो जाती है। क्योंकि उसमें एक दूसरे में आकर्षण शक्ति है जैसे हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में गन्धर्व लोकों का प्रायः वर्णन आता रहता है। गन्धर्व लोक उन्हें कहा जाता है जहाँ एक दूसरे की आकर्षण शक्ति एक दूसरे से सुगठित रहती है। अहावह मिलन नही !ं हो पाता। कैसा सुन्दर प्रभु का विज्ञान है इस प्रभु का कितना ! वायु मण्डल में भ्रमण करते हुए भी एक मण्डल एक दूसरे से मिलान !ऊँचा धर्म है परन्तु जब प्रलय काल आता है तो !नहीं कर पाता। कैसी विचित्रता है प्रभु की प्रलय काल में ये लोक लोकान्तर एक पिण्डाकार के रूप में परणित हो जाते हैं और वह पिण्डाकार महातत्व में परणित होते हुए ये प्रकृति, आत्मा और परमात्मा तीनों भिन्न भिन्न हो जाते हैं। ऐसा प्रायः वैदिक साहित्य स्वीकार करता है। मुनिवरों आज हम ! उन विचारों में अधिक टिप्पणियां तथा अधिक विचार देना नहीं चाहते हैं। विचार देने का हमारा अभिप्राय यह कि विज्ञान के युग में विज्ञान की प्रतिभा प्रायः हमारे मस्तिष्कों में चली आई है।

1. महर्षि भारद्वाज मुनि 2. दालभ्य 3. प्रवाहण 4. सेम भूनि आदि नाना ऋषियों के वर्णन में केवल यही आता है कि उन्होंने ऊँचे से ऊँची उड़ान उड़ी। हमारे यहाँ विष्णु राष्ट्र का प्रायः वर्णन आता रहता है। विष्णु कहते हो उसे हैं जिस राजा के राष्ट्र में विज्ञान पराकाष्ठा पर हो। जहाँ वैज्ञानिक पुरुष हों। वैज्ञानिक पुरुष अनुसन्धान करने वाले हों। मुनिवरोंदेखो !, गरुड़ इत्यादि के रूप में प्रायः वर्णन वैज्ञानिकों का हो आता

रहता है। गरुड़ नाम का कोई पक्षी तो प्रायः होता है। परन्तु गरुड़ यहाँ वैदिक परम्परा में मन को कहा जाता है। गरुड़ अनुसन्धान करने वाले वैज्ञानिकों को कहा जाता है। उस विज्ञान पर विराजमान हो करके जो लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ने वालें हों उन्हें विष्णु कहा जाता है। हमारे यहाँ वैदिक ऋषियों ने कहा कि यज्ञमान के लिए ब्राह्मण घोषणा करता है। यह कहता है यज्ञमान यज्वेदी पर विराजमान हो करके तेरी गति पृथ्वी मण्डल से और मंगल मण्डल से हो करके बृहस्पति लोकों तक होनी चाहिए, सूर्य मण्डल तक होनी चाहिए। ऐसा हमारे यहाँ प्रायः वैदिक साहित्य में प्राप्त होता रहता है। आओ मेरे प्यारे आज हम तुम्हें उस वेदी पर ले जाना चाहते हैं जिस !ऋषिवर ! वेदी पर प्रायः वैज्ञानिकों का समूह विराजमान होता रहा है। वैज्ञानिकों की चर्चाएं होती रहती हैं।

मुझे स्मरण है बेटाएक समय महर्षि भारद्वाज मुनि महारा !ज ने एक यान का निर्माण किया। उस यान को स्वांकेतिचक्राण यन्त्र कहा जाता था। वह मंगल की परिक्रमा करता रहता था और मंगल की परिक्रमा के लिए महर्षि भारद्वाज ने तथा राजा रावण के विधाता कुम्भकर्ण ने और नाना वैज्ञानिकों ने उसमें ऐसे परमाणुओं को एकत्रित किया जो परमाणु वायु की धाराओं में रमण करते रहते हैं। अग्नि की धाराओं में रमण करते रहते हैं। अन्तरिक्ष की धाराओं में रमण करते रहते हैं। जो विद्युत के रूपों में प्रकाशित होते रहते हैं, उन परमाणुओं को एकत्रित करने के लिए जब उन्होंने एक यान बनाया। यान बनाकर के ऋषि ने ऐसा कहा है कि यह जो यान है, इसकी जो आयु है हमने 10, वर्षों की आयु का यह यान वायु मण्डल में त्याग दिया है। तो ऐसा मुझे 000 प्रायः प्राप्त होता रहा है कि महर्षि भारद्वाज मुनि ने ऐसे यानों को वायु मण्डल में प्रसारित कर दिया था जो लगभग मंगल के आँगन में मंगल की परिक्रमा करता रहा जैसे आस्वाति मण्डल है वह मंगल के पूर्व ऊर्ध्व के भागों में रमण करता है। परन्तु उसकी भी परिक्रमा उसने प्रारम्भ की। एक यान दो मण्डलों की परिक्रमा करने वाला हो। बेटा ऐसा यान महर्षि भारद्वाज ने इतनी लंबी आयु का वायु मण्डल में प्रसारित ! कर दिया था। तो आज की परम्परा से ही मेरे प्यारे महानन्द जी ने आज के !

वैज्ञानिक अथवा आज के लोक लोकान्तरों की विवेचना की। यह कोई आश्चर्य नहीं है। यह तो परम्परा से ही हमारे यहाँ विज्ञान हमारा जन्मसिद्ध अधिकार रहा है। क्योंकि हमारे पूर्वज प्रायः उसमें अनुसन्धान करते चले आए हैं। ऋषि कहते ही उसको हैं जो अनुसन्धान करने वाले हों। जो इस प्रकृति के परमाणुओं पर अहःअपना अनुसन्धान !, अपना अधिपथ्य करने वाले हों। उसे ही मुनिवरोंऋषि कहा जाता है !, तपस्वी कहा जाता है।

आओ मेरे प्यारे ये टिप्पणियां करना चाहते हैं। !आज हम बेटा !ऋषिवर !जैसे इन्होंने चित्रावलियों का वर्णन किया। परन्तु पुरातन काल में भी चित्रावलियों का प्रायः वर्णन आता रहा है। महाभारत के काल में मुनिवरों भगवान कृष्ण महाराजा धृतराष्ट्र के जब ! कुछ चाहते हो !द्वार पर पहुंचे तो उन्होंने कहा महाराज? उन्होंने कहा हे कृष्ण मैं और कुछ नहीं चाहता हूँ। परन्तु एक ऐसा यन्त्र चाहता हूँ जिससे महाभारत काल को महाभारत के संग्राम को मैं स्वयं दृष्टिपात कर सकूं उन्होंने कहा आप तो प्रज्ञाचेक्षु हैं। उन्होंने कहा मेरे महामन्त्री जो संजय है यह मुझे प्रकट कराते रहें (नेत्रहीन), ऐसा मैं चाहता हूँ। तब उन्होंने वह चित्रावली दी कि जिसके द्वारा कुरुक्षेत्र में जो प्रातः संग्राम होता रहता था उसका चित्रण प्रायः आता रहता था और संजय उनसे दृष्टिपात करके अपनी वाणी से उच्चारण करता रहता था। इसी प्रकार भगवान राम इत्यादि के कालों में भी और उससे पुरातन काल में भी तथा उसके मध्य के काल में भी। ऐसा प्रायः जगत में चलता रहा है। क्योंकि देखो, यह अनुसन्धान तो मानव के लिए सहज है और परम्परा से ही मानव इस पर प्रायः अनुसन्धान करता आया है। (स्वाभाविक) वैदिक साहित्य में रूढ़ि नहीं है। जहाँ रूढ़ि नहीं होती वह सामान्य धर्म, सामान्य विज्ञान, व्यापक विद्या तथा व्यापक ही धर्म होता है। इसीलिए हमारे यहाँ वेद की प्रशंसा ऋषि मुनियों ने, महान तपस्वियों ने की है। क्यों की हैं? क्योंकि उसमें से ऐसी वस्तुओं को अपने में निर्धारित किया है जिस पर वह और भी जितना अनुसन्धान करें उतना ही उनका मस्तिष्क विकसित होता चला जाता है। प्रकाशमान होता चला जाता है।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने आधुनिक काल के वैज्ञानिकों के !कल मेरे प्यारे !ऋषिवर !

सम्बन्ध में प्रायः चर्चा प्रकट की थी कि आज का वैज्ञानिक यह उच्चारण कर रहा है कि सूर्य तल पर विस्फो) सूर्य मण्डल के गदेलेट आ गए हैं। सूर्य मण्डल में इस प्रकार (की कृति अवस्था आ गई है। परन्तु इससे आधुनिक काल के वैज्ञानिक को कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। वह तो परम्परा से ही प्रायः ऐसा होता रहा है। जिस लोक का वैज्ञानिक जितना भी अन्वेषण करता है जितना भी वह परीक्षण करता है उतना ही वहाँ का विज्ञान विकसित होता रहता है। रहा यह कि हमारे यहाँ जैसे सूर्य की रश्मियां जाती हैं उन रश्मियों का जो प्रभाव है वह पृथ्वी मण्डल पर कैसा आता है? और लोकों पर कैसा आता है? परन्तु जैसे वैज्ञानिकों के परीक्षण से आ (सूर्य तल पर विस्फोट) गए हैं उसमें प्रतिक्रिया अशुद्ध आ गई है। तो इससे मानव को भयभीत (विषाक्त वायु) इस पृथ्वी मण्डल) नहीं होना चाहिए। क्योंकि उनका प्रभाव अशुद्ध नहीं होता। यहाँ तक प्रायः नहीं आता। वहाँ का जो मानव समाज है वहाँ का जो राष्ट्र है उस पर (तक किसी प्रकार का प्रभाव हो सकता है क्योंकि वे जो किरणें हैं, रश्मियां हैं, वह अग्नि के द्वारा प्रचंड की हुई आती हैं। वायु की धाराओं में रमण करती हुई अग्नि की रश्मियों सूर्य का प्रकाशित करती रहती हैं। उसमें अग्नि की प्रधानता होती है। कुछ ऐसे लोक हैं जिनमें वायु और जल दोनों की प्रधानता होती है। वहाँ उन किरणों का दूषितपन का संदेह रहता है। परन्तु जहाँ पार्थिव तत्त्व होता है उन लोकों में उसका कोई विशेष प्रभाव कदापि नहीं हुआ करता। एक समय महाभारत के काल में 1)) महर्षि व्यास मुनि महाराज 2)) भास्कराचार्य 3)) स्वाति ऋषि ये तीनों विराजमान थे। उस काल में भी प्रायः ऐसी छाया उनके मस्तिष्कों में आई। उनकी विज्ञानशाला में ऐसी छाया आई थी। मानव के मस्तिष्क में जो ब्रह्मरन्ध्र हैं। जिस प्रकार की प्रकृति होती है उसी प्रकार का ब्रह्मरन्ध्र में एक यन्त्र होता है। जिसको हमारे यहाँ सहस्रारायन्त्र कहा जाता है अथवा उसको सहस्रार चक्र भी कहते हैं। यौगिकता में उसको सहस्रार चक्र भी कहते हैं। जितना भी योगी सूक्ष्म होता है उतना ही अनुसन्धान वेत्ता होता है। ब्रह्मरन्ध्र में इडा, पिंगला, सुषुम्ना ये तीन नाड़ियां हैं इनमें से 72 प्रकार की धाराओं का जन्म होता 72 72वीं धारा जो रहता है औरहोती है उसमें से 99 प्रकार की धाराओं का जन्म 99

होता है। उन धाराओं का सम्बन्ध इस सर्वत्र प्रकृति से होता है। परन्तु वह जो प्रकृति है उस प्रकृति का जैसा भीवातावरण होता है जैसी भी प्रकृति की गति होती है उसी प्रकार की छाया उस योगी के मस्तिष्क में प्रायः आ जाती है। इसी प्रकार भौतिक विज्ञानवेत्ता उसी के आधृत होते हुए एक यन्त्र बनाते हैं। वह यन्त्र वायु की (सहारे) तरंगों का यन्त्र होता है। वायु और अग्नि की तरंगों का मिश्रण करते हैं मानो जैसे एक भाग तो वायु के परमाणुओं का हो और उसका दो गुणा भाग अग्नि के परमाणुओं का हो। और उससे गुणा भाग अस्वति देखो 100, अग्नि अहो वरदेय अकृतम् ब्रह्मे आपोरसि मानो आपो की धाराओं का होता है। और जब तीनों की पुट लगा करती है (जल) तो कुछ सूक्ष्म सा इस पृथ्वी का भी मिश्रण होता है। तो ऐसे इन परमाणुओं के समूह से जब यान बनता है तो प्रकृति में जैसी गति होती है क्योंकि वह यान इतना ऊर्ध्व गति वाला बनता है क्या वह लगभग सूर्य मण्डल का जो सौर मण्डल है उस सौर मण्डल की जितनी गति होती है, यन्त्र उस सौर मण्डल की गति की छाया उस यन्त्र में आ जाती है। वह जो छाया है, उसी छाया के आधार पर वैज्ञानिक अपने में अनुमानित हो जाते हैं। उसकी छाया से वे जान लेते हैं कि चन्द्रमा में (अनुमान कर लेते हैं) क्या होरहा है? मंगल में क्या हो रहा है? स्वाति नक्षत्र में क्या हो रहा है? और बृहस्पति और शुक्र इत्यादि मण्डलों में क्या हो रहा है। इसी प्रकार वह सूर्य मण्डल तक की आभा को जानने के लिएतत्पर हो जाते हैं। और उन आभाओं के द्वारा ही उनका विज्ञान विकसित होता रहता है। क्योंकि बहुत सा विज्ञान इस प्रकार का है। तीन सौर मण्डलों की छाया उसमें आती रहती हैं।

हमने बहुत पूर्व काल में कहा था कि हमारे यहाँ इडा पिंगला, सुषुम्णा तीन प्रकार की नाड़ियां हैं। और उन नाड़ियों में 200 तरंगें तरंगित होती रहतीहैं। क्योंकि वे 200 धाराएं वे तरंगें उस इडा, पिंगला, सुषुम्णा नाम की नाड़ियों के द्वारा आती रहती हैं। और वे जो तरंगें हैं और उनसे मिलान करती हुई योगी को सर्वत्र ब्रह्माण्ड उसके लोक लोकान्तरों की प्रतीत होने लगती है। उसका मान उसके समीप आने लगता है तो मेरे प्यारे आज हम इसके ऊपर विचार करने वाले बनें। क्योंकि हमारे यहाँ !ऋषिवर !

प्रायः देखो, यह जो विज्ञान है यह एक ऐसा ऋषियों के मस्तिष्क में रहा है। प्रायः वैज्ञानिक इसका अनुसन्धान करते आए हैं। आज कोई नवीन वाक्य नहीं है। जैसा मेरे प्यारे महानन्द जी ने प्रकट कराया। परन्तु इससे भी पुरातन काल में एक समय ! महर्षि दालभ्य जी के काल में उससे भी पूर्व काल महर्षि शांडिल्य मुनि का काल था और महात्मा आचार्य अष्टावक्र का काल था। वायु मुनि महाराज का काल था। आज से करोड़ों वर्षों पूर्व का काल था। उस काल का साहित्य यह कह रहा है कि उनके काल में वे बड़े महान वैज्ञानिक थे। जहाँ योगी थे वहाँ वैज्ञानिक भी थे। प्रकृति को अच्छी प्रकार जानते थे। एक समय बृहस्पति मण्डल केप्राणियों ने अपने मण्डल पर परीक्षण किया। वह जो परीक्षण था वह इस प्रकार का था कि बृहस्पति में ऐसे विस्फोट हुए और तूफान आ गए कि उसकी जो छाया थी, वह सूर्य मण्डल पर पड़ी। उससे सूर्य मण्डल की जो आभा थी वह दूषित हो गई। ऐसा ऋषियों ने प्रकट किया है, उनके साहित्य में ऐसा प्राप्त होता रहा है कि सूर्य मण्डल का जो प्राणी था उस समय वह एक चौथाई रह गया, तीन विभाग उसका समाप्त हो गया। इस प्रकार की छाया उस काल में प्रायः आई उसकी छाया शनि मण्डल में आई तो शनि मण्डल का प्राणी भी इतना समाप्त हो गया। अनन्तर उसकी छाया जब बुद्ध पर आई, बुद्ध से पृथ्वी पर त्रिकोण हो करके जब उसकी रश्मियां आईं तो पृथ्वी मण्डल का प्राणी भी मरने लगा। तो विचार कर इसका प्रयास किया कि इस दूषित वायु मण्डल को किस प्रकार हम शोधन कर सकते हैं। हमारे ऋषि मुनि पुरातन काल में उसका शोधन जानते थे और वह शोधन प्रायः और भी लोक लोकान्तरों में है। हमारे पृथ्वी मण्डल पर (अन्य भी) भी ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में रहा है। उन्होंने घृत के द्वारा याग करके द्युलोक को भर दिया और याग करने के पश्चात् उन्होंने सृष्टि याग किया और परमाणु याग किया। पश्चात् उसी प्रकार के मन्त्र जो ऋग्वेद में प्रायः प्राप्त होते रहते हैं। उन मन्त्रों का पठन पाठन करने से ही वह दूषित वातावरण समाप्त हो गया। इसी प्रकार आज लोक लोकान्तरों में भी याग की प्रथा मानी जाती है। परन्तु आज हम उन लोका लोकान्तरों की यात्रा में अधिक जाना नहीं चाहते हैं। उनका विश्लेषण करना हमारा कर्त्तव्य नहीं है।

हम तो केवल कुछ ज्ञान और विज्ञान की चर्चाएं प्रकट करने के लिए चले आते हैं। केवल परिचय देना ही हमारा प्रायः कर्त्तव्य होता है।
आओ मेरे प्यारेआज हम क्या उच्चारण कर रहे थे !ऋषिवर !? महानन्द जो के उन शब्दों पर टिप्पणियां कर रहे थे। जो उन्होंने कल के वाक्यों में प्रकट कीं। परन्तु अब आयुर्वेद का प्रश्न है क्योंकि आयुर्वेद प्रायः ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों का प्रश्न है क्योंकि आयुर्वेद प्रायः ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में आता रहा है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने ! यह प्रकट कराया कि आधुनिक काल का जो आयुर्वेद का पंडित है, आयुवैदिक वैज्ञानिक हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर मानव की नस नाड़ियों का परिवर्तन कर देते हैं। ऐसा जो विज्ञान है उसे आज का संसार यह स्वीकार करता है। आज का आ्युर्वेद पंडित यह उच्चारण कर रहा है कि यह तो हमने ही जाना है। परन्तु यह अभिमान नहीं होना चाहिए। मुझे परम्परा की वह वार्त्ता स्मरण आती रहती है। हमारे यहाँ महर्षि (क) 1) नरकृति महाराज को जब) महर्षि सोमकेतु 2)) भुञ्जू 3)) प्राति ऋषियों ने उनके मस्तिष्क पर अश्व का मस्तिष्क स्थिर कर दिया था, और उन्होंने उनके मस्तिष्कों को औषधियों में नियुक्त कर दिया था। इसी प्रकार महात्मा दधीचि के मस्तिष्क को (ख) हम ारे यहाँ अश्विनी कुमारों ने जो महात्मा भुंज के पुत्र कहलाए जाते थे। अश्विनी कुमारों नामक दोनों भ्राताओं ने आयुर्वेद को प्राप्त किया। आयुर्वेद के पश्चात् ब्रह्म विद्या को पान किया। उन्होंने उनके 6 मस्तिष्क को (महर्षि दधीचि के) माह तक औषधियों 6 में नियुक्त क िया। ऋषि कहते हैं कि हृदय की गति को 6 माह तक हम प्रायः 6 माह के पश्चात् हम उस शरीर में प्रायः गति प्रदान कर 6 औषधियों में नियुक्त करके सकतेहैं। इस प्रकार का आयुर्वेद का विज्ञान हमारे यहाँ प्राचीन काल में परम्परा से रहा है। और भी विज्ञान जैसे आयुवैदिक जो विज्ञान हैं यह एक ही नहीं, ऐसे ऐसे अनेक वैद्यराज हुए जो मार्ग में औषधियां थीं उनको स्वप्न में प्रकट करती थीं। मैं इस रोग को दूर कर सकती हैं। ऐसी ऐसी औषधियां प्रायः उनके यहाँ प्राप्त होती रहती थीं। अब प्रश्न यह होता है कि स्वप्न में औषधियां कैसे उच्चारण कर सकती हैं? क्योंकि जो मानव इसके ऊपर अनुसन्धान करता है तो अनुसन्धान करने वाले के समीप औषधियां आने

लगती हैं अर्थात् उनके गुणों का प्रकाश होने लगता है। और मुखारविन्द से ही वह रोग का निदान अच्छी प्रकार करके उन औषधियों को व्यवहार में लाने का प्रयास करता रहा है। तो मेरे प्यारे मुझे स्मरण है कि आयुर्वेद भी मानव के द्वारा अवश्य होना ! चाहिए।

मैं तो यह कहा करता हूँ कि माताओं के द्वारा आयुर्वेद होना चाहिए। जितनी माताएं आयुर्वेद को जानने वाली बनेंगी, उतना ही यह समाज ऊँचा बनेगा। उतना ही विचार ऊँचा होगा। क्योंकि आयुर्वेद में भक्ष्य अभक्ष्य का प्रायः वर्णन है। माता को कैसा आहार किस किस माह में करना चाहिए किस किस माह में पिता को कैसा आहार करना चाहिए कैसा विचार बनना चाहिए। यह सब आयुर्वेद में प्रायः प्राप्त होता है। नाना प्रकार की औषधियों का पान करने से ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्व होती (अटल) और ध्रुव (उन्नत) रहती है। कुछ औषधियां इस प्रकार की होती हैं जो ब्रह्मचर्य की गति को ऊर्ध्व ब्रह्मचर्य की !बनाती हैं। कुछ इस प्रकार की औषधियां होती हैं जो मुनिवरों (ऊँच) बनाती है। तो इस प्रकार की औषधियां प्रायः पृथ्वी पर प्राप (अचल) गति को ध्रुव्‌त होती रहती हैं। आयुर्वेद के आचार्यों ने बहुत कुछ अनुसन्धान किया है। क्योंकि हमारे यहाँ नाना प्रकार की औषधियों के लेपन मात्र से ही मानव का शरीर दूर होने पर भी स्थिर हो जाता था। ऐसा विज्ञान परम्परा से प्रायः आयुर्वेदाचार्यों के मस्तिष्कों में रहा है।

आज मैं अधिक नहीं उच्चारण कर सकता। महानन्द जी के उन शब्दों की प्रतिभा हमारे समक्ष आती रहती है। मैंने नाना प्रकार के और भी विचारों का पान कराया। परन्तु जब ऋषिजन अपने शिष्य को ऊँचा बनाते थे तो मुनिवरों वह ऐसी औषधियों को आसन ! बना देते थे, पृथ्वी की विद्युत उस औषधि में परणित होती थी ब्रह्मचारी जिससे यौगिक अभ्यास में अधिक परणित हो जाता था। ऐसा प्रायः मुझे अभ्यास कराने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। एक समय जब हमें अपने पूज्यपाद गुरु देव के द्वारा आसन पर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो मुनिवरोंदेखो !, उन्होंने एक आसन !दिया और यह कहा, हे वत्स इस आसन को लो। इस आसन पर विराजमान हो करके योगाभ्यास

करो। उसका यह महत्व होता था कि प्रकृति की जो धाराएं पृथ्वी में रमण करती रहती थीं, विद्युत जिसमें अधिक होती थी, जिसको हमारे यहाँ हुण कृति कहते हैं एक योग में मूल कृति आसन होता है, उसमें विद्युत का प्रभाव अधिक होता है। योग की गति जितनी विद्युत को ग्रहण करने वाली आकर्षण शक्ति करने वाला आसन होगा उतना ही मस्तिष्क में योग की कान्ति उत्पन्न होती चली जाएगी। सूक्ष्म सा यौगिक क्रिया करने से मानव योग के अभ्यास में पारायण हो जाता था। ऐसी औषधियां आयुर्वेद में प्रायः प्राप्त होती रहती हैं। आज हम उस आयुर्वेद में भी जाना नहीं चाहते हैं।

विचार यह उच्चारण कर रहे थे कि आज हमें आयुर्वेद का अध्ययन करना चाहिए। प्रत्येक माता को करना चाहिए माता अपने गर्भ स्थल में ऐसी औषधियों का पान करे। मुनिवरों ! पृथ्वी पर ब ालक के आने के पश्चात् वह सूक्ष्म सा अध्ययन करने मात्र से उनका संस्कार उद्बुद्ध हो जाने से वह आयुर्वेद का महा पंडित बन जाता है। अश्विनी (जागृत) कुमारों में क्या महत्व था। उस माता ने जब अनुसन्धान किया, माता ने अपने गर्भ स्थिर होने पर जब जब भी पूर्णिमाआती उसी दिवस वह चन्द्रमा की आभा में रमण करती रहती। चन्द्रमा की किरणों में तपस्या करती रहती थी। चन्द्रमा की जो आभा थी, चन्द्रमा की जो कान्ति थी वह मुनिवरोंदेखो !, अपने उदर पर अपने मुखारविन्द से प्रत्येक इन्द्रियों के द्वारा उनका अप्रेल देखो !करती रहती थी। मुनिवरों (पान), (1) शैलखण्डा 2)) मामकेतु 3)) स्वाति 4)) फूली। अनेक इस प्रकार की औषधियां हैं जिनका आसन बना करके माता चन्द्र पूर्णिमा के दिवस उस आसन पर विराजमान हो करके आयुर्वेद का अध्ययन किया करती थी। आयुर्वेद का अध्ययन करने मात्र से बेटा अश्विनी कुमारों ! का जन्म ह ुआ। एक ही साथ माता के गर्भ से दोनों पुत्रों का जन्म हुआ था। वह ! महात्मा भुंज के पुत्र थे। जब दोनों का जन्म हुआ, तो इन्होंने महर्षि स्वेतुकेतु के महापौत्र थे। जिनमें कृति कहते थे। वह आयुर्वेद के महापंडित थे जब उनके द्वारा वह अध्ययन करने के लिए पहुंचे। उनका आयुर्वेद का मस्तिष्क बना हुआ था। आयुर्वेद का सूक्ष्म से अध्ययन करने मात्र से बेटा वह आयुर्वेद के महा पंडित बन गए। परिणाम ! क्या कि माता के ऊपर बालक का बहुत दायित्व होता है। क्योंकि उसकी आभाएं सदैव

आज हम अधिक चर !उसमें रमण करती रहती हैं। आओ मेरे प्रूरे ऋषिवर्चा नहीं प्रकट करने आए हैं। विचार यह देने आए हैं, कि आज आयुर्वेद के भी महापंडित होने चाहिए।

वैज्ञानिक माता जैसा पुत्र को बनाना चाहती है उसी प्रकार का अध्ययन उसी प्रकार का उसका आहार और व्यवहार होना चाहिए। परन्तु माता के गर्भ स्थल में हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने यह कहा है कि जो माता गर्भ स्थल में अपना विचार परणित कर देती है वे विचार उनको विद्यालयों में प्राप्त नहीं होते। गुरुओं के चरणों में प्राप्त नहीं होते। वह माता के ही गर्भ स्थल में प्राप्त हो जाते हैं। तो मेरे प्यारे आज मैं इस !ऋषिवर ! सम्बन्ध में अधिक विवेचना नहीं करने जा रहा हूँ विचार यह दे रहा था कि आज हम विज्ञान के युग में जाना चाहते हैं। विज्ञान की उन आभाओं को जानना चाहते हैं जिनसे मानव वैज्ञानिक बनाता है। उस आयुर्वेद को अपनाना चाहिए।

उसके पश्चात् अग्नि की धाराएं हैं पृथ्वी की तरंगें हैं वायु की और अन्तरिक्ष की धाराएं हैं। उन परमाणुओं पर प्रायः वैदिक अध्ययन से अनुसन्धान होना चाहिए जिस अनुसन्धान के द्वारा हम अपने पन में अपने राष्ट्र और समाज को उस विज्ञान के युग में ले जाए, उसविज्ञान की धाराओं को रमण कराने वाले बने जिससे संसार में अज्ञानता कदापि न रहने पाए। यह है मुनिवरों आज का हमारा वाक्य। समाज उस काल में अज्ञानी बन ! जाता है जिस काल में माता बुद्धिमान नहीं रहती। क्योंकि माताएं जब अपने कर्त्तव्य उनके गर्भ से कर्त्तव्यहीन प्राणियों का जन्म हो जाता !को त्याग देती हैं तो मुनिवरों है। उससे संसार में शिक्षार्थी नहीं रहते। आचार्यों का अभाव हो जाता है। जब आचार्यों का अभाव होता है, उस समय मुनिवरोंदेखो !, छात्रबल में अशुद्धवाद हो करके रक्तभरी, क्रान्ति आ जाती है। धर्म की परम्पराओं में सूक्ष्मता आ करके रूढ़ियां बन जाती हैं और वे जो रूढ़ियां हैं वह धर्म और राष्ट्र को दोनों को विनाश के मार्ग पर ले जाती हैं। तब विज्ञान नहीं रह पाता। तो इसीलिए आज का वाक् में यह उच्चारण कर रहा था बेटा ! कि आज हमारे द्वारा विज्ञान होना चाहिए। कल मुझे समय मिलेगा तो कल मैं अधिक गुरुओं, आचार्यों की चर्चाएं, गुरु शिष्यों की चर्चाएं प्रकट करूंगा। प्रथम काल

बेटावह काल था उस काल में आज से लाखों वर्षों पूर्व !, आचार्य और गुरु का कैसा सम्बन्ध होता था? उसके सम्बन्ध में किस किस प्रकार का पठन पाठन था? इस सम्बन्ध में कल अपना विचार प्रकट करेंगे। आज का वाक् अब समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

९ 18 08 1972 पुष्प 24 नाना लोको के विज्ञान की तुलना

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। आज हम पूर्व से जिन वेद मन्त्रों की ध्वनियों अथवा उसमें विज्ञान की प्रतिभा का वर्णन करते चले जा रहे थे वे तुम्हें प्रतीत हो गए होंगे। आज का हमारा वेद उस महान् देव की महिमा का गुण गान गा रहा था। हे परमात्मन् तुझे वेद ने आग्नेय स्वरूप कहा है। तू इस संसार को तपाने वाला है। ! क्योंकि यह जो जगत् है यह आप ही की चेतना पान कर रहा है। आप का जो अग्निमय स्वरूप है उसी प्रकाश में यह मानव प्रकाशमान होता चला जा रहा है। हे भगवन् हम वास्तव में तेरे द्वार पर आए हैं। हमारा कल्याण कर। हमारी संसार में ! और कोई विशेष कामना नहीं है। केवल यदि कोई कामना है तो वह यह है कि आपके गुणों का हम गुण गान गाते रहें। आप की महिमा को सदैव प्रकाश देत े रहें और इन आज्ञाओं का हम पालन करते रहें जो प्रभु आपने हमें वेद रूपी अनुपम ज्ञान में प्रदान की हैं। जो ज्ञान और विज्ञान का भंडार है।

वेद ने तुझे मृत्युञ्जय कहा है। जिसके निकट मृत्यु नहीं होती। वह संसार की मृत्यु से ऊर्ध्व में ले जाने वाला है। हे प्रभोह !म आप की महिमा का गुण गान गाते चले जाएं। वह जो अनुपम देवी प्रकाशमयी अग्नि है वह हमें इस लोक में ऊँचा बनाती है। माता के गर्भस्थल में भी इसका प्रकाश उसका तेजोमय जो एक महान् तेज है। वह मानो माता के गर्भ में हम जैसे प्यारे पुत्रोंको तपा रहा है। तेजस्वी बना रह !ा है, तो वह प्रभु बेटा कितना विज्ञानमय है। आज हम उस देव की महिमा का जब गुण गान ! गाना प्रारम्भ करते हैं तो हमें ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे हम उस देव के आँगन में विराजमान हैं। क्योंकि वेद रूपी जो अनुपम सागर है उसमें जो अनुपमता अमृतमयी

है। उस अमृत को हम चरने वाले बनें। संसार में हम इस संसार सागर से पार होना चाहते हैं और यह कामना रहती है हे प्रभु हमें इस संसार से जो मान और अपमान ! दूर ले चल। हम दूरी चाहते है। हम क्या चाहते हैं !वाला जगत् है इससे हमें भगवन्? भगवन्हम इस महान् ईर्ष्या वाले जगत् में नहीं रहना चा !हते। नाना प्रकार के विडम्बना वाले जगत् में नहीं रहना चाहते हैं। हम उस जगत् में रहना चाहते हैं, जिस जगत् में आपकी अनुपम कृपा होती रहे। आपकी दया होती रहे और आपकी करुणामयी, आनन्द में हम सदैव पनपते रहे। तू माता बन करके हमारा जब कल्याण करती है तो वह आनन्दमय जो जीवन है वह इस अन्धकार से प्रकाश के मार्ग को जाता है।

प्रकाश का जो मार्ग है वह एक ऐसा पवित्र मार्ग है जिसको अपनाने के पश्चात् हमारे जीवन में पवित्रता आती चली जाती है। मेरे प्यारे हम सदैव पवित्रता चाहते हैं जिस ! पवित्रता को अपनाने के पश्चात् मानव का जीवन ऊर्ध्वगति को प्राप्त हो जाता है। माता जिस प्रकार अपने बालक अथवा शिशु को व्याकुल हुए को अपने कंठ में धारण कर लेती है। इसी प्रकार हे मांतू कैसी आनन्दमयी माँ है। तेरी जो आनन्दमयी !, ज्ञानमयी, विज्ञानमयी जो पवित्र तरंगे हैं उनको हम प्राप्त होते रहते हैं और हम धन्य और कृतज्ञ होते चले हैं। मां तेरी करुणा की सदैव आवश्यकता रहती है। यह जो ! संसार है यह ज्ञान और विज्ञान के मार्ग पर परम्परा से चला जा रहा है।

कल मेरे वत्स पुत्र ने एक वाक्य कहा था कि यह संसार विज्ञान के युग में जा रहा है। विज्ञान को आभाओं में रमण कर रहा है। लोक लोकान्तरों में, प्राणी मात्र में विज्ञान की पिपासा जागरुक हो रही है। परन्तु यह विज्ञान की पिपासा आध्यात्मिक वाद की पिपासा यदि इतनी बलवती हो जाए तो माँ की जो लोरियां हैं माँ का जो प्रकाशमय आँगन है वह बहुत ही सहज मानव को प्राप्त हो जाता है। वह कैसी मेरी माँ है? मेरे पुत्र ने यह कहा कि संसार चन्द्रमा की कल्पना, चन्द्र मण्डल के वैज्ञानिकों की वार्त्ता प्रकट कर रहे थे। मेरा हृदय तो बहुत गद् गद् हो रहा था, क्या मेरे वत्स कैसी ऊँची वार्त्ता और विज्ञानमय यह जीवन है। क्योंकि संसार में मानव जब माता के गर्भ स्थल में होता है तो उस देव और प्रभु ने ऐसी नस नाड़ियों का निर्माण किया है जिसके द्वारा

मानव का मस्तिष्क प्रबल बलवान होने पर जिसका विकास होता है। सूक्ष्म सा आश्रय लेने के पश्चात् उसका विकासमय जीवन बन जाता है। कैसा विकास, कैसी धाराएं बन जाती हैं? बारम्बार हम सदैव इस अनुपमता को प्रकट करते रहे हैं।

मुनिवरों विचार यह कि मानव का जीवन विज्ञानमय होना चाहिए। वह जो प्रभु का ! रचा हुआ यह मानव शरीर है, इसमें मानव विराजमान हो करके अनुसन्धान करता है। अनुसन्धान की वेदी पर विराजमान होता है। वह जो अनुसन्धानमय जीवन है वह कितना महान् पवित्र है। एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ उनके महामन्त्री ने एक वाक्य कहा कि महाराजहम सूर्य मण्डल में जाना चाहते हैं !, तो हम किस किस प्रकार अनुसन्धान करें? तो उस समय बेटा प्रश्नोत्तर प्रारम्भ होने लगे। यह कहा गया कि जो ! सूर्य की रश्मियां है। उन रश्मियों को हम घ्राण और नेत्रों के द्वारा अनुभव करेंगे। वास्तव में तो वे नेत्रों के द्वारा अनुभव होती हैं। हम जब अपने मानव जीवन को एक चित्रण और चित्र स्वीकार कर लेते हैं तो चत्रि में जब यह आभास होने लगता है वह प्रकाश आभासने लगता है जो सूर्यों को भी प्रकाशमान बनाता है। वह प्रकाश कितना तेजोमय है? उस प्रकाश की जो रश्मियां हैं, उसमें हम नाना प्रकार के पुट लगाते चले जाते हैं। परन्तु वह अग्नि तत्त्व प्रधान निर्माण होता है। उसमें अग्नि की नाना तरंगों को परणित कर दिया जाता है। अब यह यान जब अन्तरिक्ष में जाता है, भ्रमण करता है, भ्रमण करता हुआ वत्स सूर्य मण्डल की उन रश्मियों के मार्ग के लिए प्रेरित होने लगता है ! !उसमें अपने जीवन को आरम्भि बनाता हुआ पारलोकिकता में ले जाता है। तो मुनिवरों विचार क्या? मानव का जन्म होता है विकास के लिए सूक्ष्म वाहक नाड़ियों का जन्म होता है। जब मानव विकास करने लगता है उन्हीं नस नाड़ियों के द्वारा मानव जीवन विकसित होने लगता है। बेटा विकसित होने के पश्चात् जीवन में एक महान् आभा ! आने लगती है और वह जीवन कुछ समय के पश्चात् स्वयं प्रकाशमान बन जाता है। विचार यह है कि आज हम उस आत्मवेत्ता प् .... हास्यरकाश को जानने के लिए तत्पर हो जाएं। अब में अधिक चर्चा तो प्रकट नहीं करूंगा। क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द ! जी बड़े उतावले हैं। यह अपने वाक्य उच्चारण करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

इनका वाक्य कल हमें बहुत प्रिय लगा परन्तु प्रियता में हमने आज भी इन्हें समय प्रदान किया। अब मेरे प्यारे महानन्द जी पक्षपात रहित अपना संक्षिप्त विचार प्रकट ! करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मेरे !अथवा भद्र समाज !ऋषि मण्डल ! पूज्यपाद गुरुदेव का अभी अभी मनोहर विचार आत्मा का उत्थान करने के लिए प्रारम्भ हो रहा था। इनविचारों में हम ऐसा प्रतीत करने लगते हैं हमें ऐसा अनुभव होता है जैसे क्षुधा से पीड़ित माँ का प्रिय बालक उस माँ की लोरियों का पान कर रहा हो। परन्तु उसके आनन्द में रमण करते हुए हमें प्रायः ऐसा प्रतीत होता है। जैसे हम एक महान प्रतिभा में रमण कर रहे हों। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की अभी अभी कुछ आत्मा का विवरण अथवा उनकी विचारधाराएं ऐसी गम्भीर और सौम्य प्रकट हो रही थीं। हम यह अपने में अनुभव कर रहे थे जैसे हम विज्ञानशाला में ही विराजमान हैं। परन्तु मैं आज कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। वह मेरा कर्त्तव्य है। आज का समाज, आज का विज्ञान वह कितना महान है? मैंने कल के वाक्यों में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था। हे भगवन् आज का जो मानवीय ! विज्ञान है उस विज्ञान में प्रायः दुरूपयोग है, सदुपयोग नहीं। आज का विज्ञान यह कह रहा है कि पुरातन काल में जो विज्ञान था, वह इस प्रकार का नहीं था। वह केवल सूक्ष्म था। आज का जो हमने विज्ञान जाना है उसमें सृष्टि के प्रारम्भ से विकास करते हुए यहाँ तक चले आए हैं कि हम वायु मण्डल में रमण करते हैं। परन्तु यह उनकी विडम्बना है। यह उनका विचार बहुत ही अशुद्ध है।

हमारा जो समय अथवा काल था उस काल में इस प्रकार का विज्ञान, इससे भी ऊर्ध्वा गति वाला विज्ञान महर्षि भारद्वाज मुनि आश्रम में प्रयुक्त रहता था। क्योंकि हमारे यहाँ पुरातन काल में और भी नाना वैज्ञानिक हुए। बहुत ऊँचा विज्ञान उनके समक्ष था। परन्तु उनका इतिहास उनकी प्रतिभा आज के समाज को प्रतीत नहीं है। उसका मूल्यांकन यह है। यह समाज कुछ समय से ऐसी रूढ़िवाद में चला गया। ऋषि मुनियों की जो विचारधारा उनकी नाना प्रकार की पोथियां थीं वे अग्नि के मुखारविन्द में परणित हो

गईं। तो इससे वैदिक साहित्य कोई प्राप्त नहीं होता। वेदों के जो उपवेद हैं अथवा उनसे मन्थन किया हुआ जो विचार है वह विचार अग्नि के मूर्खों में परणित हो गया। उसका मूल कारण केवल रूढ़ि है। धर्म को नहीं हम कह सकते। इसको हम रूढ़ि ही उच्चारण कर सकते हैं, परन्तु आज का जो युवक समाज है वह उसको यह उच्चारण कर रहा है, केवल यह विडम्बना और कल्पना है काल्पनिकता है। परन्तु इसको मैं कल्पना और काल्पनिकता कैसे उच्चारण कर सकता हूँ? हमारा तो मुख नहीं कह रहा है। उस विज्ञान की जब हम आज के विज्ञान से सन्तुलना करते हैं तो उसविज्ञान की आभा परम्परा की आभा से सन्तुलित नहीं होती। पुरातन काल के विज्ञान में यह था कि उसका दुरूपयोग नहीं होता था आज का जोविज्ञान है वह दुरूपयोग में परणित हो रहा है जैसे हमारे यहाँ पुरातन काल में महर्षि भारद्वाज ने एक चित्रावली बनाई थी और वह चित्रावली सर्वत्र राष्ट्रों में परणित रही। उन चित्रावलियों पर एक स्थल बनाया जाता था। उस स्थल पर चित्रण होता और वह लगभग 100 योजन दूरी इससे भी अधिक 100 सहस्त्रों सहस्त्रों योजन दूर उसकी चित्रावली यन्त्रों में प्रायः रमण करने लगती थी। आज भी वह विराजमान हैं। आज भी वह विकास कर रही है। वर्तमान काल में भी वह चित्रावली दृष्टिपात आती है। परन्तु आज का विज्ञान उस धारा पर नहीं पहुंचा है।

महर्षि भारद्वाज ने एक यन्त्र बनाया था। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया। उस विज्ञान में उसको चरितकेतु यन्त्र कहते थे। उस यन्त्र में यह विशेषता थी मानो एक हजार वर्ष पूर्व जिसका निधन हो गया है। यदि उसका रक्त का एक बिन्दु प्राप्त हो जाता था, तो उस यन्त्र में यदि उस रक्त के एक बिन्दु को लाया जाए। उसका उस यन्त्र में वास्तविक चित्र दृष्टिपात आने लगताथा। परन्तु वह विज्ञान अब कहाँ है? मैं उस विज्ञान को जब चर्चाएं करता हूँ। जब मैं अपने पूज्यपद गुरुदेव से प्रश्नोत्तर करता हूँ तो मेरा हृदय यह पुकारने लगता है।

परन्तु देखो, जहाँ यह विचार किया जाता है क्या इस प्रकार का यान अथवा यन्त्र एक यान इस प्रकार का महर्षि भारद्वाज और श्वेत केतु ने और महर्षि बालम्भ जी ने ऐसा यन्त्र बनाया था। एक मानव के उस स्थान पर से चले जाने के पश्चात् भी लगभग पांच

घड़ी के पश्चात् उस मानव का चित्र लिया जा सकता था। आज (दो घण्टे पश्चात् तक) वह विज्ञान कहाँ है? जब मैं इन यान एवं यन्त्रों पर विचार विनिमय करता हूँ, मैं जब उस विज्ञानशाला में परणित होता हूँ तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आज का विज्ञान तो न होने के तुल्य है। परन्तु आज के विज्ञान का तो दुरूपयोग हो रहा है।

पूर्व काल के विज्ञान का सदुपयोग क्या था? एक चित्रावली बनाई। उसमें माताओं का चरित्र, ऋषि मुनियों का चरित्र, ब्रह्मचर्य का महत्व, सात्विक राष्ट्रीयता की विचारधारा और वैदिकता के मन्त्रार्थ जब उसयन्त्र से प्रसारित किए जाते तो सर्वत्र राष्ट्र स्वर्ग के तुल्य दृष्टिपात होता था। आज का समाज, आज का युवक आधुनिक यन्त्रों में मानो मेरी पुत्रियों के चित्रों को देखने में मग्न दृष्टिपात होता है। यह क्या है? यह केवल उनके जीवन की प्रतिभा उनके जीवन के सुकृत पुण)्य को हनन करने वाला विज्ञान है। (यह विज्ञान वास्तव में परम्परा से इस समाज में चला आ रहा है। यह विज्ञान तो प्रायः इस जगत में चला आ रहा है।

महर्षि धन्वन्तरि जी महर्षि भट्टाचार्य, श्री भट्ट, अश्विनी कुमारों और दधीचि की जब आयुर्वेद के ऊपर लेखनी बद्ध होती रहती थी तो प्रायः वह आयुर्वेद का भक्ष्य अभक्ष्य युवक समाज के समीप आता। शिक्षालयों में शिक्षा प्रदान की जाती। सबसे प्रथम आहार और व्यवहार पर ही बल दिया जाता। आहार और व्यवहार पर बल देना मानव के लिए बहुत अनिवार्य है। कल भी मैंने अपना विचार दिया था आज भी मैं उन वाक्यों की पुनरुक्ति तो नहीं करूंगा। केवल संक्षिप्त कोई वाक्य पुनरुक्ति में आ जाए तो उसमें मैं दोष स्वीकार नहीं करता।

आज मेरी पुत्रियां मेरी पवित्र माताएं, जिनका जीवन सदैव पवित्रता में परणित रहता। प्रभु की प्रतिभा उनके द्वारा अभीष्ठ है। परन्तु वे दूसरे के रक्त को पान करने में प्रसन्न होती हैं। आज का वैद्यराज कह रहा है कि आज मानव के हृदय की जो गति है अहः गति करते करते एक स्थान में शान्त हो जाती है। मानव की मृत्यु होने के लिए तत्पर होती है। वैद्यराज कह रहा है। क्या दूसरे के रक्त का पान किया जाए तो हृदय के लिए

गति आ सकती है? परन्तु प्रायः ऐसा नहीं है।
यहाँ आयुर्वेद यह कह रहा है कि यहाँ नाना प्रकार की औषधियों का वर्णन आ रहा है जैसे किसी मानव के हृदय की गति होते होते मन्द हो जाए अथवा धीमी पड़ जाए तो यहाँ ऋषिजन यह कह रहा है, आयुर्वेद यह कहता है, धन्वन्तरि जी और विष्णु जी यह कहते हैं स्वाति ब्रह्मः, स्वाति भ्रतिः अस्वाति लोकम् ब्रह्म व्यापक प्रवे यहाँ औषधियों के नामों का वर्णन है। ऐसा उन्होंने कहा। 1. शेल खण्ड स्वाति जो प्रायः पर्वतों में प्राप्त होती है आज भी उनके नाम उसी प्रकार हैं, परन्तु आयुर्वेद को कौन दृष्टिपात करता है। परन्तु जिसमें, 2. ब्रह्मकेतु 3. ब्रह्माणि और 4. शंख पुष्पी ये चार औषधियों इनका पात बनने के पश्चात् उनकी अग्नि में भस्म बना करके और मधु के द्वारा पान करने से गति उतने ही बलवती हो जाती है। परन्तु साथ में संयम, ब्रह्मचर्य की आभा से और उसको पान करने से मानो हृदय में गति पुनः से प्रविष्ट हो जाती है। परिणाम क्या कि आज का वैद्यराज यह कह रहा है। आज के औषधालयों में यह परणित किया जाता है कि मांस को भक्षण किया जाए। मांस के रक्त का स्वादन किया जाय। यह क्या है? युवक समाज उसी आहार को ले करके मानव प्रीति से अप्रीति में परणित हो रहा है। वह समय मुझे स्मरण है जब यहाँ विदेशियों का आक्रमण हुआ। उनकी छाया सर्वत्र मानो पृथ्वी मण्डल पर रहती थी। अर्थात् सारे आर्यावर्त पर छा रहे थे। आज जब यहाँ पश्चिमी विभाग में जाते हैं तो वहाँ कुछ और आहार प्राप्त होता है। मूल कारण क्या है इसका? वैद्यों की प्रतिभा और विज्ञान का दुरूपयोग है यह। विज्ञान का यदि दुरूपयोग न होता तो संसार की गति इस प्रकार की अशुद्ध न बन पाती। परिणाम यह मैं आज अधिक विवेचना नहीं दूंगा। विचार देना मेरा एक कर्त्तव्य है। मैं इसीलिए आ पहुंचा हूँ। मैंने अपने पूज्य गुरुदेव से आज्ञा पाई क्या मैं यह उच्चारण करना चाहता हूँ कि मानव के आहार के लिए एक अन्न को पान दुग्ध, गो घृत, इत्यादि का पान करना ही एक मानवता मानी जाती है। मानव को अपने आहार को पाक (पकाना संस्कृत भाषा का) करना चाहिए। (उर्दू भाषा का पवित्र)
मैं आज यह उच्चारण करने जा रहा हूँ। यहाँ जो भी महापुरुष आया उसने मानव के

आहार को मानव का आहार कहा। महात्मा ऋषि दयानन्द ने सबसे प्रथम कहा कि जहाँ प्राणी को अन्न प्राप्त नहीं होता, जहाँ केवल मांस ही मांस है, वहाँ प्राणियों को नहीं रहना चाहिए। उनका कितना ऊँचा आदेश था। आज उनका जो अनुयायी समाज है वह यज्ञवेदी पर विराजमान होता है परन्तु संकल्प में बद्ध रहता है। पर गृहों में देखो, नाना प्रकार के गर्भों को पान किया जाता है। कहाँ है वह ऋषि का विचार? परन्तु देखो, युवक समाज में विज्ञान नहीं। आज तो उसको ऐसा प्रतीत होता है, मुझे भी ऐसा प्रतीत होता है आज का समाज यह स्वीकार करता है। यह तो आज के संसार की मानो एक प्रतिष्ठा है। प्रतिष्ठा का सम्बन्ध है। आज के आहार को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाया है। यज्ञ वेदी पर विराजमान होने वाला प्राणी आहार को पवित्र नहीं बना सकता। ऋषि की वेदी में भी ऊँचा नहीं बना सकता। परन्तु देखो, यह समाज कहाँ जा रहा है? इस समाज में मैं अधिक प्राणियों के ऊपर अपना विचार नहीं दे रहा हूँ। कुछ प्राणी अच्छे सुन्दर भी हैं। आहार व्यवहार में सुन्दर भी हैं। परन्तु देखो, विज्ञान का दुरूपयोग है। इसीलिए विज्ञान का पूर्वकाल के अनुसार दुरूपयोग नहीं होना चाहिए।

परन्तु जिस काल में विज्ञान होता है उसी काल में यह समाज विनाश को प्राप्त होता है। राजा रावण का काल विज्ञान में कितना उन्नत था परन्तु जिस काल में विज्ञान के दुरूपयोग होना प्रारम्भ हुआ उसी काल में भयंकर संग्राम हो गया उसी काल में विनाश को प्राप्त हो गया। राजा रावण के यह कितना विज्ञान था? मानो समुद्र को तरंगें भी इतनी उद्वेलित नहीं थी जितनी आज वर्तमान में है। इस भारत भूमि का और लंका की इतनी दूरी नहीं थी। समुद्र मानो कुछ समीप को आ गया है। पहली लंका कुछ समुद्रों में लुप्त हो गई। उस काल के पश्चात् क्योंकि जहाँ लगभग लाख वर्ष हो गए। न 9 जाने समुद्र कितने समय आया कितने समय चला गया। उसकी तरंगों में कितना लुप्त हो गया कितना प्रकट हो गया। यह नहीं कहा जा सकता। इसकी न मैं वर्णन ही करूंगा। परन्तु विचार यह क्या बहुत ही कम दूरी थी। जहाँ नल और नील दो वैज्ञानिकों ने सेतुबन्धु का निर्माण किया। निर्माण करने के पश्चात् रावण को सर्वत्र यह प्रतीत हो रहा था कि राम चला आ रहा है। तेरे से संग्राम करने के लिए। परन्तु यहाँ उनके जो

विधाता थे विभीषण परन्तु उनका राम से मिलान था। राम से स्नेह करने वाले थे और वह उस दुःखद रावण के व्यक्तित्व को स्वीकार नहीं कर पाते थे। उन्होंने रावण को पहले से अपनी वार्त्ता से एक सीमा में नियत किए हुए था परन्तु जब रावण ने उनको पदों से ठुकराया उसी समय उन्होंने राम से आकर प्रीति की। परिणाम जो हुआ वह सबको प्रतीत ही है। तथा नल और नील इतने वैज्ञानिक थे उन्होंने सेतु बन्ध बांधा। उसका निर्माण करने के पश्चात् उसी से ही आगमन् होने लगा। तब लंका इतनी दूर नहीं थी। समुद्र इतना लंबा नहीं था। लंका द्वीप बहुत ही निकट था। समुद्र की दूरी केवल ऐसी दूरी थी। जो सेतुबन्ध का निर्माण हो सकता था। तो परिणाम यह मैं विशेष चर्चा में जाना नहीं चाहता हूँ। विचार मैं यह देना चाहता हूँ कि आज का वैज्ञानिक क्या कह रहा है?

आज के विज्ञान की चर्चाएं हैं। क्या सूर्य मण्डल में इस प्रकार के गदेले विस्फोट) आ गए हैं जो इस समाज में और राष्ट्र में पृथ्वी मण्डल को दूषित बना (तथा अधंड़ सकते हैं। परन्तु देखो, आज के वैज्ञानिकों ने अच्छी प्रकार अनुसन्धान उस पर नहीं किया। मैंने कल के वाक्यों में कहा है उसकी दूषित छाया बुद्ध और शनि पर जा पहुंची है। इस पृथ्वी मण्डल पर प्रभाव हो सकता है परन्तु सूक्ष्म होगा। परिणाम यह कि मैं एक वाक्य यह प्रकट करने जा रहा था कि मैं जब विज्ञान के युग की चर्चाएं आधुनिक काल की चर्चाएं प्रकट करने लगता हूँ।

आधुनिक काल अपने में गौरव और अभिमान स्वीकार करता है। करना चाहिए भी। आज का विज्ञान चन्द्रमा में चला गया। मंगल के निकट चला गया। और भी नाना प्रकार के यानों का निर्माण और विचार होता रहता है। मुझे इससे बड़ी प्रसन्नता है। परन्तु जहाँ प्रसन्नता है वहाँ ऊँचा विचार भी होना चाहिए। आहार और व्यवहार में पवित्रता और विज्ञान में उन यन्त्रों का निर्माण होना चाहिए। उन यन्त्रों की प्रतिभा होनी चाहिए जिनयन्त्रों से राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाया जाए। वाणी को एक सूत्र में बांधने का संसार में एक सूत्र में लाने का प्रयास किया जाए।

ऐसा भी यान बनाने के लिए विज्ञान आज का तत्पर है जो मानो महाभारत के काल में

भगवान् कृष्णा और अर्जुन का जो संवाद था वायु मण्डल में जो विचरण कर रहा है उसको हम यन्त्रों के द्वारा लाना चाहते हैं। इस प्रकार का विज्ञान भी है। अहः वह विज्ञान एक महान् है। क्योंकि वह वाणी पर अनुसन्धान करने से ही वायु पर अनुसन्धान करना वायु की रश्मियों को (तरंग), अग्नि को रश्मियों को इन दोनों का समावेश किया जाता है। एक वैज्ञानिक यन्त्र बनाता है और वह यन्त्र बनाने से पूर्व अपना लक्ष्य है कि मैं वायुमण्डल में अन्तरिक्ष में जो शब्द भ्रमण कर रहे हैं मैं उन शब्दों को एक यन्त्र में लाना चाहता हूँ। भौतिक विज्ञान में लाना चाहता हूँ। क्योंकि वे शब्द तो प्रकृति के गर्भ में रमण कर रहे हैं और प्रकृति के गर्भ में जो वस्तु रमण करती है प्रायः हम उसकी एकत्रित कर सकते हैं। जैसे एक मानव यन्त्रों का निर्माण करता है शब्दों को ग्रहण करने के लिए। उसमें अन्तरिक्ष में जो परमाणु भ्रमण कर रहे हैं अथवा सूर्य की रश्मियां हैं और सूर्य की रश्मियों से भी एक सूक्ष्म रश्मियां होती हैं जो जेठाय नक्षत्र की (ज्येष्ठ) रश्मियां होती हैं। उन रश्मियों को और सूर्य की किरणों के द्वारा जो रश्मियां हैं उन दोनों रश्मियां को एकाग्र करते हैं उनको एक यन्त्र में स्थिर करते हैं क्योंकि उनको एक स्थली बनाते हैं मानो पृथ्वी के इतने पुट लगा करके और उसमें से प्राण वायु और प्राण के नाश देने वाली वायु का दोनों का हम मिलान करते हैं और मिलान करने के पश्चात् वे जो रश्मियां हैं उनमें कुछ प्राणदायक हैं कुछ प्राण को दूषित बना सकती हैं वे जो व्यान प्राण है जैसे व्यान प्राण हमारे कण्ठ के ऊपर का भाग है इसी प्रकार जो व्यान प्राण है जो प्रकृति में मानो वायु मण्डल में भ्रमण कर रहा है वह शब्द के साथ होता है वह प्राण और जेठाय नक्षत्र की जो रश्मियां हैं वे प्रायः उनसे हमें प्राप्त होती हैं। अग्नि की धाराओं में उनकी धारा रमण करती है। वायु की धाराओं में मिश्रित होता हुआ वायु मण्डल के परमाणुओं को वह अपने में एकत्रित करने का प्रयास करता है। उस यन्त्र में स्वतः इस प्रकार की रश्मियां होती हैं। इस प्रकार की आकर्षण शक्ति हो जाती है कि उस यन्त्र के द्वारा शब्दों को ग्रहण करने लगते हैं।

महर्षि भारद्वाज ने और भी अनेक आदि ऋषियों ने तो ऐसा कहा है। जैसे चित्र में एकस्थली का चित्र आ जाता है ऐसे वायु मण्डल में जो शब्दों के साथ में मानव के

शरीरों के जो चित्रण हैं, परमाणु हैं उनको भी मानव एकत्रित करके यन्त्र के द्वारा उनका चित्रण कर सकता है। यह महर्षि भारद्वाज मुनि ने कहा है। महर्षि भारद्वाज मुनि और अंगिरा मुनि और जो पौत्र थे श्रीणी मुनि महाराज, उनका मध्यकाल लगभग लाखों वर्षों की दूरी का समय बनता है। परन्तु उन्होंने जिस समय शब्दावली के यन्त्रों का निर्माण किया कि जिनसे हम शब्दों को ग्रहण करें, शब्दों को लाने का प्रयास करें। उन शब्दों को हम एक यन्त्र में लाते हैं जो ज्ञानमय यन्त्र ज्ञानमय परमाणुओं वाली वाणी के शब्द भ्रमण कर रहे हैं। उन शब्दों को एत्रित करना चाहते हैं। तो उनको उन्होंने अपने यन्त्रों में लाने का प्रयास किया। और प्रयास करने के पश्चात् जो लाखों वर्षों पूर्व के शब्द थेउन्होंने केवल स्वाति यन्त्र के द्वारा शब्दावलियों को अपने में ग्रहण करना प्रारम्भ कियका। वे अपने जैसे चित्रण मानो पटल पर चित्त होते हैं ऐसे वे उनका दिग्दर्शन करने लगे। तो विचार यह कि जो एक सहस्त्र का भी प्रमाण दे सकता है वह लगभग लाखों वर्षों का भी प्रमाण दे सकता है परन्तु मैं इस सम्बन्ध में अधिक विचार देना नहीं चाहता हूँ। विचार देने का अभिप्राय यह कि आज हम उस विज्ञान के युग में जाना चाहते हैं। आज का विज्ञान उस विज्ञान के लिए पिपासु रह रहा है पिपासा कर रहा है। हो सकता है यह विज्ञान आदि इस गति पर चलता रहा तो लगभग वर्ष के 50 पश्चात् इन गतियों को प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार आगे आने वाला जो समाज है, आगे आने वाला जो जगत है, उसमें यह सफलता को प्राप्त हो सकता है।

मैं यहाँ यह उच्चारण कर रहा था कि वह जो सूर्य मण्डल में जो गदेले आ गए हैं जिसमें उसकी दूषित रश्मियां मण्डलों पर आनी प्रारम्भ हो गई है। उसके विषय में यह मैंने कल के वाक्यों में भी कहा है। आज भी मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को स्पष्टीकरण कराना चाहता हूँ। यह नाना प्रकार के वैज्ञानिक जो लोक लोकान्तरों में विज्ञान के ऊपर अनुसन्धान कर रहे हैं वह नाना प्रकार का अन्वेषण कर रहे हैं। मानो उनको आक्रमण कर करके उनको क्रियात्मक में लाना चाहते हैं परन्तु यहाँ विचार यह करना (प्रगति) 1) चाहिए हमारे यहाँ दो प्रकार के विचार हैं।) एक तो यह है वे जो सूर्य की रश्मियां हैं मानो वह जेठाय नक्षत्र के द्वार से होती हुई पृथ्वी मण्डल पर आती हैं। (ज्येष्ठा)

कुछ यह वैज्ञानिक कहते हैं परम्परा क्यों यह नहीं? जेठाय नक्षत्र की रश्मियां (ज्येष्ठा) 2) तो बहुत ही बलवती हैं।) परन्तु वह नक्षत्र केवल बृहस्पति के आँगन में हो करके पृथ्वी मण्डल पर आते हैं। परन्तु मैं इस विवाद में नहीं जाऊंगा। विचार यह कि वहाँ का वैज्ञानिक अन्वेषण कर रहा है और वहाँ का वैज्ञानिक विज्ञान के यन्त्रों का निर्माण करके उनका अन्वेषण, उनकी कृति क्रियात्मक में लाना चाहता है कि कितना शक्तिशाली यन्त्र है। परन्तु देखो, जैसे मंगल का वैज्ञानिक है। मंगल के वैज्ञानिक की चर्चाएं मैंने पुरातन काल में की हैं। वहाँ का वैज्ञानिक इस पृथ्वी मण्डल पर आया परन्तु यहाँ यन्त्रों को भी दृष्टिपात किया गया। उन यन्त्रों में उनका गुप्तचर विभाग भी यहाँ पृथ्वी मण्डल पर आया। परन्तु वह कुछ समुद्रों की तरंगों में प्रायः वह गुप्तचर अपने आँगन में रमण कर रहे हैं। वे यहाँ के प्राणियों से कुछ मध्यम हैं। परन्तु देखो, वे कुछ समय में अनुसन्धान करके चले जाएंगे।

परिणाम क्या कि उन समुद्रों में जैसा मैंने मंगल के विज्ञान की चर्चाएं की वहाँ समुद्रों में ऐसे पदार्थों को खोज किया जा रहा है जिनसे पान करने मात्र से ही वहाँ के समुद्रों में ऐसे पदार्थ प्राप्त होते हैं उनका एक समय पान कर लिया तो तीन तीन दिवस तक क्षुधा उनको प्रेरित नहीं करती। अहा उनको क्षुधा नहीं लग पाती। इसी प्रकार आज का विज्ञान भी इस पृथ्वी मण्डल के भी वैज्ञानिक इस प्रकार के प्रयत्न कर रहे हैं। वे प्रयत्नशील हैं कि हम कुछ ऐसे पदार्थों को समुद्रों में से पान करना चाहते हैं। मानो जिसको पान करने मात्र से क्षुधा शान्त हो जाए। यह जो पृथ्वी पर वसुन्धरा के गर्भ से अन्न उत्पन्न होता है यह सूक्ष्म बन जाए तो। परन्तु इस प्रकार की विचारधारा में आज का वैज्ञानिक अनुसन्धान करने को तत्पर है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है क्या चन्द्रमा, सूर्य और मंगल के जहाँ समुद्रों की कृतियां आती हैं जहाँ केवल यह है कि इस पृथ्वी मण्डल का जो समुद्र है उसमें सूक्ष्म वह खनिज प्राप्त होते हैं। परन्तु वह है अधिक मात्रा में। परन्तु वे इतने नहीं हैं। हो सकता है कि आज का वैज्ञानिक दस वर्षों के आने वाले समाज में आने वाले भविष्य में सफल हो जाएगा। सफल हो सकता है। अब

उनको निकालने में उनका अनुसन्धान प्रारम्भ हो रहा है।

मैं इस विज्ञान में अधिक नहीं जाना चाहता हूँ। केवल विचार देने का हमारा अभिप्राय यही है कि आज हम विज्ञान के युग में जाना चाहते हैं। विज्ञान की उस आभा को जानना चाहते हैं जिस आभा में मानव के शब्द मानव की प्रतिभा, मानव की कृति यह सब एक सूत्र में विराजमान हो रहा है। परन्तु मैं एक शब्द और उच्चारण करने जा रहा हूँ कि आज मानव को प्रतीत होना चाहिए कि यदि समाज में इस विज्ञान का दुरूपयोग होता रहा तो कुछ समय के पश्चात् वैदिकता में सूक्ष्मता आ जाएगी और कुछ समय के पश्चात् समानव समाज नास्तिकता में परिणाम हो जाएगा। यदि इस प्रकार का विज्ञान आता रहा तो आज का युवक समाज कहीं वार्त्ताएं, वेद की पोथी की चर्चाएं, यज्ञ, कर्म काण्ड की चर्चाएं होती हों ब्राह्मण जब स्वीकार कराते हों वहाँ तो मानव में आलस्य और प्रमाद आता है। परन्तु जहाँ यन्त्रों में नर्तकी नृत्य कर रही है, उनमें मानव मुग्ध हो रहा है। उनमें युवक समाज तल्लीन हो रहा है। हे मानव यह भोग विलास के साधन ! तेरे कितने काल तक चल सकते हैं? कुछ समय के पश्चात् तुम्हारा शरीर निर्जीव बन जाएगा। परन्तु उसमें नास्तिकवाद भी सूक्ष्म समय तक रहता है। आस्तिक होने का प्रयास करते हो परन्तु वह संस्कार तुमसे वह पटल दूरी चला जाता है। जैसे चित्र नहीं रहा वह चित्रण तुमसे दूरी चला जाता है इसी प्रकार जीवन का जो चित्रण है जीवन की जो एक धारा है, वह धारा उन रश्मियों में रमण करती हैं। वह रश्मि तुमसे दूर चली जाती हैं। कुछ समय के पश्चात् तुम व्याकुल होते हो और यह कहते हो हमने स्वीकार किया है कि हमने तो संसार में जीवन को यूं ही व्यर्थ कर दिया। उसमें व्यर्थता आ गई है।

तो परिणाम क्या? आज मैं यह उच्चारण करने अवश्य जा रहा हूँ। मानव समाज आज ! तुम्हें विज्ञान का सदुपयोग करना चाहिए। राजा को चाहिए, राष्ट्र को चाहिए। ब्राह्मण समाज को चाहिए कि वह राजा से कहे, हे राजा तेरे राष्ट्र में विज्ञान का सदुपयोग ! होना चाहिए। परन्तु आज जब मैं ब्राह्मणसमाज को दृष्टिपात करता हूँ क्या वे भी उसी आँगन में रमण कर रहे हैं। जिस आँगन में युवक समाज रमण कर रहा है। उसी

आँगन में वे भी रमण करने के लिए तत्पर हैं। परन्तु वह नियम और संयम दूर होता चला जा रहा है। मैं यह नहीं उच्चारण कर रहा हूँ कि सर्वत्र समाप्त हो गया है। परिणाम यह जो ब्राह्मण समाज है, राजा से कहे हे राजन्तेरे राष्ट्र में विद्रोह !, तेरे राष्ट्र में क्रान्ति आ जायगी। इस क्रान्ति को शान्त करने के लिए तुझे विज्ञान का सदुपयोग नहीं करना चाहिए, सदुपयोग करना चाहिए। उस सदुपयोग का परिणाम यह होगा कि विज्ञान सत्यता में रमण करता है।

विज्ञान तो प्रकृति गर्भ में है। विज्ञान तो प्रकृति का स्वभाव है। मानव का स्वभाव जानना है। परमात्मा का स्वभाव प्रकृति में ऋत और सत् देना है। यह तो प्रायः समाज चलता रहता है। परन्तु इस प्रकार की आभा ब्राह्मण समाज में होनी चाहिए।

जब मैं भक्ष्य और अभक्ष्य में जाता हूँ, आश्चर्य आता है चकित हो जाता हूँ। तो इस प्रकार आज मैं चकित होना नहीं चाहता हूँ। परन्तु देखो, यहाँ विज्ञान होना चाहिए। विज्ञान में सदैव महानता होनी चाहिए। आज हम उन वाक्यों में नहीं जाना चाहते हैं, जिन वाक्यों पर भिन्न भिन्न प्रकार की टिप्पणियां की जा सकती हैं। आज मैं माता से यह प्रार्थना किया करता हूँ, प्रार्थना करता रहता हूँ। हे मां तू पवित्र बन। हे माँ तेरा ! जब तू अपने गर्भ स्थल में !आहार पवित्र होना चाहिए। हे मां पुत्र का निर्माण, पुत्र का निर्माण तो प्रभुकरता है !, पालन ते करती है। माता जब तुम पालन करती हो उस समय भक्ष्य अभक्ष्य तुम्हारा पवित्र होना चाहिए। हे मां जो संस्कार तू अपने गर्भ ! स्थल में परणित कर देती है, वह संस्कार विद्यालयों में प्राप्त नहीं होते माता !ऐसा आयुर्वेद कहता है। ऐसा वेद का वचन कहता है। परन्तु यह विद्या केवल शब्दों में नहीं, यह विद्या तो वेदों में परणित होतीहै। यह विद्या तो अनुसन्धान वेत्ताओं से प्रतीत होती है। हे मांआज वह तेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला जो बालक है !, तू माँ है, लक्ष्मी है, मानो जितनी भी मेरी पुत्रियां हैं वे सब लक्ष्मी हैं कोई ब्रह्मचारी ऐसा गर्भ से उत्पन्न नहीं होना चाहिए जिससे माँ तेरे ही श्रृङ्गार को वह भ्रष्ट करने वाला बन जाए। क्योंकि माता को कुदृष्टिपात करने वाला मानव ही तो होता है और वह मानव उस काल में होता है जब मानव का सदुपयोग ऊँचा नहीं होता, उसका विचार ऊँचा नहीं होता, उसके द्वारा

संस्कार ऊँचे नहीं होते।

वह माँ भरण करने वाली है संस्कारों का। उन्हें विद्या प्रदान करने वाली है संस्कारों का। उन्हें विद्या प्रदान करने वाली है। जब माँ दूषित हो जाती है तो इस संसार को ऊँचा कौन बना सकता है? आदि ऋषियों ने कहा है कि माँ ऐसी होनी चाहिए, जो आयुर्वेद को जानने वाली हो। माँ ऐसी होनी चाहिए जो अपने पुत्रों (सोलह) को षोडश ! वर्ष की अवस्था तक ऊँची शिक्षा प्रदान करने वाली हो। उसके पश्चात् माँ हृदय को हृदयग्राही बना करके उज्ज्वल बना देती है। वह पवित्रता इस संसार में होनी चाहिए। मैं कोई अधिक चर्चा नहीं दूंगा आज मैं इतना उच्चारण करने आया हूँ कि विज्ञान तो होना चाहिए परन्तु विज्ञान का सदुपयोग होना चाहिए।

आज के समाज में आज के लोक लोकान्तरों का विज्ञान कितना महान् है कितना ऊर्ध्व है। सूर्य मण्डल का जो विज्ञान है मैंने कल के वाक्यों में कहा है इस पृथ्वी मण्डल के विज्ञान से एक सहस्र वर्ष आगे वहाँ का विज्ञान है। परन्तु देखो, मंगल का जो विज्ञान है वह इस पृथ्वी मण्डल के विज्ञान से सौ वर्ष आगे है। आज जब मैं यह पान करता हूँ हमारे यहाँ महर्षि जब कालक अप्रवे ध्रुव अस्तम्, ध्रुव मण्डल में पहुंचे तो नारद ने यह कहा कि ध्रुव मण्डल में तुमने क्या पाया? उन्होंने कहा प्रभु मुझे तो वहाँ जीवन ! प्राप्त होता है। मुझे तो वहाँ जीवन प्रतीत होता है। वहाँ तो योनियां रहती हैं। परन्तु इस प्रकार प्रत्येक लोक लोकान्तरों में जैसा वहाँ का वायु मण्डल है वहाँ भी चारों प्रकार की सृष्टि इसी प्रकार की है। परन्तु जैसा तत्त्व प्रदान होता है उसी तत्त्व का वहाँ खनिज खाद्य है उसी प्रकार का वहाँ प्राणी मात्र है। इसी प्रकार वहाँ उसी प्रकार का विज्ञान है। विज्ञान की मात्रा भी उसी प्रकार है। अनुसन्धान, अन्वेषण सर्वत्र होते रहते हैं। परन्तु वहाँ के वैज्ञानिक यन्त्रों में उस विज्ञान को दृष्टिपात करते हैं। इसी प्रकार क्योंकि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इस विज्ञान पर कुछ अनुसन्धान किया है। इसका विचार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अच्छी तरह इसका अन्वेषण करते रहते हैं। विचार विनिमय करते रहते हैं। परन्तु आज हम तो इतना उच्चारण कर सकते हैं कि आज हम उस विज्ञान

की रश्मियों को अच्छी प्रकार जानने का प्रयास करते रहें।

मंगल से आने वाला जो प्राणी है, मानो जो यान यन्त्र आए हैं उन यानों का वर्णन करने से मानव का निधन हो गया है, केवल वर्णन करने से मीमांसा करने से ऐसा नहीं प्रतीत होता। परन्तु यह वाक्य मुझे कुछ मिथ्या प्रतीत होता है। क्योंकि विज्ञान के युग में कोई ऐसा विश्लेषण नहीं आता। एक वाक्य आता है, जो इस विज्ञान का विश्लेषण करता है, ऐसा गुप्त विभाग प्रायः मंगल मण्डल से पुरातन काल में भी आता रहा है। और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने प्रकट किया है, कि महाभारत काल में जो अर्जुन जी थे वह उस समय चन्द्रमा में यानों के द्वारा गए और वहाँ विज्ञान को प्राप्त करने आए। इस प्रकार का प्रायः वैज्ञानिकों का लोकों में यातायात भी रहा है, परम्परा से रहा है आज भी बनने वाला है, बनता रहता है।

मैंने कल एक वाक्य कहा था कि संसार के इस ब्रह्माण्ड के वैज्ञानिकों का, सूर्य मण्डल का जो वैज्ञानिक लृतकेतु है और मंगल का जो श्वेत केतु है और जो बृहस्पति का जो रोहिणी केतु जो ये तीन वैज्ञानिक हैं इनका यह विचार है कि हम चन्द्रमा और सूर्य के मध्य में एक ऐसा स्थल बनाना चाहते हैं जिसमें ब्रह्माण्ड के वैज्ञानिक विराजमान हो करके उस पर कुछ विचार विनिमय कर सकें। संसार का वैज्ञानिक उसमें आता चला जाए। इस प्रकार का जो विज्ञान मानव के विचारों में आता रहता है संसार और ब्रह्माण्ड के विचारों में आता रहता है। परन्तु देखो, इससे मुझे ऐसा प्रतीत होता है वह विज्ञान सफल हो भी सकता है नहीं भी हो सकता। इसमें मैं आगे आने वाले समय के लिए कोई वाक्य प्रकट नहीं करूंगा। परन्तु इस प्रकार का वैज्ञानिकों का विचार है।

आधुनिक इस पृथ्वी मण्डल का जो वैज्ञानिक है वह तो यह विचार रहा है कि पृथ्वी मण्डल और जहाँ पृथ्वी की आकर्षण शक्ति समाप्त होती है, और चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति और पृथ्वी की आकर्षण शक्ति जहाँ दोनों की समान है, वहाँ एक स्थल बनाना चाहिए। वहाँ एक ऐसा स्थल बनाना चाहिए जिससे यहाँ का यान जाए और वहाँ कुछ समय तक विश्राम करके आगे यान रमण करने वाला बने। वैज्ञानिक यह विचार विनिमय

करता है।

परन्तु ब्रह्माण्ड का वैज्ञानिक यह विचारता है कि चन्द्रमा का ऊपरला जो कक्ष है और बृहस्पति के बराबर त्रिकोण वाला जो स्थल है और जहाँ मंगल की प्रतिक्रिया समाप्त प्रारम्भ होती है और सूर्य की प्रतिक्रिया बहुत निकट आ जाती है वहाँ एक स्थल बनना चाहिए। जहाँ संसार का ब्रह्माण्ड का वैज्ञानिक विराजमान हो करके विचार विनिमय करने वाला बने। तो इस प्रकार की विचारधारा ब्रह्माण्ड के वैज्ञानिकों की प्रायः चलती रहती है।

अब कोई मुझे यह उच्चारण करे कि आपने यह कैसे जाना? आपको यह कैसे अनुभव हो रहा है? मुझे अनुभव यह है कि जो सूर्य की रश्मियां हैं, वायु मण्डल है, वायु मण्डल में जो तरंगें हैं, उन तरंगों से हम अपनी यौगिकता से इसका अनुभव प्रायः करते रहते हैं। यौगिक जो जीवन है वह वैज्ञानिक जीवन से हजार वर्ष क्या लाखों वर्ष आगे रहता है, सदैव रहता चला आया है। एक मानव जो शब्दों को ग्रहण करता है वायु मण्डल में से, योगों उन शब्दों को चरता है, उनको चर लेता है। सूक्ष्म शरीर को जो जानता है। क्योंकि यह जोविज्ञान है यह सर्वत्र विज्ञान सूक्ष्म जो मात्रा है प्रकृति उसके अन्तर्गत भ्रमण करता है और योगी का जो विचार है सूक्ष्म शरीर से ऊर्ध्व गति जो कारण शरीर वाला जो लिंग है जब उसका तारतम्य, सूक्ष्म शरीर स्थल शरीर का तारतम्य योगी के लिए एक हो जाता है, उस समय वह सूर्य की रश्मियों से क्या, वायु की रश्मियों से क्या, इन पञ्च महाभौतिक जो अणुओं से भी सूक्ष्म कण हैं परमाणु हैं वह उसके निकट आ जाते हैं और योगी उनसे आगे आगे रहता है। योगी इस भौतिक विज्ञान से बहुत आगे रहता है।

सूर्य मण्डल का जो विज्ञान है वह इस पृथ्वी मण्डल से एक सहस्र गुणा आगे है। बृहस्पति का विज्ञान सूर्य मण्डल से एक सौ वर्ष आगे है और ध्रुव मण्डल का जो विज्ञान है वह बृहस्पति के विज्ञान से एक सहस्र वर्ष आगे है रमण करता रहता है और योगी का जो विज्ञान होता है उसकी जो यौगिकता है वह बृहस्पति के विज्ञान से एक लाख गुणा अधिक आगे ही आगे रमण करती रहती है। तो प्रायः योगियों का यौगिकता

में रमण करने वाला जो विचार है वह एक महत्ता में रमण करता रहता है। तो मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा नहीं प्रकट करूंगा। इसीलिए हमारे यहाँ योगीजन विज्ञान को जानते हुए भी प्रकट नहीं करते हैं। क्योंकि वे यह जानते हैं कि यह जो भौतिक विज्ञान है, यान्त्रिक विज्ञान है, इससे प्राणी को कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं होता। क्योंकि इसका दुरूपयोग होने लगता है तो विज्ञान भ्रष्ट हो जाता है और यदि इसका सदुपयोग होने लगता है तो सत्य में रमण करने लगता है प्रायः ऐसा है कि प्रकृति के विज्ञान में अहंभाव अधिक होता है इसीलिए सदैव इसका दुरूपयोग होता रहा है। अन्त में दुरूपयोग होता है और जब दुरूपयोग होता है तो समाज में रक्तभरी क्रान्तियां आ जाती हैं। क्योंकि जैसे रावण का काल, महाभारत का काल, विष्णु काल, देवासुर संग्राम प्रायः परम्परा से इस प्रकार का संग्राम होता रहा है। आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा नहीं करूंगा।

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से प्रार्थना किया करता हूँ। हे भगवन मैं तो यह उच्चारण ! करने जा रहा हूँ वैदिक जो साहित्य है, इसमें वेद का विज्ञान ही विज्ञान रहता है। यह विज्ञान का एक भंडार है, परन्तु देखो, कुछ रूढ़िवादियों ने इस वैदिकता पर बड़े भयंकर आक्रमण किए हैं। इस पृथ्वी मण्डल पर ऐसे भयंकर आक्रमण किए कि इसको अग्नि के मुखारविन्द में देना चाहा। परन्तु यह तो वैदिकता है। यह तो प्रभु की वाणी ! है। यह कैसे विनाश को प्राप्त हो सकती थी? इसका विकास तो प्रायः होता रहता है। जितना विज्ञान है। वैज्ञानिक है वह इसके ऊपर अनुसन्धान करें। इसी से विज्ञान की मात्राओं का जन्म होता है। ईश्वरीय जो ज्ञान है उसमें यौगिकता होती है और (अंशों) जहाँ यौगिकता होती है वहीं परमाणुवाद पर अनुसन्धान होता रहता है।

मुझे केवल यह विचार देना है कि संसार में प्रायः विचार ब्रधे आज प्रायः। मानव यह कह रहा है कि हम रुग्ण होते चले जा रहे हैं और आगे रुग्ण होते चले जाएंगे। परन्तु यह दोष सूर्य मण्डल का नहीं है। यह दोष यहाँ के प्राणी के भक्ष्य और अभक्ष्य का है। जो आगे दूषित होता चला जाएगा। रुग्ण होता चला जाएगा। क्योंकि आयुर्वेद में ऐसी ऐसी औषध है कि जो मानव को प्राण शक्ति प्रदान करती हैं। जिससे मानव जीवन में

विभोर हो जाता है।
परन्तु यहाँ नाना प्रकार का विचार मानव के विचारों में आता रहता है। वैज्ञानिक सदैव परम्परा से अनुसन्धान करते चले आए हैं। अनुसन्धान करते रहेंगे। धर्म एक रस रहता है, रूढ़ियों में भिन्नता रहती है। इसीलिए आज हम उस आँगन में जाना चाहते हैं जिस आँगन में परणित होने पर हमारी अन्तरात्मा को शान्ति हो, धर्म की रक्षा हो, यज्ञ की रक्षा हो। परन्तु आज का विज्ञान अनुसन्धान कर रहा है परमाणुओं का। यह जो दूषित प्राण वायु रमण कर रही है वायु मण्डल में विज्ञान यह कहता है कि आज से से 40 वर्ष के पश्चात् यहाँ प्राणी की सांस की गति भी मन्द हो जायगी। क्यों कह रहा 50 है? क्योंकि वह परमाणु मानव को प्राप्त नहीं हो रहे हैं, जिन परमाणुओं से वह परमाणु विनाश को प्राप्त हो जाए। एक एक परमाणु सहस्रों परमाणुओं को निगल जाए। ऐसा परमाणु यज्ञ के द्वारा यागों के द्वारा उत्पन्न होता है। इसीलिए प्रत्येक मानव को याग करने चाहिए। वेदों में यागों का बड़ा महत्व है। इसीलिए यज्ञ होने चाहिए। विचारों के याग, सुगन्धित के याग, पुष्टि याग, नाना प्रकार के याग होने चाहिए। इस प्रकार आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा। अहः मेरे पूज्यपाद कल यदि सूक्ष्म समय ! देंगे तो और विचार प्रकट करूंगा।
पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे महानन्द जी ने कुछ विज्ञान की !आज मेरे प्यारे !ऋषिवर ! चर्चाएं प्रकट कीं। कुछ ऐसी वार्त्ता थी जो कलकी वार्त्ता में पुनरुक्ति प्रविष्ट थोड़ी सी होती जा रही थी। कुछ ऐसे शब्द हैं, जिन शब्दों में एक महत्ता है। यह विचार तो हमारे यहाँ परम्परा में प्रायः होते रहे हैं। विचारों में जो महत्ता है इस विज्ञान का जो सदुपयोग है वह प्रायः होना ही चाहिए। क्योंकि विज्ञान का दुरूपयोग विज्ञान को ही निगल जाता है। इसीलिए हमें यह विचारना है कि हम वैदिक विचार को लेकर के चलें और वैदिक विचार में ये सर्व विद्याएं हैं। परमाणु विद्याएं हैं। परमाणु विद्या को लेकर आदि ब्रह्म ने यज्ञ का निर्माण किया। और उन यज्ञों के द्वारा मानव के विचारों को शुद्ध बनाने का प्रयास किया।
आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है। कल समय मिलेगा तो महानन्द जी के

विचारों पर टिप्पणी की जाएगी। अब यह विचार समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

१० 01 05 1973 पुष्प 24 महाराजा गणेश के वाहन का वैज्ञानिक वर्णन

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। प्रत्येक मानव वैज्ञानिक बनना चाहता है परन्तु ज्ञान में भी अपनी आभा अथवा प्रतिष्ठा चाहता रहता है। आज जब हम इन वाक्यों पर जाते हैं तो मानव का हृदय तो सर्वत्र वस्तु को चाहता रहता है परन्तु वह वस्तु मानव को किस प्रकार प्राप्त होती हैं इन वाक्यों पर हमें विचार विमर्श करना है। प्रत्येक मनुष्य अपनी उर्ध्व गति चाहता है। वह कैसे होती है? आज मैं योग की विवेचना तो नहीं करूंगा परन्तु यह उच्चारण करना है कि हमारे जीवन में मानवीयता का एक प्रार्दुभाव, एक संकलन है वह मानव के समीप होना चाहिए।

आज के हमारे वेद पाठ में आ रहा था तप हृदयश्य प्रभा तपं मातृस्थिति सुप्रजा बेटा ! वेद क्या कहता है? हेमाता तू तपाने वाली है, मम् वाचा मम् स्थिति अश्वेति माता बेटामाता तपाने वाली है और वह हमें ! तपाती रहती है, प्रेरणा देती रहती है, हम प्रेरणा को धारण करने वाले बनें। माता का शिशु है वह उसकी इन्द्रियों को तपाने का प्रयास करती है। माता नहीं चाहती कि मेरे पुत्र में सर्व गुण न हों। उसकी यह आकांक्षा होती है कि मेरे गर्भ से जिस पुत्र का जन्म हो अथवा पुत्री का हो वह महान हो जिससे मेरा जीवन भी ऊर्ध्व बने, परन्तु इसके लिए प्रत्येक मानव को तपस्या करनी है। माता जब तपस्या करती है तो ममतामयी ऐसी पवित्र बन जाती है कि तप में रमण करती हुई उसका तप उसके हृदय को उर्ध्वा बना देता है। मुझे स्मरण आता रहता है महर्षि शाकल्य मुनि की माता ने यह विचारा और अपने पति से कहा कि भगवन् मेरा हृदय ! यदि !कैसे प्रदीप्त हो सकता है। उस समय शाकल्य मुनि के पिता ने कहा हे देवी तुम अपने को प्रतिष्ठित चाहती हो तो अपनी मनोभावना को प्रतिष्ठित बनाने का प्रयास करो। ऋषि पत्नि ने तप किया। तो आज कावेद पाठ हमें तप के लिए घोषणा करता है। हे मानव तू तपस्वी बन। आज तुझे ऊर्ध्वा गति बनानी है तो तपस्वी बन। !

यज्ञशाला में विराजमान होने वाला यज्ञमान यह विचारता है कि मेरा जीवन सर्वोपरि

बन जाएं परन्तु तपाम् हृदयानि गच्छत अं प्रभे अस्ताः हे मानवतू अपने हृदय को ! तपा और आन्तरिक जोज्योति है उसको अपने साथ साथ करने का प्रयास कर। वह जो अन्तरात्मा में ज्योति है जिसके द्वारा तेरा शरीर जीवित है अथवा जिसको जीवन कहा जाता है चेतना बनी रहती है, यदि चेतना इस शरीर में नहीं होगी तो यह शरीर चेतनित नहीं बनेगा उस समय यह मृतक कहलाता है जैसा मैंने इससे पूर्व शब्दों में कहा है। मानव इस चेतना के संहारे ही चेतनित रहता है।

बेटा मुझे वह काल भलिभांति स्मरण आता रहता है जब यहाँ ऋषि मुनियों का समय ! था और अपना विचार विनिमय होता रहता था। आत्मा, परमात्मा की प्रतिभा में रमण करने वाला मानव अपने जीवन को सौभाग्यशाली स्वीकार करता है। जब हम उनकी सभा को दृष्टिपात करते हैं, उनके विचार, उनकी महती प्रतिभा को अपने में अनुकरण करने का प्रयास करते तो ऐसा प्रतीत होता था, ऐसा अनुभव करते रहते थे कि मानव को दार्शनिक बनना चाहिए और मानव के समीप मानव का दर्शन होना चाहिए।

बेटामानवीय दर्शन क्या है !? तप है। मानव को अपनी ऊर्ध्वा गति बनाना हो उसकी दार्शनिकता समझा है। दर्शन वह कहलाता है जिससे मानव में, प्राणीमात्र में, स्नेह की तरंगे ओत प्रोत हो जाती हैं, मानव त्याग और तपस्या में परणित हो जाता है। आज मैं अधिक विवेचना प्रकट करने नहीं आया हूँ केवल यह वाक्य प्रकट करनेआया हूँ कि हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते रहें और प्रभु की इस अमोघ आभा को जानते रहें जिस आभा में मानव सदैव आल्पावित रहता है अथवा विचार विनिमय में करने वाला आभा से लिप्त होता है।

मुनिवरों मुझे भगवान् राम !का साहित्य भी स्मरण आता रहता है, और भी नाना वार्त्तायें स्मरण आती रहती हैं परन्तु आज मेरे प्यारे महानन्द जी प्रेरित कर रहे हैं यज्ञम् ! भवति विश्वस्य प्रभा आज मैं यज्ञ की विवेचना नहीं कर रहा केवल यह कि संसार में मानव को यज्ञ करने चाहिए क्योंकि याज्ञों में रमण करने वाला प्राणी की अभिशाप नहीं होता और जो मानव याज्ञ में रमण नहीं करता उसका जीवन संसार में व्यर्थ होता है।

बेटा शिव याग किसे कहते हैं। हमारे वैदिक साहित्य में शिव के नाना प्रकार के !

प्रायवाची शब्द है जैसे शिव नाम राजा का, शिव नाम परमात्मा का, शिव नाम आत्मा को भी कहा जाता है। हमारे यहाँ, परम्परागतों में हिमालय की कन्दराओं में अथवा पर्वतराज का नाम भी शिव राज कहलाया गया है। बेटा मुझे उस काल का साहित्य ! स्मरण आता रहता है जब यहाँ शिव नाम के राजा जो पर्वतों की कन्दराओं में अस्त्रों शस्त्रों का निर्माण करते रहते थे। हमारे यहाँ शिव नाम परमात्मा को कहा जाता है, शिव नाम न्याय कर्त्ता, न्याय को देने वाला, उसका नाम शिव कहलाया जाता है। हमारे यहाँ शिवम् ब्रह्मे अपे प्रभा अस्वति लोका प्रभो ऐसा वेद का ऋषि कहता है कि शिव नाम संकल्प का है। जो मानव संकल्प धारण करता है उस मानव का जीवन महान बना करता है। जो मानव संसार में अनुष्ठान करने वाला होता है, व्रती होता है। उस मानव का जीवन विभोर हो जाता है। हमारे वहाँ व्रत्ती किसे कहा जाता है? व्रत्ती नाम है जो व्रत धारण करने वाला हो। व्रत वह धारण करता है जो संकल्पवादी हो अथवा जो तपा हुआ प्राणी होता है और व्रत उसे कहते हैं जो अपने कर्त्तव्यवाद का पालन करे। मानव की अपनी त्रुटियों को त्यागने का नाम व्रत कहलाया गया है। एक वैज्ञानिक यह व्रत करता है कि आज मैं अपने नाना प्रकार के यन्त्रों के द्वारा नाना परमाणुओं का संघात करता हुआ, नाना प्रकार के यन्त्रों में विराजमान हो करके वह लोकों की यात्रा करना चाहता है यह उसका व्रत है। एक मानव अपने मन में यह धारण करता है कि मैं अपने मिथ्या वाक्यों से इस वायुमण्डल को दूषित नहीं करूंगा तो वह मानव व्रत्ती कहलाता है, अनुष्ठानवादी कहलाता है। इन अनुष्ठानों से मानव का जीवन ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होता है।

हमारे यहाँ नाना प्रकार के ब्रह्मवेत्ताओं ने यह मनोनीत किया है कि आज अनुष्ठान करना है। महर्षि विश्वामित्र ने अनुष्ठान किया, गायत्री छन्दों में उन्होंने रमण किया, गायत्री ऋषि बने, कर्म वचन के द्वारा छन्द और गायत्री में रमण करने वाला ऋषि अन्त में ब्रह्मवेत्ता कहलाया। तो हे मानव तू व्रत्ती और अनुष्ठान करने वाला बन। अनुष्ठान करता ! हुआ प्रत्येक इन्द्रिय पर अनुशासन करने वाला और संयमी पुरुष होना चाहिए यही उसका व्रत और अनुष्ठान है। ऐसा अनुष्ठान करने वाला मानव शिव कहलाया जाता है,

मानव कहता है कि मैं अपनी शिवपुरी को ऊँचा बनाना चाहता हूँ जिसमें आत्म रूपी शिव रमण करता है। इस मानव शरीर को वह उत्तम बनाने का प्रयास करता है, शिव का संकल्प धारण करता है और वह जो संकल्पवादी प्राणी है वह अनुष्ठानवादी है, व्रत्ती है।

अभी अभी उच्चारण कर रहे थे कि शिव नाम राजा का है कौन से राजा का नाम शिव है? पर्वत राज को शिव कहा जाता है, जहाँ अनुष्ठान, अनुसन्धान, अनुवृत्ति, नाना प्रकार के वहाँ कार्य होते हैं। जब ऋषि मुनि हिमालय की कन्दराओं में रमण करने जाते तो माता पार्वती और शिव के दर्शन अवश्य करते और वहाँ अतिथि सत्कार की एक महानता थी। वहाँ पर्वतराज थे परन्तु विज्ञान उनके द्वारा उनका जन्म सिद्ध अधिकार था। वह शिव याज्ञ करते रहते थे। शिव याज्ञ का अभिप्राय शिव अस्त्रों का निर्माण करना, नाना प्रकार के मन्त्रों में रमण करना और उनको क्रिया में लाने का नाम मानो वह शिव याज्ञ करते रहते थे। अपने जीवन का राष्ट्रीयकरण करते हुए अपनी आभा को ऊँचा बनाते थे।

मुनिवरोंदेखो !, एक समय पर्वतराज शिव और पार्वती दोनों विराजमान थे। भ्रमण करते हुए देव ऋषि नारद मुनि आ पहुंचे। देव ऋषि नारद ने कहा महाराज मैं कुछ लोक ! कल्याण की चर्चा करना चाहता हूँ महाराजा शिव और पार्वती दोनों ने एक स्वर में कहा आओ ऋषिवर हम सबसे प्रथम कुछ पदार्थों का पान करें उसके पश्चात् कुछ चर्चा मैं इस लोक का !करें। अतिथि सत्कार होने के पश्चात् नारद जी ने कहा महाराज कल्याण चाहता हूँ, मुझे कोई ऐसी युक्ति दीजिए जिससे आपके अमृत उपदेश को पान करते हुए प्राणोमात्र में एक महानता की उत्पत्ति हो जाएं। उस समय उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर। नारद तुम्हारी केवल यही इच्छा है। उन्होंने कहा हां, भगवन् मैं इस ! लोक को ऊँचा बनाना चाहता हूँ। उन्होंने नारद से कहा कि हे नारद यह जो संसार ! परम्पराओं से चल रहा है इसकी ऊर्ध्वा और ध्रुवगति होती रहती है परन्तु जहाँ तुम लोक का कल्याण चाहते हो वहाँ मेरी भी मनोनीत यह इच्छा रहती है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि रजोगुण और तमोगुण संसार में व्याप रहे हैं यह शरीर जिसका

निर्ाण हुआ है इसमें कोई न कोई त्रुटि अवश्य होती है इसलिए आज हम लोक का कल्याण चाहते हैं, करना चाहिए यह कोई अशुद्ध वाक्य नहीं। मेरे विचार में तो आता है कि यह संसार ऊर्ध्वा गति को जाता रहेगा परन्तु ध्रुवा गति में भी रमण कर सकता है। जहाँ देवता होते हैं वहाँ दैत्य भी होते हैं इसलिए आज तुम देवताओं का अनुकरण करते चले जाओ और देवताओं का उपदेश देते चले जाओ जिससे यह समाज ऊँचा बन जाएं।

नारद ने कहा कि महाराजइन वाक्यों से मेरी संतुष्टी नहीं हुई !, मैं लोक के प्राणियों का कल्याण कैसे कर सकता हूँ। उस समय महाराजा शिव ने कहा कि नारद आज ! तुम संसार को ऊर्ध्वा में चाहते हो तो तुम स्वयं ऊर्ध्वा में बन जाओ। नारद मुनि ने कहा कि यह भी यथार्थ है परन्तु मैं स्वयं ऊर्ध्वा में बन जाऊंगा तो लोक के लिए क्या क्रिया होनी चाहिए। महाराजा शिव ने कहा कि वेद कहता है मनो वक्व्तत् त प्रभे, आस्वातम् लोकां ब्रह्मे व्यापक त प्रभे उन्होंने कहा कि जो मानव अपनी इस महान मनोनीत भावना को ऊँचा बना लेता है अथवा पवित्र बना लेता है तो यह संसार पवित्र ही पवित्र दृष्टिपात आता है और जब यह संसार पवित्रता में दृष्टिपात आता है तो उस समय मानो जब इस संसार का और अपनापन दोनों का समन्वय हो जाता है तो कोई संसार में त्रुटियुक्त प्राणी प्रतीत नहीं होता।

बेटा जब महाराजा शिव और पार्वती ने यह कहा तो नारद मुनि मौन हो गएं कहा ! धन्य है। शिव ने कहा, जाओ तुम लोक का कल्याण चाहते हो तो लोक के प्राणियों से कहा कि तुम अनुष्ठान करने वाले बने। अनुष्ठान करने वाला जो व्यक्ति है उसका जीवन ह्रासता में प्राप्त नहीं होता और उसकी मृत्यु भी नहीं होती। आज जो मानव अपने में यह निश्चित कर लेता है कि मुझे ब्रह्म को प्राप्त करना है, मुझे ब्रह्म की आभा को जानना है और ब्रह्म के द्वार पर जाना है तो बेटा उस प्राणी को मृत्यु भी नहीं होती। मृत्यु से ! बचने का प्रयास करते रहते हैं कि मृत्यु हमारी नहीं आनी चाहिए।

हमारा वेद का ऋषि कहता है मृत्यु कोई नहीं है, मृत्यु का अपना कोई अस्तित्व नहीं है, यह मृत्यु शब्द तो अज्ञान में परणित रहता है। आज मैं मृत्यु के ऊपर अपना विचार

विनिमय देने नहीं आया। महाराजा शिव से नारद ने कहा महाराज यह वाक्य तो ! मैं !आप देश में भ्रमण करो। उन्होंने कहा कि हे नारद !तथार्थ है। हे पर्वत राज भ्रमण नहीं करूंगा क्योंकि मैंने स ंसार को बहुत निकट से दृष्टिपात किया है परन्तु आज मैं उस पर्वत की शृंखला में इन मालाओं को धारण करना चाहता हूँ मानो इनके द्वारा जो शुद्धता और पवित्रता रमण कर रही है उस वायु को, महानता को मैं पान करना चाहता हूँ, मैं लोक में भ्रमण करना नहीं चाहता। नारद जी मौन हो गएं और कहा प्रभु जैसे आपकी इच्छा। !

तो मेरे प्यारे उस राजा का नाम शिव है जिसकी मनोभावना इतनी ऊँची हो जैसे ! कैलाश पर्वत। राष्ट्र में चलकर उसकी राष्ट्र भावना भी इतनी ऊँची हो, लोक प्रिय हो। शिव नाम परमात्मा का है जो न्यायाधीश बना हुआ है, न्याय देने वाला है, मानो हृदय में न्याय कर देता है, उस महान देव को हमारे यहाँ शिव कहा जाता है। आज हम शिव की उपासना करते चले जाएं, उसकी महान आकृतियों को जानते चले जाएं, उसके पश्चात् हमारा मानवीय जीवन विभोर हो जाता है अथवा पवित्रता में रमण करने लगता है।

आज विचारना है कि महाराजा शिव के जो पुत्र थे उनमें से एक का नाम कार्तिकेय ! महानन्द जी ने एक समय मुझे महाराजा गणेश !था। एक का नाम ध्रुव था। मेरे प्यारे जी की चर्चायें प्रकट कराईं मानो गजराज का जो मुखाविन्द है वह उनका शिरराज और जो उनका उदर है वह प्रबलता में दृष्टिपात होता है। उनक ा जो वाहन है विशाची है, उस वाहन में विराजमान हो करके भ्रमण करते। यह वाक्य तो बड़ा सुन्दर है, यहाँ गणेश कहते हैं प्रारम्भ को और प्रारम्भ में केवल एक प्रभु रहता है इसलिए उसका पूजन होता है। जब भी कोई पूजा होती है तो उस समय महाराजा शिव का पूजन शिव नाम उस गणपति का है जिसका पूजन होता है। गणेश जी के पूजन का अभिप्राय क्या है? वह क्यों होता है? इसका अभिप्राय यह है गुणों गणों अस्ति, गणोंम्यों नमः अस्तगति नमः वेद में आता है गणेम्यो नमः परन्तु देखो, जो गणपति है वह प्रभु है जो चैतन्य है, जो प्रारम्भ में था जब यह संसार शून्य गति में रहता था तो उस समय यह प्रभु ही था।

जिसको गणपति कहते हैं। उसका उदर कैसा है मानो उसका मस्तिष्क ऐसा जैसा गजराज का ऊर्ध्वा गति में रहने वाला। बेटाजिसका मस्तिष्क इतना गम्भीर हो !, इतना सम्महारित हो जैसे गजराज का मस्तिष्क होता है, ऊर्ध्वा गति वाला, इसी प्रकार मस्तिष्क शान्त और ऊर्ध्वा गति होनी चाहिए। वह जो ऊर्ध्वागति है वह मानव को गणपति कहला देती है, गजराज के तुल्य उसका मस्तिष्क बन जाता है।

मुनिवरोंदेखो !, उनका जो वाहन है वह पिशाची कहलाता है परन्तु हमारे यहाँ ऐसी अनुभूति है कि देखो, पशु जो चूहा है, ध्ररुणी है, आस्वति है इसके कई प्रायवाची शब्द आते हैं परन्तु वाहन बन जाएं असम्भव है परन्तु उनका जो वाहन था वह क्या था? वेद का ऋषि कहता है कि वह जो गणपति का वाहन है जिसको हम मुखारित कहते हैं वह इसका वाहन क्यों है? मेरे प्यारेवह एक पशु है !, बिल में रहने वाला आस्वति कहलाता है परन्तु ऐसा नहीं यहाँ वेद का ऋषि कहता है ज्ञाती ब्रह्मा स्वाति लत्वं प्रभे आस्वति लोको अमृतं ब्रह्म ज्ञाता कि वह इसका वाहन नहीं है। महाराजा शिव ने मुषक नाम का वाहन का निर्माण किया और निर्माण तपस्या के पश्चात् किया, परमाणुवाद को एकत्रित करके एक मूषक नाम का वाहन निर्माण किया। मूषक उस वाहन को कहते हैं जिस वाहन में विराजमान हो करके एक क्षण समय में पृथ्वी की परिक्रमा करने वाला हो।

मेरे प्यारे ने यहाँ गणपति की विवेचना की कि गणपति नाम प्रभु का है और !ऋषिवर ! गणेश जी नाम उनके पुत्र का भी था इसमें मेरे कोई दो मत नहीं हैं परन्तु यहाँ यह भिन्न भिन्न प्रकार की विवेचना में दृष्टिपात होता है मानो इनका जो उदर है जो प्रभु का गणेश जी का अथवा गणपति का उदर है वह इतना ऊर्ध्वा है कि सर्वत्र संसार उसी प्रभु के गर्भ में वास करता है, उसी के गर्भ में रमण करता है तो यह गणपति की विवेचना है कि प्रभु के गर्भ में रहने वाला, उस प्रभु का उदर बहुत ही व्यापक है। तो विचार क्या कि उसका उदर भी प्रबल था और उदर का अभिप्राय यह कि जिसमें संसार का ज्ञान और विज्ञान यह सब समाहित होता हो तो उसका उदर प्रायः ऊर्ध्वा होता है, विशाल होता है। उदर का अभिप्राय केवल यह त्वचा ही नहीं मानी गई है। उदर का

अभिप्राय है कि मानव में ज्ञान होना चाहिए। तो मानव कहता है यह पंडित कितना ज्ञानी है, इसके उदर में कितना ज्ञान है, कितना प्रबल है। विचार यह कि हमारा उदर इतना ऊँचा हो, इतना महान हो कि हमारे उदर में किसी प्रकार की हानि न हो और हम अपने उदर को ज्ञान और विज्ञान में भ्रमण करने वाल हों। ज्ञान विज्ञान हमारा ऊर्ध्वा होना चाहिए। ज्ञान विज्ञान को पान करने वाला प्राणी इस संसार सागर से पार हो जाता है। गणेश जी वैज्ञानिक थे। उनकी लेखनी ऐसी चला करती थी जैसे एक मानव से मुखारविन्द से शब्द उच्चारण हुआ और उच्चारण होते ही, कितना ही गति से रमण करने वाला शब्दों का हो उसी से उनकी लेखनी बध होती रहती है। मुझे स्मरण है जिस समय व्यास मुनि अपनी महाभारत की लेखनी प्रारम्भ करने लगे तो उन्होंने महाराजा कृपाचार्य से कहा कि यदि गणेश जी मेरे द्वारा हों तो मैं कौरवों और पाण्डव के इतिहास को अंकित कर सकता हूँ। मुझे स्मरण है गणेश जी को पर्वतराज के यहाँ से लाया गया और इतनी सुन्दर उनकी लेखनी चला करती थी कि व्यास जी उच्चारण करते रहते थे और वह लेखनी बद्ध होती रहती। सर्वत्र महाभारत के साहित्य को उन्होंने एक रात्री और एक दिवस में लेखनी बद्ध कर दिया था। उनकी लेखनी कितनी महान थी। जिसकी लेखनी तीव्र होती है, जो लेखनी दोनों प्रकार की लेखनियों से ऐसा ऋषि कहते हैं मस्तिकाम् भिखस्तम् मध्यायं मनो व्रतानि शिष्टानि गच्छन्ते जब इस मानव के सौ मस्तिष्क होते हैं उसका तीसरे नेत्र में भी प्रकाश होता है। यह कैसा सुन्दर वाक्य है। गणेश जी के मानो दो मस्तिष्क माने जाते हैं एक गजराज केतु और एक देववत जो लक्ष्मी के समीप विराजमान है। यह ऐसा क्यों? ऐसा वेद का आचार्य कहता है कि जिसका मस्तिष्क शान्त होता है, ऊर्ध्वा में होता है, उदर की जिज्ञासा परिपक्व होती है लक्ष्मी उसके चरणों में प्रायः ओत प्रोत हो ही जाती है।

मुनिवरों विचार विनिमय यह है कि आज हमें अपने मानव जीवन को कितना ऊर्ध्व ! बनाना चाहिए। महाराजा जी जो हैं वह महाराजा पर्वतराज शिव के पुत्र कहलाए जाते हैं और यह गणेश जी की परम्परागतों से उपाधि भी चली आ रही है। आज इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना देना नहीं चाहता। विचार यह कि शिव नाम हमारे यहाँ परमात्मा को

कहते हैं और गणपति नाम भी परमात्मा का है। क्योंकि प्रारम्भ में परमात्मा था, परमात्मा की चेतना में यह जगत चेतनित हो रहा है, इससे यह प्रतीत होता है कि आज हम अपने मानव जीवन को इतना महान बनाएं, इतना ऊर्ध्वा में बनाएं कि हम अपने जीवन को जान लें कि हमारा जीवन है क्या? इस मानव शरीर में बहतर करोड़ बहतर लाख दस हजार दो सौ नाड़ियां कहलाती है। ब्रह्मरन्ध्र में ऐसी सूक्ष्म वाहक नाड़ियां होती हैं जिनका सम्बन्ध नाना लोक लोकान्तर से होता है। हम अपने मानव शरीर को तप के द्वारा जाने और ऊर्ध्व गति बनाने का प्रयास करें।

आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा है कि प्रत्येक मानव संसार में अपने को ऊर्ध्व बनाना चाहता है। प्रत्येक मानव वैज्ञानिक बनना चाहता है, प्रत्येक ज्ञान में रमण करना चाहता है। बेटा मैं कोई व्याख्याता तो नहीं हूँ मैं तो केवल संक्षिप्त परिचय देने ! आया हूँ और वाक्य उच्चारण करना कि आज हम अपने मानव जीवन को ऊर्ध्वा बनाएं और ज्ञान और विज्ञान में रमण करते रहेंऔर अपने देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस स ंसार सागर से पार होते चले जाएं।

मेरे प्यारेमहाराजा शिव और पार्वती दोनों विराजमान हो करके याज्ञ करते !, सुयाज्ञ करते थे सुयाज्ञ का अभिप्राय यह कि अपनी प्रवृत्तियों को सुन्दर बनाने का नाम सु याज्ञ कहलाया गया है। पति पत्नि का कितना सुन्दर विचार, कितनी सुन्दर उनकी आभा रहती थी। मुझे स्मरण है कि जब भी कोई ऋषि उनके आश्रम में जाता तो पति पत्नि का एक आध्यात्मिक विवेचना चलता रहता, दोनों में शास्त्रार्थ होता दृष्टिपात होता था। वह गृह कितना सौभाग्यशाली होते हैं जिन गृहों में पति पत्नि दर्शनों पर विचार विनिमय करने वाले हों, वह गृह तो स्वर्ग हैं। वह तो हिमालय की कन्दराओं जैसे स्वर्ग हैं। जब भी कभी कोई उनके द्वारा जाता तभी वह आत्मा परमात्मा की चर्चायें, लोक लोकान्तरों की चर्चायें, परमाणुवाद की चर्चायें, लोक कल्याण की चर्चायें होती रहतीं। वह पति पत्नि कितने अपने को सौभाग्यशाली स्वीकार कर सकते हैं जिनके यहाँ उत्तमता का प्रसारण होता हो और उनकी मनोनीत भावना सदैव आत्म कल्याण की ही चर्चा होती है। आज मैं अधिक चर्चा देने नहीं आया हूँ, मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ केवल संक्षिप्त परिचय देने

का अभिप्राय कि हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते हुए हमारे शिव नाम के याज्ञ होने चाहिए। जहाँ हम शाकल्य की सुगन्धि देते हैं वहाँ विचार की भी सुगन्धि होनी चाहिए, वहाँ मानव को अपनी व्यापकता की सुगन्धि भी होनी चाहिए।
आज के विचार देने का अभ्रिपाय यह है कि हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं और अपने देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम अपने मनोनीत मानवीयतव को ऊँचा बनायें, वैज्ञानिक बनायें, लोक लोकान्तरों में जाने वाला बनायें। आज का वाक् समाप्त अब समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट करूंगा। अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त। कल समय मिलेगा तो मैं याज्ञ के सम्बन्ध में विवेचना करूंगा और गणेश जी की चर्चायें भी और अच्छी प्रकार करूंगा। ब्रह्मपुरी मेरठ

११ 03 05 1973 पुष्प 23 यज्ञमान को आशीर्वाद

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, आज हमने इन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, जैसा मेरे प्यारेमहानन्द जी ने मुझे प्रायः प्रेरणा दी। उसी प्रेरणा के आधार पर !, आज का हमारा वेदों का पठन पाठन प्रारम्भ था। आज हम उस वेद की आभा को विचार विनिमय करने वाले बनें, जिस मेरे देव ने, यह संसार रचावह कितना महान वैज्ञानिक है ,, उसी के विज्ञान में सर्वत्र ब्रह्माण्ड नृत्त कर रहा है। क्या आज हम उस ब्रह्माण्ड को अपने में धारण करते चले जाएं, जिस ब्रह्माण्ड की कल्पना, हमारा वेद का ऋषि कर रहा है, परन्तु इस ब्रह्माण्ड को हम अपने में कैसे धारण करेंगे? वेद का ऋषि तो यह कहता है कि ब्रह्माण्ड को अपने में धारण करो परन्तु इस ब्रह्माण्ड को कैसे धारण , किया जाएगा? यह एक विचार विनिमय है, परन्तु जब हम ब्रह्माण्ड के ऊपर अपनी कल्पना करना प्रारम्भ कर देते है। अथवा ब्रह्माण्ड को जानने को जब हम अपने में बृक्रीत करते हैं तो विचार आता है, कि हम ब्रह्माण्ड को अपने में धारण उस समय कर सकते हैं जब कि हमारा जीवन एक संयम होता चला जाएगा, क्योंकि जीवन का जब संयमी जीवन बन जाता है, इन्द्रियों का निध्यासन हो जाता है, तो हम ब्रह्माण्ड को

अपने में धारण करने वाले बन जाते हैं !आज का वेद का ऋषि कह रहा है हे यज्ञमान , तू अपने ओज को प्रबल बना !यजूंषि गता वृद्यं ब्रह्मे यज्ञाग्नि् यज्ञमाना हे यज्ञमान, तू इतना ओजस्वी बन, क्या तेरी ज्ञानेन्द्रियाँ कर्मेन्द्रियाँ बलिष्ठता को प्राप्त होती चली , होता रहे। ऐसा वेद का वचन कह रहा है, हम यज्ञमाना प्रव्हे व्रत्यं ब्रह्मा हे यज्ञमान ! तू अपनेपन में अभिमानी न बन क्योंकि यह जो अभिमान है, यह यज्ञमान के पुण्यों को क्षीण कर देता है परन्तु उससे नम्रता से प्रायः मानव को द्रव्य का अभिमान हो जाता है। परन्तु यह अभिमान नहीं होना चाहिए, क्योंकि यह द्रव्य तो किसी का होता ही नही द्रव्य तो प्रभु का ही एक पदार्थ है, अथवा प्रभु की आभा है ये और मानव अपने अपने द्रव्य की आभा को धारण करता रहता हैऔर धारण करता हुआ अपने ज ,ीवन को संचालन करने लगता है। परन्तु मानव जीवन का संचालन होने के लिए, यह संसार की सम्पदा होती है। परन्तु यह सम्पदा बेटादेवताओं की भी है !, यह सम्पदा जड़ और चैतन्य दोनों की मानी जाती हैऔर अपने कार्य वाहक के लिए भी सम्पदा होती है ,, परन्तु उस सम्पदा का जो मानव दुरूपयोग करना प्रारम्भ कर देता है, उस मानव के पुण्य समाप्त होने लगते हैंशनै शनै वह जो द्रव्य है ,, जो लक्ष्मी है माता है वह उस मानव को स्वयं निगल जाती है उस मानव को स्वयं निगल जाती है क्योंकि वह , मानव को पुण्यवान भी बनाती है, यह मानव को मुनिवरोंदेखो !, वह नारकिक भी बना देती है। तो हमें नारकिक नहीं बनना है संसार में, और यह द्रव्य ब्रह्माण्ड स्वस्ति रुद्रा, हमें व्रती बन करके अपने कार्य को ऊर्ध्वा बनाना है। परन्तु आज मैं अधिक विवेचना नहीं दूँगा, आज मेरे प्यारे महानन्द जी भी अपना कुछ सूक्ष्म परिचय दे ! सकेंगे।परन्तु आज तो केवल हमारा विचार विनिमय यह, कि वेद का पठन पाठन, यज्ञमान के लिए प्रेरणा और अध्वर्यु के लिए आश्वासन उद्गाता के लिए उदगान और मुनिवरोंदेखो !, यहाँ ब्रह्मा के लिए आभायित करते हैं भिन्न भिन्न प्रकार की विचारघारा , जैसा वेद ने कहा है उद्गाता से कहा हे उद्गाता तू उदगान गाता रह क्योंकि तूझे उद्गाता ! तू उद्गम है ,कहते हैं, तू अपने हृदय से गाने वाला है। जो मानव उदगान गाता है ,

उसके हृदय को देवताजन छुआ करते हैं परन्तु गान गाना !हृदय से गाता है बेटा चाहिए।

गान के साथ में उदगान होना चाहिए, उद्गान का अभिप्रायः है जो ऊर्ध्वा बनाने वाला है। उदगान का अभिप्रायः यह कि उदं ब्रह्म पवित्र प्रव्हा जो उदगान गाता है यज्ञशाला में, उद्गाता का अपना महत्व होता हैजैसे प्रातः काल में सूर्य उदगान गा रहा है ,, प्रातः काल में सूर्य उदगान गा रहा हैअपने सुन्दर प्रकाश के द्वारा। ऐस ,ा गान जहाँ उसकी वृत्ति जाती है जहाँ सूर्य का हृदय जाता है वहीं प्रकाशमान होता चला जाता है यह जगत अन्धकर से प्रकाश में चला जाता है तो गायन उसे कहते हैं, उदगान उसे कहते हैं जो अपनी अन्तरात्मा से अपने को प्रकाश में ला करके दूसरों को प्रकाश में लाने का प्रयास करता है। उसकी वाणी, उसका ओज, उसका तेज, प्रायः देखो, उसके वाक्यों की प्रतिभा जहाँ जहाँ जाती रहती है, वहीं मानव प्रकाशमान होता चला जाता है। बेटा ! मैं अधिक विवेचना नहीं देने आया हूँ, विचार यह नही कि आज का वेद का वाक् उद्गाता के लिए उदगान गाने के लिए कह रहा है।

मुनिवरोंदेखो !, अध्वर्यु अभिवाचा अभप्रवे अप्रतानं अप्रतां अध्वर्यु नाम पृथ्वी को कहा गया है, अध्वर्यु नाम सोम को कहा गया है चन्द्रमा को भी, अध्वर्यु कहते हैं, परन्तु वह कैसा अध्वर्यु है? उसके द्वारा संसार की सम्पदा है वह संसार की सम्पदा को याग , में परणित करना चाहता है, संसार की सर्वत्र समपदा को याग में परणित करना चाहता है और वह याग में कैसे परणित करना चाहता है मुनिवरोंदेखो !, वह जो उद्गप्रव्हे अध्वर्यु है वह अपनी सर्वत्र सम्पदा को देना चाहता है और देता किसे है? देवताओं को अर्पित करना चाहता है। वह कहता है इदन्न मम् अस्वति यह मेरा नहीं है, यह सर्वत्र देवताओं की पूजा के लिए मेरे द्वार पर आया है, मुझे देवताओं की पूजा करनी है। मुझे अपने अन्तरात्मा में आत्मा की पूजा करनी है, बाह्य जगत में बुद्धिमानों का पूजन करना है। ऊर्ध्वा गति में मुझे देवताओं का मुझे पूजन करना है। पूजन का अभिप्रायः? यथाशक्ति सदुपयोग करना है। जैसे आज हम सूर्य की उपासना करना चाहते हैं, तो सूर्य से हम नाना प्रकार की वस्तुओं को ग्रहण करते हैं हम सूर्य की नाना ,

प्रकार की किरणों के द्वारा हम मानो चिकित्सा भी करने लगते हैं। उन किरणों को यन्त्र में परणित करके यानों का निर्माण भी करते हैं। उसी मानो देखो, उन्हीं किरणों के द्वारा, हम अपनी बुद्धियों को सुमति के मार्ग पर ले जाते हैं। परन्तु देखो, वह जो सूर्य की आभा है वह सदैव मानव को प्रकाश में में ले जाने वाली है। परन्तु वह जो द्रव्य है मेरे द्वारा, वह मैं देवताओं को अर्पित करना चाहता हैं। इसका सदुपयोग मानो बुद्धिमान मेरे द्वार पर आते हैं, और वह मुझे ऊँची ऊर्ध्वा में शिक्षा प्रदान करते हैं तो मैं उनका पूजन करना चाहता हूँ, मैं उनकी पूजा करना चाहता हूँ पूजा का तात्पर्य , पूजा का अभिप्रायः कि हम वास्तविक रूप को धारण करते हैं बुद्धिमानों को हम अपने लिए उनके विचारों को धारण करके हम स्वयं अपने को क्रियात्मक बनाते चले जाएं, वह उनकी पूजा कहलाती है। तो पूजा का अभिप्रायः क्या है, कि हम अपनेपन में मानो याग करना चाहते हैं। एक यज्ञमान याग कर रहा है, परन्तु वह याग करता हुआ अपने संकल्प को धारण कर रहा है। वह जो उसका संकल्प है देवताओं को हवि दे रहा है , तो वह द्रव्य का सदुपयोग कर रहा है। तू द्रव्य का सदुपयोग करता हुआ तू देखो, हे होता जनोंआओ !, तुम अपनी नाना प्रकार की त्रुटियों को त्यागने का प्रयास करो। तुम होता हो, होता कहते हैं जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है, सृष्टि के प्रारम्भ के समय में जब प्रभु सृष्टि को रचता है तो मानो देखो, यह जो पांच होता है, होता बन करके आहुति दे रहें हैंकौन से होता है ,? बेटादेखो !, यह पञ्च होता कहलाए जाते है पञ्च होता कौन से है? सबसे प्रथम मानो देखो, पृथ्वी है, उसके पश्चात जल है, अग्नि है, वायु है, अन्तरिक्ष है इनके द्वारा यह संसार का होताजनों का याग चल रहा है , क्योंकि इन्ही के द्वारा याग का प्रारम्भ होता है और इन्ही का अस्तित्व ने होने के बेटा यह याग समाप्त हो जाता है जिसको सृष्टि याग कहते हैं तो परिणाम यह कि ! आज हम मानो इन यागों को करने वाले बनें, कैसा याग है हमारा? कि हम पञ्च महाभूतों उनके ऊपर हमारा अनुसन्धान होना चाहिए, वैज्ञानिक जब अनुसन्धान करते है, तो यानों का निर्माण करते हैं। मानो देखो, जब इनके ऊपर गम्भीरता से अध्ययन

करता है तो और भी ऊर्ध्वा गति में मानव की प्रतिभा चली जाती है। तो मुनिवरों ! देखो, अभिप्रायः यह है हमारा, कि हम याग करने वाले बनें, हम मानो देखो, कैसा याग है हमारा हम होताओं को, हे होताजनोंतुम होता बन ,आओ ! करके इस संसार को स्वर्ग बना दो, मानो देखो, वह होतागण है। मेरे प्यारे इसी प्रकार मानव के इस ! मानवीय शरीर में यज्ञ स्वरूप में, उसमें मुनिवरोंदेखो !, दस होता कहलाए जाते हैं ग्यारह होता भी माने हैं किन्ही आचार्यों ने परन्तु ग्यारह ही स्वीकार करो पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन कहलाया जाता है। परन्तु प्रत्येक इन्द्रिय को संयम में करते हुए मन को सहकारिता बना करके जब हम अपने शरीर रूपी योगाभ्यास के द्वारा याग करते हैं यह पञ्च महाभातिक विज्ञान है पञ्च महाभूतों का बना !तो बेटा , हुआ जो जगत है वह योगी को साक्षात्कार हो जाता है। उस याज्ञिक पुरूष के द्वारा , वह परणित हो जाता है।

तो परिणाम ये कि आज हम मुनिवरोंयाग की प्रक्रिया को जानने का प्रयास करें !, हमारे द्वारा कर्म काण्ड होना चाहिए। हे होताजनोंआओ !, तुम आहुति दो, हूत करों परन्तु देखो, उस आहुति के द्वारा तुम्हारा जीवन संचालित होता है, तुम्हारे जीवन में एक आभा का प्रादुर्भाव होता है, जिस आभा से मानव आभायुक्त बन जाता है। तो मेरे प्यारे !हम याज्ञिक बनना चाहते है बेटा ,आज हम आभायुक्त बनना चाहते हैं !ऋषिवर ! कैसा याग जब पति पत्नी विराजमान हो करके याग करते हैं तो ऋषि मुनि उनके , यागों को श्रवण करते हैं। मुझे स्मरण है जब माता अनुसूया और अत्रि मुनि महाराज विचारों को मुनिजन आ करके शान्त हो करके मुनिजन श्रवण करते थें तो मुनिवरों! देखो, उनका विचार इतना गम्य होता था, इतना महान होता कि उस आसन का वातावरण भी पवित्र होता था। हमारे ऋषि मुनियों ने पुरातन काल में मैंने बहुत पुरातन काल में कहा कि हमारे यहाँ जो माताएं होती हैं, उनका प्रत्येक अंग याग युक्त माना गया है वह तो एक याग है परन्तु देखो, मध्य में प्रहा स्वस्ति रूद्रों मैं वाक् यह नहीं प्रगट करने आया हूँ विचारों से कि हमारे जीवन का प्रत्येक अंग यागरूप है। इसमें

दुरूपयोग करना हम किसी भी वस्तु का दुरूपयोग करते हैं तो वह हमें ही हानिकारक हो जाता है। मुनिवरोंहमें ही ध्रुवा गति में ले जात !ा है। ऊर्ध्वा गति हमारी समाप्त हो जाती है। अब मैं अधिक विवेचना तो दूंगा नहीं क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी वाक् ! प्रगट करेंगे आज का विचार विनिमय यह, कि हम याग युक्त बनें हम मानो याग में , मेखला के ऊपर अपना विचार देते चले जाएं, मेखलावादी याग होने चाहिएं, जब हम यज्ञशाला बनाते है यज्ञशाला का निर्माण करते हैं। जैसे सृष्टि का निर्माण चैतन्य देव करता है, इसी प्रकार मानो एक शिल्पकार एक यज्ञशाला का निर्माण करता है उसमें एक मेखला बनाता है ब्रह्मा कहता है मेखला वाचा प्रभु अस्तो, हे मेखलावादी ब्रह्मा ! कहता है तू मेखला का निर्माण कर, मानो देखो, मेखला के साथ में मानो देखो, पूर्वा, दक्षिणा, और प्राची दिक् और मुनिवरोंदेखो !, उत्तरायण सति यह मानो चारों दिशाओं में मेखला का निर्माण होता है। तो हमारे जीवन में भी इसी प्रकार की मेखला बनती है और वह कैसी मेखला हैहमारे द्वारा मान ,ो देखो, समाज से हमारा जीवन कटिबद्ध है, एक मेखला तो समाज की मेखला है, और द्वितीय मेखला, जिन्होने उत्पन्न किया है हमारे माता पिता और आचार्यजन एक वह मेखला कहलाती है। तृतीय मेखला , प्रारम्भिक संस्कार हैं और चतुर्थ जो मेखला परमात्मा के आँगन की चेतना है, जो हमें परिक्रमा के लिए प्रेरणा करती है। तो परिणाम यह है कि हम सबसे प्रथम यह विचारें कि मानो देखो, जो पूर्व दिशा है आज हम देखो, यह अमूल्यमयी हमें संकेत देती है, हमें यह प्रेरणा देती है कि हम माता पिता आचार्यों से कितने कटिबद्ध हैं, परिक्रमा करनी है हमें उनके प्रति मनन और कितने प्रति उनके विचारों की। जब पश्चिम दिशा आती हैतो हम जिस समाज में ,, जिस वातावरण को परिवर्तन करना है हम मानो शान्ति, के द्वारा जल जैसे शीतल होता है और जल शीतल जैसे पृथ्वी के मानो दोषों को यह समुद्र शोषण कर लेता है। इसी प्रकार हमारे मानो देखो, दोषों को, जल के तुल्य पृथ्वी के दोषो को जैसे जल शोषण कर लेता है, इसी प्रकार यह जल करता है इसी प्रकार हम समाज का हम परिवर्तन करते चले जाएं।

तो विचारना यह है कि आज हम देखो, उसके पश्चात हमारा जो प्रारब्धिक संस्कार है

पूर्व के जन्मो को जिससे हमारा जीवन कटिबद्ध है, जो मानो प्राण में रहने वाला है, जिसकी प्राण में गति चलती है अहा देखो, हम उसके आधार पर अपने जीवन के अपने कर्मों के भोगों को प्रायः क्रियात्मक करते चले जाएं, हम उनमें किसी प्रकार भी यह विचारें कि हम मानो पूर्वले प्रारब्धिक कर्मों हमारे लिए गति आगे के लिए ऊँचा कर्म करने की हमारी गति होनी चाहिए। हम जल सिंचन के साथ में जैसे अपनी प्रतिज्ञा करते हैं कि हे आपो घृतं ब्रह्मे उत्तर विध्यानम, मानो हम जल से प्रतिज्ञा करते हैं कि हम सदैव अपने ओज और तेज को प्रबल बनाना चाहते हैं। मेरे प्यारे इसके पश्चात ! प्रभु की परिक्रमा है, क्या हे देव हम याग के अग्नि के समीप जल को ले करके ! अग्नि के समीप साक्षी करके प्रतिज्ञा करते हैं, परिक्रमा करते हैं मानो हमारा !हे देव , जो जीवन है वह ऊर्ध्वा में भी मानो प्रत्येक दिशाओं में प्रभु की चेतना कार्य कर मानो देखो, और भौतिक जो स्वरूप है वह भौतिक स्वरूप एक और भी माना जाता , है आध्यात्मिक स्वरूप भी है और भी भौतिक स्वरूप जब सृष्टि का प्रारम्भ हुआ तो सबसे प्रथम प्रभु ने मेखला का निर्माण किया और वह मेखला क !मेरे प्यारे्या है? वह समुद्र है जिसके आँगन में पृथ्वी रमण कर रही है, और पृथ्वी के दोषों के शोषण करने का कार्य समुद्र किया करता है, इसीलिए समुद्र को सोम कहते हैं, जैसे वह विष को शोषण करता है, इसी प्रकार हम आध्यात्मिक बल को प्रबल करते हुए हम ज्ञान मुनिवरोंदेखो !, जैसे यह हमारे द्वारा अज्ञान है अज्ञान को नष्ट करते हुए, हम काम, क्रोध, मद, लोभ को शान्त करते हुए इस संसार सागर से पार होते चले जाएं। , यह आज का विचार है हमारा !मुनिवरों, अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपना कुछ ! सूक्ष्म विचार प्रगट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यथा स्वस्ति प्रधां मधु हृदयश्चमा व्यापकं देवाः इदं सर्वें मयाः। देवा सर्वत्रःमेरे पूज्यपाद गुरुदेव !ऋषि मण्डल !मेरे भद्र समाज !मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ,, यज्ञों के कर्म काण्ड अथवा उनकी प्रक्रियाएं और उनकी विशेषताओं का वर्णन कर रहे थे, मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा, उन विचारों को व्यक्त करने नहीं आ पंहुचा हूँ,

जिन विचारों से पूज्यपाद मानवीयता की और पूज्यपाद गुरुदेव की विचारधारा का आश्वसत हो जाए। केवल मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ वाक् प्रगट करने आया, जहाँ यह हमारी आकाशवाणी जा रही है, जिस स्थली पर, परन्तु उस स्थली पर याग का प्रारम्भ और याग का समापन, मैं अभी अभी दृष्टिपात कर रहा था, मैं यज्ञमान को सदैव यह अपने वाक् प्रगट करने आया हूँ। कि यज्ञमान को अपने जीवन में अभिमान के अंकुरों को नहीं उत्पन्न करना है परन्तु अपनी आभा को सदैव ऊँचा बनाना है और , मैं यह सदैव प्रभु से याचना करता रहता हूँ कि ऐसे गृह में, जहाँ वेदों का पठन पाठन होता हो, देवपूजा होती हो, जहाँ द्रव्य का सदुपयोग किया जाता हो जिस गृह में सदैव द्रव्य की वृद्धि होती है परन्तु देखो, द्रव्य की वृद्धि होने के पश्चात मानवीयता का प्रसार होता हैऔर , उस मानवीयता के प्रसार के साथ में परन्तु जीवन की आभा ऊँची बना करती है। मुझे तो अपने पूज्यपाद गुरुदेव का वह जीवन स्मरण आता रहता है, मैं आज इन वाक्यों को नही उच्चारण करने आया हूँ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने, कई काल में मुझे संकेत दिए, परन्तु आज तो मैं यह उच्चारण करने आ पंहुचा हूँ कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का वह जीवन जब मुझे स्मरण आता है एक समय देखो, स्वाति राजा के यहाँ देखो, याग का निर्माण करना था, याग को रचाना था। ब्रह्मा की उपाधि को प्राप्त करना था, परन्तु जब कजली वनों में आया गया और पूज्यपाद गुरुदेव को निमन्त्रण दिया और पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा क्या आभां मनु वाचा ब्रहे अश्वातां मनोंन्द्रियाँ स्वस्ति रुद्रा अस्ति पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा जब तक तुम इन्द्रियों का निग्रह नहीं करोगे, मैं याग को कदापि नहीं कर पाऊँगा क्योंकि अधिकार के द्वारा जब याग होता है तो मानो देखो, उस याग की सुगन्धि ब्रह्माण्ड में परणित होती है, जब ऐसा पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा तो राजा ने कहा भगवन्मेरी इन्द्रियाँ सदैव निग्रही ही रहती हैं !, उन्होंने कहा क्या प्रमाण है तुम्हारे द्वारा? उन्होंने कहा कि मेरे द्वारा यह प्रमाण है कि मैं अपने स्वयं मेरी पत्नी कला कौशल करती है, मैं सूक्ष्म सी कृषि करता हूँ उसके बदले जो द्रव्य आता हैंउसको मैं पान करता हूँ मैं अपने समाज के ,, राष्ट्र के वैभव को संग्रह करने वाला नहीं हूँ मैं सदैव याज्ञिक करने वाला हूँ। इसीलिए मेरे यहाँ वृष्टि याग का निर्माण ,

कीजिए और वृष्टि य ाग कराईए। उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि तुम एक वर्ष तक ब्रह्मचरिष्यामि गतप्रव्हा तुम ब्रह्मचारी रहो उस समय राजा ने तथास्तु कह करके वहाँ से प्रस्थान कर लिया। परन्तु प्रस्थान करने से पूर्व उन्होंने कहा कि महाराज ! क्यों ,एक वर्ष तो बहुत ही प्रबल हैकि मैं ब्रह्मचर्य का पालन तो मैं बहुत ही समय तक कर सकता हूँ, परन्तु याग की मुझे शीघ्रता है याग अवश्य कराईए तो उस सयम मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा सुप्रभा अस्तु मानो देखो, तू छह माह तक मुनिवरोंदेखो !, उन्होंने राजा ने वैसा ही संकल्प किया और संकल्प करने के पश्चात मानो देखो, छह माह के पश्चात याग का निर्माण हुआ। जब याग हुआ तो यज्ञमान को पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि यज्ञमान को इतना महान, होताओं को इतना महान, मानो देखो, तीन गुण होताओं में होने चाहिए। याग में विराजमान होने वाला हो, एक तो सबसे प्रथम यज्ञमान में नम्रता और निरहंकारता होनी चाहिए। और जो होताजन बने हुए हों, सहायक हों उनके द्वारा सेवा भाव की प्रवृत्ति और नम्रता होनी चाहिए। जिस मानव के जीवन में सेवा की नम्रता नहीं होती, मानो उस मानव को याग के ऊपर विराजमान होने का कोई अधिकार नहीं होता। इसीलिए क्योंकि उनका हृदय जब तक मानो नम्रता में न हो जाए, मानो देखो, वह अपने द्रव्य की लोलुपता में वह अपने आश्वातों में, वह केवल ऐसे जैसे मानो अपने में जैसे उखड़ा हुआ वृक्ष होता है, जब तक उस प्रकार का हृदय है, ऐसे मानव को यज्ञ के निकट कदापि नहीं आना चाहिए, ऐसा मुझे परम्परागतों से मैं इन वाक्यों का सदैव पुजारी रहा हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने जब राजा से कहा कि ऐसे होता बनें, ऐसे अध्वर्यु बनें परन्तु यज्ञ का प्रारम्भ होने लगा। जब यज्ञ प्रारम्भ हुआ तो मानो देखो, वेदों से यज्ञ की प्रतिभा वह है जितने भी शुद्ध होता होते हैं जितना शुद्ध हृदय यज्ञमान का होता है मानो देखो, उतना ही वायुमण्डल में पवित्रता होती है मानो देखो, जो अन्तरिक्ष में जो जलों का भरण हो रहा है उन देवताओं के प्रसन्न होने पर मानो देखो, वह जो मेघ हैं, वह समुद्रों से भी अन्तरिक्ष से मानो देखो, सुगन्धि साकल्य के प्रभाव से मानो देखो, वृष्टि याग प्रारम्भ हो जाता है, और याग जहाँ मानो वृष्टि भी प्रारम्भ हो जाती है, तो मैं आज यह विचार देने आया हूँ कि हम याग करने वाले बनें,

याग होने चाहिए मेरे जैसे पड़ गुरु कहा करते थे कि न करने से कुछ करना बहुत सुन्दर है परन्तु यह तो बहुत ही प्रिय है। मैं उन पुरुषों को आशीर्वाद क्या, अपने हृदय से यह कहा करता है कि उनका हृदय पवित्र हो, उनका सौभाग्य और उनकी प्रतिभा अखण्डता में प्रदीप्त होता रहे। जैसे प्रकृति और चेतना की दोनों की अखण्ड ज्योति जागरूक रहती है। परन्तु सृष्टि के प्रारम्भ में ज्योति का मिलान हो करके, प्रलय रूप बन जाता है। तो इसी प्रकार आज मैं अधिक विवेचना नहीं देने आया हूँ, केवल यह उच्चारण करने आया हूँ मैं !हे पूज्यपाद ,अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा करता हूँ , उन ब्राह्मणों को आशीर्वाद देता हूँ। जिनके मुखारबिन्दु से उद्गमता से वेद का पठन का प्रसार, वेद के पठन पाठन में जिनकी प्रवृत्ति पवित्र बनती रहे।

परन्तु देखो, प्रभु से ऐसी याचना करता ही रहता हूँ। सदैव मैं यह चाहता हूँ परन्तु , आज का जो समाज है, भौतिकवाद का जगत है, वह तो बड़ा विचित्र है। परन्तु देखो, यहाँ द्रव्य का कितना दुरूपयोग होता है। और जहाँ विज्ञान का दुरूपयोग होता है वहाँ द्रव्य का दुरूपयोग होना स्वाभाविक हो जाता है जैसे क्योंकि राजा के राष्ट्र में जब , हो जाता है। और विज्ञान का दुरूपयोग होता रहेगा, द्रव्य का दुरूपयोग होता रहेगा और जब यह द्रव्य का दुरूपयोग होता है यह द्रव्य उसी मानव के पुण्य को निगल जाता है। जिस मानव का वह द्रव्य हुआ करता है। तो मैने बहुत पुरातन काल में जैसा पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी प्रगट कर रहे थे, आज मैं उच्चारण करना नहीं चहाता हूँ कि केवल विचार यह है क्या आज हम सदुपयोग करने की प्रवृत्ति हममें होनी चाहिए, हम सदैव मानो उन पदार्थों को पान करते हैं जिन पदार्था को पान करने से मानव , और देखो ,के पुण्य समाप्त होते हैं, पापों का भरण हो जाता है। उन पदार्थों को पान करने वाला प्राणी मानो शुक्रत योनियों को प्राप्त होता है। तो मैं सदैव प्रभु से याचना करता हूँ, कि हे प्रभुतू राष्ट्र को !, सुबुद्धि दे, और समाज को सुबुद्धि दे जिससे द्रव्य का सदुपयोग करें, याग करें, ब्राह्मणतव विद्या का प्रसार करें, मानो धर्म की परम्परा

को ऊँचा बनाएं। और धर्म के मर्म को जानने वाले ऐसे ब्राह्मण, ऐसे आचार्य होने चाहिए। जिससे समाज में उत्तमता होनी चाहिए, महानता का प्रतिपादन होना चाहिए।

मैं अपनी माताओं से ये कहा करता हूँ!मातां ब्र्व्ही अस्ति सुप्रजा मुनिवरों , हे माता ! तू श्रृङ्गार में परणित तो हो, परन्तु श्रृङ्गार में ललाहित न हो जाए जिससे श्रृङ्गार में अतिता हो करके जो तेरे गर्भ से उत्पन्न होने वाला हो वही मानो देखो, देवी याग पर आक्रमण करने वाला पुत्र नहीं होना चाहिए। ऐसी सदैव मैं याचना करता रहता हूँ। मानो परम्परागतों में तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी प्रगट कर रहे थे, हमारे यहाँ पुरातन काल में जब ऋषि मुनियों का समूह था, तो माता के प्रत्येक अंग को यागरूप माना जाता, याग रूप है येमाना ही नही जाता है। परन्तु देखो ,, यह मध्यम का काल, महाभारत काल के पश्चात, वाममार्ग आया, वाममार्ग के पश्चात यागों में बलि देने की प्रथा प्रारम्भ हुई, उसका परिणाम यह हुआ कि माताओं के अस्तित्व को नष्ट किया गया, माताओं के जब अस्तित्व को जब नष्ट किया गया और माताओं ने अपने वास्तविक श्रृङ्गार को पुरूष उन पर आक्रमण करने वाले बने जो पुरूष माता के गर्भ से जन्म लेता है मानो देखो, इन आभाओं को संसार को विचारना चाहिए, आज सात्विकता लानी है समाज में, मानवता का प्रसार करना है तो हे माँ तू अपने जीवन को याग ! रूप स्वीकार कर। तेरा प्रत्येक अंग श्वास भी तेरा याग है, जब तेरे प्रत्येक श्वास के साथ जब ओ३म् का जप चलता है तो मेरे गर्भस्थल में जिस बालक का निर्माण होता है आज तेरा सर्वत्र जीवन याग रूप माना गया है परन्तु मैं क्या करूँ? आधुनिक जगत तो ऐसा बन रहा है कि माताओं ने उस श्रृङ्गार को अपनाना प्रारम्भ कर दिया है, जिस श्रृङ्गार को मानो देखो, पुरुषों ने केवल भोग विलास का साधन बना लिया हैं हे मां ! तू पुनः से उस श्रृङ्गार को अपनाने का प्रयास कर, जैसा माता मल्दालसा ने अपने श्रृङ्गार को अपनाया, मानो जैसे चाक्राणी गार्गी ने अपने श्रृङ्गार को अपनाना प्रारम्भ किया जैसे मानो यहाँ देखो, नाना मेरी प्यारी माताएं देखो, यहाँ माता सीता ने और देखो, जैसे असुतं देवं अब्रहा अवुति कौशल्या इत्यादि माताओं ने अपने श्रृङ्गार को अपना करके अपने गर्भस्थल में पुत्रों को जन्म दे करके संसार को उत्थान के मार्ग पर

पंहुचाने का प्रयास किया।

तो मुनिवरोंआज मैं अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ केवल अपने पूज्यपाद गुरुद !ेव से यह उच्चारण करने आया हूँ। हे माँ तू अपने शृङ्गार को पुनः से अपना जिस शृङ्गार ! को अपनाने से तेरी महानत्ता ऊँची बने, तेरा जो शरीर रूपी याग है, यह मानवीय दृष्टि में याग बन करके रहे, परन्तु यह भोगविलास का साधन न बन करके रहे, हमारे ऋषि मुनियों ने सदैव, माता के जीवन को याग ही स्वीकार किया। मुझे स्मरण है जब माता देखो, प्रव्हा माता का कितना सुन्दर याग है, माता के जीवन की चर्या, मानव को कितनी प्रभावित होती है मानो देखो, रावण का कितना ऊँचा साम्राज्य था। जिसके राष्ट्र में सूर्य अस्त नहीं होता था। परन्तु माता सीता को वह कलंकनी नहीं बना सका। उसका परिणाम था कि उसका तप था, उसकी मानवता थी, उसका सतीत्व था, वह उसके सतीत्व को नष्ट नही कर सका, मानो वह माता का वास्तविक भूषण है वह माता की वास्तविकता है मुनिवरोंदेखो !, जब स्वाति ऋषि महाराज ने चाक्राणी गार्गी से यह प्रश्न किया कि तुम नग्न क्यों रहती हो? उस समय ऋषियों की सभा में, उसने यह कहा कि नग्न तो मानव कदापि रहता ही नहीं, क्या वस्त्र धारण करने से ही मानव यदि वह वस्त्र धारण करने से ही शृङ्गार युक्त हो जाता है तो मैं भी उसको स्वीकार नहीं करती, क्योंकि वस्त्रों को धारण करने वाला भी संसार में नग्न होता है। वस्त्र न होने पर भी मानो देखो, जब मानव दिशाओं को अपना वस्त्र बना लेता है कैसा बना लेता है? क्या मानो जो ज्ञान रूपी वस्त्र में अपने शरीर रूपी इन्द्रियों को ढ़ाँप लेता है उस मानव का वास्तविक वह ज्ञान रूपी वस्त्र है, उस शृङ्गार को अपना करके माता इस समाज को ऊँचा बना देती हैक्या आज मैं अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ ,, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यज्ञों के सम्बन्ध में प्रक्रिया प्रगट कर रहे थे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का यज्ञों के ऊपर बहुत ही गम्भीर अध्ययन रहा है, चौंसठ प्रकार के यागों का कर्म काण्ड कठस्थ किया था किसी काल में परन्तु आज तो इतना समय नही जो मैं उन यागों की प्रतिक्रिया उच्चारण करूं आज तो केवल विचार विनिमय यह है कि आज हम मानो देखो, उस आभा को अपनाने का प्रयास करें जिस आभा से समाज और मानवता ऊँची बनती चली जाए। उसी आभा

को अपनाते हुए मानो मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा करता हूँ। हे पूज्यपाद यह ! समाज ऊँचा उस काल में बनता है जब यज्ञमान ऊँचे होगे और यज्ञमानों के यहाँ मानो देखो, मानो द्रव्य का सदुपयोग होना प्रारम्भ हो जाएगा और राष्ट्र को मानो सुबुद्धि आ जाए, क्या विज्ञान का दुरूपयोग न होकर के माताओं के सतीत्व और चरित्र की रक्षा की जाए। जिससे यह समाज ऊँचे से ऊँचा बन जाए, आज मैं अधिक चर्चा तो देने नहीं आया हूँ मैं तो केवल यह उच्चारण करना जिस स्थली पर याग हुआ मैं उस याज्ञिक पुरूषों को अपने हृदय से सदैव मैं देखो, अपनी प्रशंसा और अपना हार्दिक जो आस्ता है मैं उसे प्रगट करने आया हूँ हे मानव तू महान बन करके महानत्ता !हे माता ! को धारण करती हुई याग करने वाली बन। मानो अपने यज्ञमान पति के समीप विराजमान होकर के उद्गमता से प्रसन्न हो करके जैसे मानो देखो, पृथ्वी सूर्य के समीप विराजमान होकर के नाना प्रकार की वनस्पति दे करके, खाद्य खनिज दे करके संसार को ऊर्ध्वा बना देती है, श्रृंगारित हो जाती है इसी प्रकार हे माँ तू विद्या रूपी अपने ! श्रृङ्गार को अपना करके तू संसार का कल्याण कर।

मानो इसी प्रकार हे यज्ञमान तू अपने गृह को सुशोभित करने वाला है। तू अपनी ! मानवता में इतना ऊर्ध्वा गति में ले जा, मानो तेरे इस जीवन में इतना ऊर्ध्वा हो कि देवताओं की सभा में विराजमान होने वाला हो।

तो आज का मेरा विचार मैं तो अधिक व्याख्याता या अपने पूज्यपाद गुरुदेव को मैं विद्ववता प्रगट करने नहीं आया, केवल विचार विनिमय यह आज का मेरा विचार यह कि आधुनिक जगत मानो देखो, महाभारत काल के पश्चात वाममार्ग इत्यादि जो नाना प्रकार के देखो, जो मतावलम्बी हुएं है उनका जीवन, उनकी प्रति अस्वातों में रमण मानो उस आभा को नष्ट करके धर्म और वैदिकता का प्रसार करके, समाज को ऊँचा बनाना चाहिए। हे यज्ञमान तुम्हारा !जीवन अखण्ड बना रहे, जिससे मानवता का प्रसार अधिक से अधिक हो जाए। यह आज का विचार है, अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आा पाऊँगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः धन्य होदेखो !, मुनिवरों महानन्द जी ने अपने !आज मेरे प्यारे !

कुछ सूक्ष्म विचार प्रगट किये, परन्तु उनके विचारों से ऐसा प्रतीत होता है जैसे उनके हृदय में कोई पिपासा है, उस पिपासा का निराकरण प्रभु की आभा से ही समाप्त हो सकता है। आज हम अपने जीपन को ऊँचा बनाने के लिए, जैसा हमारे वेद के पठन पाठन में भी आया कर्मकाण्डों में भी आया, आश्काचार्य इत्यादि ने भी वर्णन किया आज हम उसी के आधार पर अपने धर्म मानवता सदैव अपनाते चले जांए आज का विचार अब यह समाप्त होने जा रहा है जैसा महानन्द जी ने यज्ञमान को आर्शीवाद दिया अपना विचार प्रगट किया ऐसे मैं भी यह कहा करता हूँ कि इनका जीवन ऊर्ध्वा गति को प्राप्त हो, जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, जब तक जीवन रहें जब तक धर्म की आभा में रमण करते रहें। इसके साथ यह वाक् समाप्त हो गया।

१२ 06 08 1973 पुष्प 24 भौतिक विज्ञान

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। आज हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा था कि यह जो पवित्र वेदवाणी है यह मानव समाज को ऊर्ध्व बनाती है, मानव को स्वच्छ प्रेरणा प्रदान करने वाली है, हमें उस प्रेरणादायक ज्ञान और विज्ञान दोनों को अपना लेना चाहिए।

आज के हमारे वेद पाठ में विचित्र वार्त्ता आ रही थी। आज हम उनकी मीमांसा करने लगे तो मन में ऐसा प्रतीत होने लगेगा जैसे हम परमपिता परमात्मा की गोद में विराजमान हैं। मुझे वह काल भलीभांति स्मरण आता रहता है जब यहाँ ऋषि मुनि विराजमान होकर अपने चित्त पर अनुसन्धान किया करते और उसी चित्त की आभा के साथ परमाणुवाद पर भी अनुसन्धान करते क्योंकि उनका दृष्टिकोण सदैव रहता रहा है कि जब आध्यात्मिकतावाद में सर्वत्र विज्ञान आता है तो हमें मन के ऊपर अनुसन्धान करना है, हमें चित्त के ऊपर अनुसन्धान करना है।

चित्त को हमें शान्त बनाना है। हमें इस संसार के दोषारोपण को दृष्टिपात नहीं करना है केवल हमें अपने चित्त के आनन्द में प्रतिष्ठित होना है और चित्त को दृष्टिपात करते

हुए मन में संलग्नता को परणित होते हैं जो मन में चंचलवाद में रमण करता है। इसी वाक्य को लेकर महर्षि भारद्वाज भौतिक विज्ञान पर चले गये। महर्षि भारद्वाज ने यह स्वीकार किया कि वेद में चित्त आता है चित्रांग आता है। जैसे चित्त में नाना प्रकार की धारा समाहित हो जाती है और इन धाराओं के साथ में जो सामग्री होती है वह चित्त में प्रतिष्ठित हो जाती है, जैसे एक मानव सर्वज्ञ राष्ट्र का भ्रमण कर लेता है परन्तु यदि वह पृथ्वी मण्डल का भ्रमण कर लेता है अथवा यन्त्रों द्वारा लोकान्तरों की मात्रा भी कर लेता है तो जो भी दृष्टिपात किया गयाआत्मा और नेत्रों के प्रकाश से और उसमें जो तरंगें हैं, धारायें हैं वह चित्त में प्रतिष्ठित हो जाती हैं, चित्रित हो जाते हैं। अब वह सर्वत्र राष्ट्र का क्या, भू मण्डल का क्या, लोकों का क्या मानव के इस अन्तःकरण में अथवा जिसको चित्त कहते हैं में समाहित हो जाता है, उसके चित्र आ जाते हैं। संसार को जो हमने दृष्टिपात किया, नेत्रों से तो दृष्टिपात किया, मन उसको चित्र में लेने वाला है और आत्मा के प्रकाश में इस जंगत को दृष्टिपात किया गया।

तो मुनिवरोंमन तो एक चित्र लेने वाला है !, सागर का चित्र ले रहा है और वह चित्त में विराजमान न हो रहे हैं और उनकी बड़ी बड़ी उत्तम विचारधारायें छाती जा रही हैं। हमारे यहाँ चित्त नाम का जोस्थान है अथवा जिसमें मानव के संस्कारों का पर्वाह रहता है अब जो वस्तु उसमें विराजमान हो जाती है उसका नाम संस्कार है। जैसे एक मानव जगत अपने स्थल पर दृष्टिपात करता है तो वह मानव के चित्त में चित्रित हो रहा है। यदि चित्त में विचित्र नहीं होगा तो उसको वह अनुभव नहीं कर सकता जैसे एक मानव लोकों का ज्ञान करना प्रारम्भ करता है, बुद्धि मेधा के द्वारा और वह यह दृष्टिपात करता है कि यह तो सूर्य मण्डल है यह प्रकाशक स्वरूप है, प्रकाश को देने वाला है, चन्द्रमा जो कान्ति देता है यह बृहस्पति मण्डल है, यह आरुणि है और यह वशिष्ठ है, यह सप्तऋषि मण्डल जो ध्रुव मण्डल की परिक्रमा करता है। तो मुनिवरों यदि मानव को ! मस्तिष्क में इनके सूक्ष्म तन्तु नहीं होंगे तो इन लोकों की जानकारी भी किसी काल में नहीं हो सकेगी। तुमने यह जाना नहीं कि जैसे यह चन्द्र मण्डल है यह प्रकाश देता है, कान्ति देता है और रात्री माता वसुन्धरा के गर्भ में अमृत को प्रदान करता है

और यहीं तक नहीं माता के गर्भ स्थल में भी यह मेरे प्यारे को अमृत देता है !पुत्रों ! तो इनका जो स्रोत है वह मानव के चित्त में सूक्ष्म रूपों से विराजमान है।
तो ऋषि भारद्वाज ने यह कल्पना की, और भी आदि ऋषियों ने कीं कि यह जो हमारा चित्त नाम का स्थान है। मन है, बुद्धि है चित्त और अहंकार। इन चारों को एक सूत्र में लाने का नाम अन्तःकरणः कहलाता है। तो वह जो चित्त नाम का स्थान है जो मन और बुद्धि के द्वारा निर्णय किया हुआ है वह चित्त में समाहित हो जाता है अथवा चित्त में उसका चित्र आ जाता है। वह कैसी भी सूक्ष्म वार्त्ता हो, कैसा भी चित्त में विचार हो आत्मा का विचार हो परम पिता परमात्माका विचार अथवा प्रकृति के एक एक परमाणुवाद का क्यों विचार न हो परन्तु उन सबके संस्कार चित्त में विराजमान हो जाते हैं। ऋषि यहाँ कहते हैं कि हे मानव तू चित्त को जानने का प्रयास कर। यदि तू संसार ! को जानना चाहता है, लोक लोकान्तरों को जानना चाहता है तो चित्त को जानने का प्रयास कर। ऋषि ने और वेद ने ऐसा क्यों कहा है कि चित्त को जानो? इसलिए कहा है कि संसार में जितना भी लोकवाद है, परमाणुवाद है अथवा जितना भी नेत्रों से, मन और बुद्धि के द्वारा जो भी ग्रहण किया जाता है वह सर्वत्र परमाणु प्रकृति के सहयोग से प्राप्त किया जाता है। यदि प्रकृति उसमें संलग्न नहीं होती तो कोई कार्य नहीं कर पायेंगे। जैसे मन है अब मन जो प्रकृति की धारा है बुद्धि है यह मन की धारा है और यह जो चित्त और अन्तःकरण है यह भी मन की धारा है जैसे बुद्धि की चार प्रकार की धारा हैं बुद्धि, मेघा, ऋत्मभरा और प्रज्ञा यह चार प्रकार धारा हैं परन्तु यह सब मन की धारा हैं अथवा जैसे मन बुद्धि क्षेत्र में जाता तो बुद्धि लिप्त बन जाता है, यदि वह ऋतम्भरा क्षेत्र में जाता है तो ऋतम्भरा लिप्त बन जाता है, मेघा के क्षेत्र में जाता है तो मेघाहित बन जाता है और प्रज्ञा में जाएं यह प्रज्ञावी युक्त क्षेत्र बन जाता है तो परिणाम यह कि यह सब की ही धारा हैं। इसी प्रकार बुद्धि के आँगन को त्याग करके सूक्ष्म से सूक्ष्म जैसे बुद्धि है, बुद्धि मेघावी में जाता है तो लोक लोकान्तरों का ज्ञान होने लगता है और जब यह ऋत्मभरा में जाता है तो लोकों के ज्ञान को अनुभव करके यह त्यागने लगता है और इसमें रहस्यों को त्यागने लगता है। जब कोई रहस्य प्रतीत नहीं होता

तो उसका नाम विवेक है। अब ऋत्मभरा को भी त्याग करके यह प्रज्ञावी क्षेत्र में चला जाता है, केवल एक ब्रह्म को यहाँ साथी बनाता है, मित्र बनाता है। चित्त में वही धारा प्रारम्भ हो जाती है अब चित्त में जो धारायें हैं उन धाराओं को हम ज्ञान और विवेक द्वारा परमात्मा की सहकारिता के द्वारा इस प्रकृतिवाद को त्यागने का प्रयास करते हैं तो वह जो चित्त की प्रतिभा है वह भी समाप्त हो करके यह आत्मा मोक्ष को प्राप्त हो जाती है। ऐसा हमारे ऋषि मुनियों ने स्वीकार किया है।

विचार यह है कि चित्त में संसार का ज्ञान विज्ञान समाहितहो जाता है, जितना परमाणुवाद है अथवा जितना लोकवाद है, लोक लोकान्तरों में जाना, यन्त्रों का बनाना, विज्ञानशाला में प्रविष्ट होना और नाना प्रकार के परमाणुओं को एकत्रित करके चित्रण बनाना यह सर्वत्र मानो देखो, चित्त में इनकी धारायें विराजमान रहती हैं क्योंकि चित्त जो है प्रकृति का सूक्ष्मतम्तन्तु माना गया है और वह जो सूक्ष्म तत्त्व है उसको हमारे यहाँ चित्त कहते हैं। इसलिए प्रकृति का जितना भी यन्त्रवाद है, प्रकृति को जो एक एक परमाणु है, एक एक लोक लोकान्तर है उसकी धारा इस चित्त में विराजमान रहती है। इसीलिए ऋषि मुनियों ने पिंड और ब्रह्माण्ड की कल्पना की है।

आध्यात्मिक वेत्ताओं ने यह कहा है कि हम संसार में आध्यात्मिक वेत्ता के तो चित्त का हम शोधन करें। चित्त जो है यह प्रकृति के आँगन पर मानव को ले जाना चाहता है उस मार्ग को त्याग करके हम वास्तव में प्रतिपदा में और हम चित्त के स्थल)से (उसके आँगन से दूरी चले जाते हैं। यह जो आत्मा है उस समय संसार की क्रिया उसके लिए केवल एक चेतना ही चेतना दृष्टिपात होती है।

अब भौतिक विज्ञानवेत्ताओं का मन्तव्य भी विचार करो। भौतिक विज्ञानवेत्ता यह कहते हैं कि संसार में जो भी कुछ क्रिया है वह केवल प्रकृतिवाद मानी जाती है। हमारे यहाँ के जो परम्परा के ऋषि हुए हैं जैसे महर्षि भारद्वाज ऊँचे, वैज्ञानिक हुए हैं उन्होंने इस क्रिया का, इस संसार को संचालन करने वाली किसी सत्ता को स्वीकार किया और उस सत्ता को हमारे यहाँ चैतन्त प्रभु कहा जाता है। महर्षि भारद्वाज ने इस चित्त को ले करके ही, ऋषि मुनियों ने उन्हीं परमाणुओं को एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया जिन

धाराओं से चित्त में संस्कारों का प्रादुर्भाव होता है। ऋषि भारद्वाज ने इसी आधार को ले करके नाना प्रकार की धातुओं को एकत्रित करना प्रारम्भ किया क्योंकि जिन धातुओं से हम किसी की चेतना से मानो देखो, संसार को दृष्टिपात करते हैं, विभाजनवाद भी करते हैं। इसी प्रकार उन्होंने इस प्रकृति में जो विभाजनवाद हो रहा था उस विभाजनवाद के जानने का प्रयास किया महर्षि भारद्वाज ने रावण के विधाता कुम्भकरण को अपना साथी बनाया क्योंकि हमारे त्रेता के काल में राजा रावण के विधाता कुम्भकरण पुलिस्त ऋषि महाराज के पोत्र से ऊँचा वैज्ञानिक नहीं था। मैंने इससे पूर्व काल में भी कहा कि वह छह माह तक हिमालय की कन्दराओं में विज्ञान का चिन्तन करते थे और छह माह लंका में वैज्ञानिकों के मध्य में शिवर लगा लिया करते।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे एक समय निर्णय कराया कि आधुनिक काल का जगत ! यह कहता है कि छह माह तक निद्रा में रहते थे और छह माह तक वह जागरुक रहते थे। प्रायः ऐसा नहीं था। वह छह माह राष्ट्र के लिए देते थे और छह माह तक वह हिमालय में शान्त अज्ञातवास में विज्ञान का चिन्तन करते थे। मुझे उनका जीवन स्मरण भी आता रहता है। विचार विनिमय यह कि महर्षि भारद्वाज मुनि राजा रावण के विधाता कुम्भकरण जिनको निश्चित ही आख्यात वैज्ञानिक कहा जाता था कि विज्ञानशाला में अनुसन्धान करते। वह सदैव चित्रों पर चिन्तन करते रहते कि यह जो चित्र आते हैं यह कहाँ से आते हैं। उन्होंने एक एक शब्द में चित्र माना है और उन्होंने ऐसा कहा है कि जैसे हमारा यह अन्तःकरण है जिसको हम चित्त कहते हैं अब वह जो चित्त नाम का स्थल है वह प्रकृति का भी चित्त है। यह तो मानो शरीर में चित्र है प्रकृति का क्योंकि पञ्च महा भौतिकों का संघात हुआ, एकीकरण हुआ, एकीकरण हो करके शरीर का निर्माण हो गया। इसके पश्चात् इन्हीं पञ्च महा भौतिक सूक्ष्म धाराओं की, परमाणुओं की, महा परमाणुओं की, अणुओं की धाराओं का चित्त नाम का स्थल बन गया। इसी प्रकार महर्षि भारद्वाज ने यह निश्चय किया कि जैसा चित्र मानव के स्थान में है उन्होंने यह निर्णय किया कि मैं कौन हूँ क्योंकि मैंने अपने पूज्य गुरुदेव के द्वारा जो अध्ययन किया था वह विद्या मेरे इस मानव चित्त में विराजमान है। अब उन्होंने विचारा कि इसी

प्रकार वायु मण्डल में क्या मानो इस पञ्च महा भौतिक तत्त्व है। इनमें वह धारायें विराजमान हैं इन धाराओं को जानना है। तो कहा जाता है कि महर्षि भारद्वाज ने इन धाराओं के ऊपर चित्रण करना प्रारम्भ कर दिया। जब वह चित्रण करने लगे, विचार विनिमय तो उन्होंने इस चित्त को ले करके चार यन्त्रों का निरीक्षण किया। सबसे प्रथम उन्होंने इस चित्र का भी निरीक्षण किया कि मैं यह जानना चाहता हूँ कि जैसे एक महापुरुष एक स्थली पर उस महापुरुष के अन्तःकरण का जो वातावरण है, विचार धारा है वह वायु मण्डल में भ्रमण करती रहती है, मैं यह जानना चाहता हूँ कि वह जो वायु में धारायें हैं उस स्थली पर जिस पर ऋषि तपस्या करते हैं और वह जो तप के परमाणु हैं वह उस स्थान पर विराजमान रहती हैं तो ऋषि ने इसके आँगन में यन्त्र का निरीक्षण किया। जिस यन्त्र का उन्होंने निर्माण किया और उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि एक मानव एक स्थान पर विराजमान है, वह मानव यदि चला जाए तो ढाई घड़ी के पश्चात् उस यन्त्र से उस मानव का चित्र आ जाता है। यह विज्ञान धारा है। उसी चित्र को ले करके उन्होंने चित्रा अन्वेषण अवरात नाम के यन्त्रों का निर्माण किया।

वह यन्त्र उन्होंने कैसे जाना? वह उस प्रकृति के परमाणुओं से जाना है क्योंकि इसमें अग्नि के और वायु के परमाणुओं का अधिक मिश्रण होता है और जल में परमाणु सूक्ष्म होते हैं और पार्थिव परमाणु मानो उसके लिए आरज्यसी में होते हैं और अन्तरिक्ष के परमाणुओं की अधिकता होती है। उनका मिलान किया जाता है और एक यन्त्र बन जाता है। अब वह जोयन्त्र है उसमें यह विशेषता आ जाती है। वह चित्र के आधार पर जैसे योगीजन योग से चित्त को जान लेते हैं इसी प्रकार उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया। अब आगे चल करके उन्होंने द्वितीय यन्त्र का निरीक्षण किया। द्वितीय यन्त्र किस प्रकार का था कि मानो एक मानव अन्तःकरणी है, उसकी यदि सौ वर्ष की अवस्था है तो बाल्यकाल के संस्कार सौ वर्ष के पश्चात् भी मानव के जीवन में आ जाते हैं, वृद्धपन में वह बाल्यकाल की कल्पना करता है और वह प्रायः स्मरण आ जाते हैं कि मैं ऐसे आँगन में रमण करता रहता था, ऐसी ऐसी बातें होती रहती थी तो अन्तःकरण में वह संस्कार जागरुक हो गया। इसी प्रकार उन्होंने यह जाना कि यह जो अन्तरिक्ष है यहाँ

प्रत्येक रक्त के बिन्दु में चित्रावली होती है उसके दिग्दर्शन होते रहते हैं तो इसको भी जाना। तो ऋषि ने यह जानने का प्रयास किया। महर्षि भारद्वाज, स्वाती ब्रह्मचारी, अस्वेत्तांगनी प्रतिभा और माता ब्रहणी प्रेम केतु यह वैज्ञानिक उनकी विज्ञानशाला में इसके ऊपर अन्वेषण करते। इनको जानने के लिए महर्षि भारद्वाज मध्य में विराजमान होते और वेद मन्त्रों के अध्ययन के ऊपर उनका विचार विनिमय चलता रहता था तो ऋषि के अनुवाती ऋषि को यह निर्णय किया कि जैसे एक मानव है और उस मानव का यदि निधन हो जाएं और सौ वर्ष कनिधन हुए हो गया हो और यदि कहीं उसके रक्त का बिन्दु प्राप्त हो जाएं तो एक रक्त के बिन्दु में इतने परमाणु कि वह यन्त्र इस प्रकार का था कि सौ वर्ष में सौ वर्ष पूर्व जिस मानव का निधन हो गया उस यन्त्र में उस मानव का साक्षात्कार चित्र आ जाता था एक रक्त के बिन्दु से। तो ऋषि ने यह निर्णय किया एक रक्त के बिन्दु में भी प्रायः इतने परमाणु होते हैं तो उन्होंने परमाणुवाद के ऊपर बहुत ही ऊँचा बल दिया।

अब तृतीय प्रकार का यन्त्र उन्होंने इस प्रकार का यान्त्रित किया और सिद्ध किया कि हे मानव जो भी शब्द तू उच्चारण करता है वह शुद्ध हो अशुद्ध हो परन्तु वह अन्तरिक्ष ! में विराजमान हो जाते हैं। उन्होंने सिद्ध किया कि वातावरण अशुद्ध कैसे होता है और शुद्ध वातावरण कैसे होता है। उन्होंने प्रमाण देते हुए ऐसा कहा, मैं भी किया करता हूँ, इन प्रमाणों को, जैसे एक मानव है पुत्र है, पुत्री है, पत्नि है, पुत्र वधु है और यदि गृह में एक मानव दूसरे से प्रसन्न रहेगा तो गृह में स्वर्ग की कल्पना की जाती है परन्तु जब एक मानव दूसरे मानव से क्लेश युक्त रहता है, गृह में कलह रहती है, नेत्रों से जल की वर्षा होती रहती है गृह में। तो वह गृह गृह नहीं रहता वह नार्किक गृह बन जाता है क्योंकि वह जो क्रोध के परमाणु वातावरण में ओत प्रोत हो जाते हैं। तो मुनिवरों ! मानव कहता है कि यह गृह तो मुझे शोकयुक्त प्रतीत होता है। इसी प्रकार ऋषि ने यह सिद्ध किया है कि यह जो अन्तरिक्ष है इसमें जो परमाणु रमण करते हैं जैसे एक मानव मिथ्या उच्चारण करता है तो जब वह शान्त होता है उसका अन्तःकरण उसे धिकारने लगता है क्योंकि अन्तःकरण में भी वह चित्त विराजमान है। ऋषि ने कहा है

कि वह जो अशुद्ध वातावरण है परमाणु हैं वह वायु मण्डल में भरण हो जाते हैं और उस वायु मण्डल में शुद्ध जो शब्द होते हैं वह द्युलोक को प्राप्त हो जाते हैं तो ऋषि भारद्वाज ने ऐसा सिद्ध किया कि प्रत्येक शब्द के साथ में उस मानव का चित्र भी जाता हैं वह जोयन्त्र निर्णित किया उस यन्त्र की चित्रावली अनुवासन वायु स्थिति भवन यन्त्र कहते हैं। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि वह यन्त्र वायुमण्डल में त्याग दिया गया तो नीचे पृथ्वी पर एक यन्त्र विराजमान है उस यन्त्र में छाया आती रहती थी, उसमें वह धारायें दृष्टिपात आती तो ऋषि ने यह सिद्ध किया है कि एक एक शब्द के साथ में मानव का चित्र भी आता है जितना कि एक शब्द के साथ में परमाणु जाता है। मुनिवरोंदेखो !, जितने परमाणुओं से माता के गर्भ स्थल में बालक का निर्माण हो जाता है इतने ही परमाणुओं का एक शब्द में विकास हो जाता है मानो वायु मण्डल में तरंगों में तरंगित हो जाता है। अशुद्ध शब्द हो तो अशुद्धता में परणित हो जाते हैं, शुद्ध हो तो द्यु लोक को प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि शब्द में विद्युत अधिक होती है। दोनों की सीमाएं आदि अंकित की जाएं तो शुद्ध वातावरण में विद्युत का प्रभाव अधिक होता है और अशुद्ध में सूक्ष्म होता है। इसी प्रकार ऋषि ने सिद्ध किया है और उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि दोनों प्रकार के शब्दों का विभाजन होता था। उन चित्रों द्वारा अशुद्ध परमाणु वायु मण्डल में दृष्टिपात आते थे, विद्युत के आँगन में उनका रंग रूप भी भिन्न दृष्टिपात आता था। शुद्ध का त्रेताम् ब्रह्मे ऋताम् ब्रह्मे अस्वाति वेदों में आया है कि शुद्ध वातावरण में उसमें त्रेता और पिताम्बरी वरुण होता है और जो अशुद्ध होता है उसमें हरित आसन पर कलिष्ट वरुण होता है। उस कालांग्रित वरुण होने के नाते उस अशुद्धवाद में तपोगुण प्रधान होता है।

मेरे प्यारेऋषि ने यह सिद्ध किया कि दोनों प्रकार के शब्द उ !स यन्त्र में विभाजन होते दृष्टिपात होते थे। जैसे एक न्यायाधीश जब न्याय करता तो मिथ्या को और सत् को वह अन्तःकरण में जान लेता, और लेखनीबद्ध कर देता। इसी प्रकार जैसे वाणी के ऊपर अनुसन्धान करने वाला योगी यह जान लेता है कि वाणी में अशुद्धवाद है या शुद्धवाद है। आयुर्वेद को पंडित भी इस शुद्धवाद को और अशुद्धवाद को जान लेता है। विचार

विनिमय यह कि दोनों प्रकार के परमाणु उसमें मिश्रित होते हैं, उसमें कुछ परमाणु अग्नि के होते हैं और उसके आधे जल के होते हैं और तिगुने परमाणु वायु के होते हैं, इससे अधिक परमाणु अन्तरिक्ष के होते हैं और इन सबसे बहुत सूक्ष्म परमाणु इस पृथ्वी के होते हैं। इन पञ्च महाभौतिकों का एक दूसरे से मिलान करते हुए वह इस पद्धति का महायन्त्र बन जाता है जिससे शब्दों का विभाजन किया जाता है। जैसे पृथ्वी में विभाजन होने वाला और कोई व्यक्ति रसों का विभाजन कर रहा है, नाना प्रकार को वनस्पतियां हैं परन्तु उनके भिन्न भिन्न प्रकार के रसास्वादन हैं, प्राणों का विभाजन ही है, उनके द्वारा, इसी प्रकार वायु मण्डल में प्राणी के द्वारा वन स्तयः कृतिभा, आध्यापति, यह सर्वत्र इनका विभाजन होता दृष्टिपात आ रहा है।

आज विज्ञान के क्षेत्र में मैं अधिक जाना नहीं चाहता हूँ। आज मैं उच्चारण करने आया हूँ कि आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद दोनों का मिश्रण होना चाहिए, दोनों एक साथ में रमण करने चाहिए। यदि विज्ञान प्रगतिशील होता रहा तो अंत में इन चित्रों का और विज्ञान का दुरूपयोग होना प्रारम्भ हो जाता है और जब विज्ञान का दुरूपयोग होना प्रारम्भ हो जाता है उस समय समाज में रक्त भरी क्रान्तियों का आना संभावित हो जाता है।

मेरे प्यारे मैंने बहुत पूर्व काल में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए यह कहा था कि ! जिस समय छात्रों में विज्ञान के दुरूपयोग के चित्रण आने लगते हैं तो मानो राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति आ रही है क्योंकि जिस समय चित्रण में विज्ञान का दुरूपयोग होता दृष्टिपात करते हैं तो उनका चरित्र उनके मस्तिष्क में नहीं रहता और जब राजा के राष्ट्र में अथवा समाज में चरित्र नहीं होगा तो समाज कैसे ऊँचा बनेगा। समाज तो ऊँचा चरित्र से ही बना करता है। यदि चरित्र ऊँचा न रहा और विज्ञान का दुरूपयोग होता रहा तो वहाँ कर्त्तव्यवाद नहीं होता और जब कर्त्तव्यवाद नहीं होता तो वहाँ मानवीयता भी नहीं होती वहाँ सदैव रक्त भरी क्रान्ति के समागम के चिन्ह बनते रहते हैं। मुझे स्मरण आता रहता है वहाँ रक्त भरी क्रान्तियों के विचार बनते रहते हैं, अन्तःकरण में अग्नि धीमी धीमी प्रदीप्त होती है और एक समय वह आता है कि अग्नि प्रदीप्त होकर के

राष्ट्रीयता में राजा के लिए हानिकारक होती है। एक वाक्य में और निर्णय दिए देता हूँ कि यहाँ परम्परागतों से नाना वाद हैं परन्तु जिस समय राष्ट्रीयवाद का निर्माण अपठित समाज के द्वारा होता है, उस समय रक्त भरी क्रान्ति आने में कुछ देरी नहीं लगा करती है।

एक वाक्य में और उच्चारण किए देता हूँ कि विज्ञान भौतिकवादी होना चाहिए, नाना प्रकार का यन्त्रवाद भारद्वाज मुनि के यहाँ बृहस्पति में जाने वाले यान थे, मंगल में जाने वाले यान थे और भी नाना लोक लोकान्तरों में उनकी गति प्रायः थी परन्तु ऋषि ने यह सिद्ध किया कि विज्ञान होना चाहिए दोनों प्रकार का। आध्यात्मिकवाद इसलिए अनिवार्य है क्योंकि विवेकी पुरुष होने चाहिए। क्रियात्मक जब आध्यात्मिकवाद होता है तो उसमें विवेकी पुरुष होते हैं, निष्पक्ष पुरुष होते हैं और जहाँ विवेकी पुरुष होते हैं वहाँ उनके द्वारा राष्ट्र और समाज का समाज का कल्याण हो जाता है और वह जो निर्माण है, राष्ट्रीयता है उससे मानवीय समाज ऊँचा बना करता है। हमारे यहाँ, परम्परागतों से जो विवेकी पुरुष होते हैं वह निष्पक्ष होते हैं। त्रेता काल में जब महाराज रावण ने लंका को कुवेर से विजय कर लिया था और विजय करने के पश्चात् लंका में महाराज पुलस्त्य ऋषि महाराजा के रावण पोत्र होते थे, उन्होंने महर्षि कुकुट मुनि महाराज और महात्मा बिन्दु को और भी आदि ऋषियों को निमन्त्रण दिया। महर्षि कुकुट मुनि महाराज उस समय महान् तपस्वी थे, उनको राज पुरोहित बनाया और यह कहा कि महाराज आप इस सभा के सभापति बनो और इस बालक का निर्माण करो। ! महाराजा कुकुट मुनि महाराज जहाँ आध्यात्मिक वेत्ता थे वहाँ आयुर्वेद के प्रकाण्ड बुद्धिमान थे। उन्होंने आयुर्वेद की दृष्टि से राजा रावण के मस्तिष्क का अध्ययन किया और पुलस्त्य ऋषि महाराज से धीरे से कहा कि महाराजयह जो बालक है !, पुत्र है, युवा है, शक्तिशाली है, वैज्ञानिक भी बनेगा परन्तु यह राष्ट्र की राष्ट्रीयता में नहीं ला सकेगा और राष्ट्रीयता में लाने का अभिप्रायः यह कि राष्ट्र को कर्त्तव्यवाद में लाया जाएं, कर्त्तव्यहीन प्राणियों को कर्त्तव्यवाद में लाना, चरित्र को लाना यह राष्ट्रीयता के लिए अनिवार्य है। हे ऋषिवर ऋषियों का !मैं इसका राज्याभिषेक नहीं करूंगा। मेरे प्यारे !

हृदय, विवेकियं का हृदय निष्पक्ष होता है। तब महाराजा पुलस्त्य ने विचारा कि अब मैं क्या करूं। अब महाराजा भृंगु मुनि महाराज जो साण्डल्य गोत्रीय थे उनको सभापति बनाया और उनके द्वारा राज्याभिषेक हुआ। विचार यह कि हमारे यहाँ जो विवेकी पुरुष होते हैं वह स्पष्टवादी होते हैं। महात्मा कुकुट ने महाराज पुलस्त्य से यह कहा था कि तुमने यह समाज की हानि के लिए कार्य किया है, तुम पौत्र के मोह में आ गएं हो, कर्त्तव्यवाद का तुमने विचार नहीं किया। पुलस्त्य मुनिवर महाराज मौन हो गएं परन्तु ऋषि ने यह कहा कि लंका में मैं अग्नि अपने समक्ष दृष्टिपात करूंगा वह समय आ जाएगा। महर्षि कुकुट मुनि महाराज ने राजा रावण को कई काल में उपदेश दिया। विचार विनिमय यह है कि जो विवेकी पुरुष होते हैं, आध्यात्मिकवादी पुरुष होते हैं, चित्त को जानने वाले पुरुष होते हैं उनका जीवन निष्पक्ष होता है, महान् और पवित्र होता है।

आज मैं अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ विचार विनिमय यह कि दोनों प्रकार का विज्ञान होना चाहिए, दोनों की धारायें होनी चाहिए तब यह राष्ट्र और समाज ऊँचा बनेगा। यदि भौतिक विज्ञान रहा तो भौतिकता का दुरूपयोग होकर के समाज भ्रष्ट हो जाएगा, आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद दोनों सामान्यत्व होकर के इस समाज का उत्थान करें यह है हमारा आज का वाक्। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट करूंगा आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते हुए आध्यात्मिक और भौतिकवाद दोनों के ऊपर विचार विनिमय करते हुए चे जाएं। अब वेदों का पाठ होगा। कल समय मिलेगा तो कल मैं कुछ सूक्ष्म चर्चायें प्रकट करूंगा, कुछ विज्ञान की चर्चायें, कुछ मानवीयता की चर्चायें। आज का विचार समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। आर्य समाज नया नांगल

१३ 27 10 1973 पुष्प 24 वैदिक प्रवचन

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने

पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया।
विचार विनिमय यह कि परमात्मा को ब्रह्म कहते हैं। वह जो ब्रह्म है उसकी प्रतिभा इस संसार को प्रतिभाशाली बना रही है। जब हम यह विचारते हैं कि प्रकृति अपना कार्य कर रही है। उस महान् देव की चेतना से संसार अपने आँगन में रमण कर रहा (क्षेत्र) है ऐसा हमें प्रायः दृष्टिपात होता रहता है। क्योंकि हम विचारते हैं कि परम पिता परमात्मा इस संसार का नियन्ता और निर्माण वेत्ता भी है। कोई सांसारिक निर्माण वेत्ता निर्णय नहीं कर सकता कि मैंने इस वस्तु को निर्मित किया है। जैसे माता के गर्भ स्थल में शिशु होता है परन्तु माता को यह प्रतीत नहीं है कि निर्माणवेत्ता कौन है? अर्थात् किसने निर्माण किया है? इससे हमें दृष्टिपात होता है कि संसार के प्रत्येक पदार्थ का निर्माणवेत्ता वह देव है। मानव तो परमाणुओं का संघात कर सकता है, परमाणुओं को एकत्रित कर सकता है वायु मण्डल में। परन्तु यदि हम उसका मूल दृष्टिपात करते हैं तो मूल में हमें वह चेतना ही दृष्टिपात होने लगती है।
आज मैं अधिक विवेचना देने तो नहीं आया हूँ। केवल विचार विनिमय यह कि आज हम जब वैज्ञानिकों के मध्य में विराजमान होते हैं और वैज्ञानिकों से यह प्रश्न करते हैं कि आज जो वस्तु तुमने जानी है जैसे महर्षि भारद्वाज ने नाना प्रकार के विज्ञान को जाना था। परन्तु यदि हम यह जानना चाहते हैं कि मूल धारा क्या है? इसका प्रारम्भ कहाँ से होता है? तो वह वैज्ञानिक यही उच्चारण करता है कि यह अनादि है, हम तो एक स्थूल परमाणुओं को जानने का प्रयास करते हैं, मन्त्रों के द्वारा परीक्षण करते रहते हैं। वह जो मेरा प्यारा प्रभु है जो निर्माण वैत्ता है, जिसने संसार को निर्मित किया है मानव को निर्मित किया है। आज हम उस अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते रहें। मुनिवरोंदेखो !, चेतना से भिन्न कोई दूसरी वस्तु दृष्टिपात नहीं होती। चाहे वैज्ञानिक युग में चले जाओ वहाँ भी वह निर्माण वेत्ता और वह चेतना ही दृष्टिपात आते हैं। जब माता को ही यह ज्ञान नहीं है कि निर्माण वेत्ता कौन है? यह भी प्रतीत नहीं होता कि कैसा आकार बना है, माता यह भी नहीं जानती कि गर्भाशय में बालक का पालन पोषण कैसे होता है? कौन कौन सी नाड़ियों के द्वारा होता है? प्रायः यह विज्ञान तो हमारे यहाँ

है ऐसा कुछ कहा जाता है। और इसका समाधान भीकिया जाता है। परन्तु वास्तव में वह भोली माता नहीं जानती। अभिप्राय यह कि निर्माण वेत्ता वह चैतन्य देव है इसीलिए आज हम उस परम पिता परमात्मा की उपासना करते हुए नम्रता में परणित हो जाएं। आज कोई मानव शक्ति को प्राप्त करना चाहता है, प्रत्येक मानव की यह उत्सुकता रहती है कि हम शान्ति प्राप्त करें जिस शान्ति से मेरा अन्तरात्मा ऊँचा बनेगा। मेरे हृदय से विडम्बना संशय चली जाएगी ऐसा प्रायः प्रत्येक मानव के हृदय में आकांक्षा बनी रहती) है। मोक्ष के लिए कल्पना करता है प्रयत्नशील भी रहता है। परन्तु विचार विनिमय क्या कि मानव की यह आकांक्षा है, यह कैसे पूर्ण हो सके। इसके ऊपर भी तो मानव को अनुसन्धान करना चाहिए। मानव की पिपासा तो रहती ही है क्योंकि संसार में आज कोई मानव यह उच्चारण करने लगे कि मेरी पिपासा शान्त हो गई है तो यह वाक्य असम्भव सा प्रतीत होता है। क्योंकि जिस मानव की आकांक्षा समाप्त हो जाती है मानो यह संस्कार बन जाता है तो मानव मोक्ष के द्वार पर जाने के लिए तत्पर हो जाता है क्योंकि संस्कारों को उपलब्ध न करना, संस्कारों को न देना वही मार्ग प्रगति का कहलाता है। जो मानव प्रभु के समीप जाना चाहता है तो प्रभुमें नम्रता है !, प्रभु न्यायधीश है, प्रभु उदार है, स्वतः आनन्दमय है तो हमें उस आनन्द को प्राप्त करने के लिए सदैव उद्यत रहना चाहिए। जो आनन्दमय प्रभु है, जो आनन्द में रमण करने वाला है, स्वतः ही आनन्द है आनन्द में रमण भी नहीं करता, आज हमें भी आनन्द को जानने के लिए सदैव उद्यत रहना चाहिए और हम स्वतः आत्मा के आनन्द को जानने के लिए सदैव तत्पर रहें।

मेरे प्यारे आज हमें इस आनन्द को प्राप्त करना है जिस आनन्द के लिए प्रत्येक ! मानव प्रत्येक देव कन्या अपने जीवन में सदैव लालायित रहती है और यह आकांक्षा बनी रहती है कि आज मैं आनन्द को प्राप्त करना चाहता हूँ। प्रभु के आँगन में उसकी लौरियों का पान करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे वह स्वतः आनन्द है। आज हमें भी ! आनन्दमय बनना है। हमें नम्र बनना है। जिस काल में समाज में नम्रता आती है,

उसी काल में यह समाज यह राष्ट्र उन्नति को प्राप्त होता रहता है।
बेटा मुझे साहित्य की चर्चा स्मरण आती रहती हैं। एक महाभारत के काल को कहा ! जाता है द्वितीय एक भगवान् राम का काल है। उसके मध्य का काल भी रहा है। परन्तु दोनों कालों के साहित्य में ले जाना नहींचाहूँगा। संक्षिप्त परिचय देना चाहता हूँ। वह परिचय क्या कि मानव को अधिकार में परणित नहीं होना चाहिए। अधिकार तो मानव को स्वतः प्राप्त हो जाता है। वह अधिकार मानव को उच्चारण करने से, अधिकार के लिए संग्राम करने से अधिकार कदापि प्राप्त नहीं होता। देखो,मानव में !, समाज में अन्धकार की आशंका रहती है। एक स्थल है कि जो मानव नम्र है, जो मानव बुद्धिमान है, जो मानव अपने हृदय के उद्धार चाहता है, जो संसार में उदासीन रहना चाहता है, वह संसार को विडम्बना में जाना नहीं चाहता, वह नम्र बन करके सेवक बनना चाहता है।
मेरे प्यारे !आज हम इन वाक्यों पर विचार विनिमय करें। देखो, महाभारत का काल हुआ। महाभारत के काल में प्रारम्भ से लेकरके अन्तिम तक अधिकार के उफपर विशाल संग्राम होता रहा। क्योंकि विधाताओं के जब भी संग्राम होते हैं जब विधाता विधाता में त्याग की प्रवृत्ति नहीं रहती। त्याग की प्रवृत्ति न रहने के कारण मानव विडम्बना में परणित हो जाता है। मानो अपने को सजांतीय बनाने लगता है। परन्तु जिस समय नम्र बन जाता है और यह जानता है कि संसार में मेरा अस्तित्व क्या है? मेरे शरीर का जो निर्माण हुआ है यह क्यों हुआ है? इसका मूल कारण क्या है? इसका निर्माण वेत्ता कैसा है? इन वाक्यों को विवेकी पुरुष विचार करता है तो वह सेवक बन जाता है। उसे संसार की विडम्बना अथवा संसार के जो पदार्थ हैं उसे मिलाते नहीं हैं। कर्त्तव्यवाद में अपने राजसिक विचार बना लेता है। यह कहता है कि मैं स्वाभिमान के लिए अपना कर्त्तव्य कर रहा हूँ। स्वाभिमान को उच्चारण करना मानव के लिए सहज है परन्तु यह अभिमानी बनना मानव के लिए बहुत ही दुर्लभ कहलाया जाता है। स्वाभिमानी पुरुष कौन है? वह जो अपनेपन को जान लेता है, अपने में प्रतिष्ठित होता है वह स्वाभिमानी बन जाता है। रहा यह कि संसार के पदार्थों में वह स्वाभिमानी बन जाएं तो उसकी

प्रतिभा, उसकी मानवता का जो विशेषगा है वह मानवता में समाप्त हो जाता है।

मुनिवरोंदेखो !, महाभारत के काल में पूर्व ही जब लाक्षागृह का निर्माण हुआ था तो वह विदुर की गुप्त सहायता से पाँचों विधाता जीवित वहाँ से बचकर चले गये। वे भ्रमण करते हुए पांचाल राष्ट्र में जा पहुंचे, वहाँ जाने के पश्चात् महाराजा द्रुपद के यहाँ स्वयंवर होने वाला था। यह कैसा स्वयंवर था? उनकी कन्या थी और उन्होंने अपने मन में यह संकल्प किया था कि मेरी पुत्री का अर्जुन के द्वारा संस्कार होना चाहिए उनके अपने गृह में यह चर्चाएं होती रहतीं। स्वयंवर की भावना राजा के हृदय में भगवान कृष्ण की प्रेरणा से प्रतिष्ठित हुई। भगवान कृष्ण ने यह कहा कि हे राजन् तुम स्वयंवर करो ! और तभी तुम्हारे मनोनीत कामना पूर्ण हो सकती है। ऐसा नहीं हो सकता कि पाण्डव की मृत्यु हो जाय। !पुत्रोंमेरा हृदय नहीं कहता है परन्तु जब तुम स्वयंवर करोगे तो हो सकता है कि तुम्हारी इस विशाल सभा में कहीं से पाण्डव पुत्र भी भ्रमण करते हुए आ जाऐं। यह निर्णय दे करके भगवान् कृष्ण ने अपने स्थान को प्रस्थान किया।

ऐसा कहा जाता है कि महाराजाद्रुपद के यहाँ के वैज्ञ !ानिकों ने एक यन्त्र का निर्माण किया। वह एक चक्र था, उस चक्र में एक मछली थी। उसमें एक सूक्ष्म सा छिद्र था, उस छिद्र में शस्त्रों से मछली के नेत्रों का छेदन करना था उनकी प्रतिज्ञा थी कि जो नेत्रों को छेदन कर सकता है वह मेरी कन्या का संस्कार कर सकता है। ऐसा कहा जाता है कि एक क्षण समय में यह जो चक्र था वह सात हजार पांच सौ बार चक्र पूर्ण करता था और उसमें एक छिद्र था, जिस छिद्र में से होकर मछली के नेत्रों का छेदन करना था। मुझे वह वाक्य भली भांति स्मरण आता रहता है। वहाँ भ्रमण करते हुए उस समारोह में जहाँ नाना राजा आए हुए थे वहाँ ये पांचों पाण्डव भी माता कुन्ती सहित आ पधारे। माता कुन्ती से यह कहा गया कि हे माता हम तो इस स्वयंवर को दृष्टिपात ! करेंगे। माता ने कहा नहीं पुत्र ऐसा न करो क्योंकि यह एक महान् कार्य है। राजा महाराजाओं का कर्त्तव्य है। तुम्हारे द्वारा न अस्त्र है न शस्त्र हैं। तुम यहाँ क्या करोगे? अर्जुन ने कहा नहीं माता आपके लिए हम एक स्थान नियुक्त कर देते हैं। उन्होंने माता को एक कुम्भकार के यहाँ ठहरा दिया। कहा जाता है कि जब वह इस सभा में आ

गएं तो माता कुन्ती ने यह कहा था कि हे पुत्रोसंग्राम हो या किसी प्रक !ार का विवाद हो तो तुम उसमें भाग नहीं लेना। उस समय अर्जुन बोले माता यह कार्य तो हमारा ! है तुम कैसे वाक्य उच्चारण कर रही हो। मेरा तो यह अभिमान है, मेरा तो यह कर्त्तव्य है, मुझे तो अधिकार है कि मुझे उस मछली का छेदन करना है। उस समय माता ने कहा नहीं पुत्र, वे जो तुम्हारे विधाता दुर्योधन इत्यादि हैं उन्हें आघात करने का अवसर प्राप्त न हो। ऐसा सोचो विचारो। उन्होंने कहा नहीं मातेश्वरी, ऐसा नहीं होगा। माता ने अपने पुत्रों !की अन्तरात्मा में जो धारणा थी उसकी समझ कर यह कहा हे मेरे पुत्रो ! तुम वास्तव में मेरे पुत्र हो। क्षत्रिया जो माताएं होती हैं वे पुत्रों के लिए कदापि ! भी कायरता की वार्त्ता नहीं करतीं। वे सदैव साहस देती रहती हैं और वीरता के को !मन्तव्य के अपने विचार प्रगट कराती रहती हैं। माता कुन्ती ने अपने प्यारे पुत्रों गर्भाशय में ही बलिष्ठ बनाया था। तुम्हें प्रतीतहोगा जिस समय अर्जुन माता के गर्भस्थल में था तो उन्होंने इन्द्र की उपासना की थी, कर्म देवता की उपासना की, वायु की उपासना की। जिस समय धर्मराज युधिष्ठिर माता के गर्भ स्थल में था नौ माह तक धर्म का आचरण किया, सत्यवादी रही सदैव दर्शनों उपनिषदों का अध्ययन करती रहती थीं। विचार विनिमय यह कि जब माता इस प्रकार की होती हैं तो उन्हें संग्रामों से भी कोई भय नहीं होता। वे क्षत्रिया होती हैं। ऊर्ध्व गति में उनका गर्भाशय हर्ष ध्वनि करता है। जिस समय प्यारा पुत्र जिस वाणी से जिस महता से उनका निर्माण किया उस महता पर वह सदैव दृढ़ता को प्राप्त होते हैं।

मेरे प्यारेऐसा कहा जाता है कि जिस समय माता ने आश्वासन दिया !, भीम और अर्जुन ने यह कहा कि माता जी कुछ हम कर पायेंगे वह हमारा विषय है। आपका विषय नहीं। आप हमें दृष्टिपात कराती रहना। जब तुम ब्राह्मण के पुत्र की रक्षा करा सकती हो और मुझे वेद को प्रदान कर सकती हो तो क्या माता हम स्वयंवर में आकर के शान्त हो जाएं। यह कैसे हो सकता है? यह वार्त्ता हुई और वह वहाँ से भ्रमण करते हुए स्वयंवर में आ पहुंचे जहाँ राजा बारी बारी से मछली को छेदन करने का प्रयास

कर रहे थे।

कर्ण ने यह विचारा कि मैं इसे छेदन करूंगा। महारानी द्रौपदी ने यह कहा हे कर्ण ! तुम्हें इसका अधिकार नहीं है। महारानी कन्या की वार्त्ता का श्रवण करने के पश्चात् यह तुम क्या वाक्य उच्चारण कर रही हो !कर्ण ने कहा कि हे देवी? मुझे क्यों अधिकार नहीं है? उन्होंने कहा कि तुम्हारा जो जन्म है उसका प्रतीत नहीं तुम किस प्रकार उत्पन्न हुए हो? इसलिए तुम्हें अधिकार नहीं दूंगी। जब विदुषी ने यह वार्त्ता प्रकट की उन्होंने वहीं अपने अस्त्रों को त्याग दिया और क्रोधित हो करके अपने कक्ष में जा विराजे। जब कोई क्षत्रिय ऐसा न रहा तो महाराजा द्रुपद ने नाना वार्त्ता प्रकट कीं। उस समय भीम ने विधाता धर्मराज से कहा कि अब नहीं रहा जाता कि मैं इस मछली को छेदन न करूं। अर्जुन ने भी यही शब्दा कहा और जब धर्मराज की वार्त्ता को न स्वीकार करते हुए उन्होंने तरकश को अपने आँगन में धारण कर लिया जिसे महाराजा कर्ण ने सभा में त्याग दिया था। उसे ले करके जब मछली को छेदन करने के लिए तत्पर होकर जल को निहार रहे हैं और मछली का चक्र ऊर्ध्व गति में चल रहा है और जब उन्होंने अपने अस्त्रों शस्त्रों का प्रहार कियातो मछली का छेदन हो गया। छेदन हो जाने के पश्चात् महाराजा दुर्योधन ने यह विचारा कि ये तो पाण्डव हैं। दुर्योधन के दल के साथ उनका संग्राम होने लगा। पांचों विधाताओं ने सर्व राजाओं को परास्त (पाण्डवों का) कर दिया। परास्त करने के पश्चात् महारानी द्रौपदी को अपनी स्थली पर ले आए जहाँ माता कुन्ती विराजमान थी। माता कुन्ती द्रौपदी को दृष्टिपात करके हर्ष ध्वनि करने लगीं। उन्होंने कहा पुत्र तुमने वही किया जो मेरी इच्छा थी। उन्होंने कहा कि माता यह तो वास्तव में तुम्हारी तो इच्छा नहीं थी। परन्तु हमारे जो प्रारब्ध हैं, हमारा जो संस्कार है उसे कैसे नष्ट किया जा सकता है।

मेरे प्यारेराजा द्रुपद ने यह जान ल !िया कि ये जो पांचों साधु हैं, पांचवों जो यह ऋषि रूप में विराजमान हैं, उनके स्थल को उनके वस्त्रों को दृष्टिपात किया गया। प्रातः काल में पांचों विधाता आते और महाराजा द्रपुद कीसभा में विराजमान होते और सायंकाल को चले जाते। परन्तु अब यह निर्णयकरना उनके लिए दुष्कर हो गया कि

यह क्या है? मैं इनको जान नहीं पाया। मेरे प्यारे कुछ समय के पश्चात् महाराजा ! कृष्णा आ पहुंचे। महाराजा कृष्णा ने कहा, तुमने अब तक नहीं जाना। यह वे ही पांचों पाण्डव पुत्र हैं। इतना उच्चारण करके उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया। महाराजा द्रुपद जब उनसे परिचय लेने लगे तो उन्होंने कहा मुझे धर्मराज कहते हैं, अर्जुन ने कहा मुझे अर्जुन कहा जाता है, बारी बारी सबने अपना परिचय दिया। माता कुन्ती को राष्ट्र गृह में प्रविष्ट कराया गया। निमन्त्रण दे करके उनका संस्कार हुआ। बेटा मुझे स्मरण है ! महारानी द्रौपदी का जो सं्स्कार था वह अर्जुन के साथ हुआ। परन्तु आजकल उसको पांचों पतियों की अर्धांगनी भी कहा जाता है। पांचों पतियों का अभिप्राय हमारे यहाँ परम्परा से ही माना जाता है। पति कहते हैं जो रक्षा करने वाला हो। वे पांचों ही उसकी रक्षा करते थे। वह इतनी विदुषी थी, इतनी महतो वेद में रमण करने वाली थी। उन्होंने महर्षि सामन्तक महाराज से वेदों की शिक्षा का अध्ययन किया था। वह विदुषी सदैव अपनी मानवता में रमण करती रहती थी।

मेरे प्यारे कहा जाता है पांचों ही द्रौपदी की रक्षा करते थे। परन्तु पत्नी वह केवल ! अर्जुन की ही कहलाती थीं। क्योंकि अर्जुन के साथ ही उनका संस्कार हुआ, उनकी प्रतिभा भी उनके साथ में रमण करती रहती थी। मुझे स्मरण आता रहता है कि धर्मराज युधिष्ठिर का जो संस्कार महाराजा श्वेतकेतु की कन्या से हुआ था। महाराजा अर्जुन के कुछ और भी संस्कार हुए परन्तु वे संस्कार केवल संतान तक ही सीमित रहते थे। जैसे वह पाताल पुरी में अस्त्रों शस्त्रों की विद्या को ग्रहण करने के लिए पहुंचे वहाँ उनका सम्बन्ध उलूपी देवी से हुआ। उन्होंने केवल एक सन्तान को जन्म दिया। जिसको बभ्रुवाहन कहा जाता है। इसी प्रकार महाराजा भीम सेन का हिडम्बा के साथ संस्कार हुआ। देवनांग ऋषि की कन्या के साथ में नकुल का संस्कार हुआ। इसी प्रकार आवधूत नाम के राजा की कन्या रोहिणी का संस्कार सहदेव के साथ हुआ। इसी प्रकार पांचों की अपनी पत्नियां थीं। पांचों अपने अपने कक्ष में रहते थे। परन्तु मैं तुम्हें यह वाक्य भी उच्चारण किए देता हूँ पुत्र तुम्हें प्रतीत भी होगा कि जब इन्हें वन प्राप्त हुआ था। उस ! समय महारानी द्रौपदी ही उनके साथ में थीं। क्योंकि वे जानती थीं कि यह मेरी

सहायता करते हैं तो मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इनके द्वारा तपस्वी बनूं, ऐसी मुझे भी तपस्या करनी है। जैसे इनका आपत् काल है मेरा भी आपत् काल होना चाहिए।

मैं इन वाक्यों में अधिक नहीं जाना चाहता हूँ, विचार विनिमय यह कि जो अधिकार की भावना द्वापर के काल में थी इस अधिकार की भावना में संसार को एक मानवता से विचलित कर दिया, मानवता से दूर कर दिया।

एक पक्ष हमारे यहाँ त्रेता के काल का आता है। माता पिता की आज्ञा प्राप्त हो रही है और आज्ञा सेभगवान् राम ने अपने राज्य को त्याग दिया और यह कहा कि इसमें मेरा कोई अधिकार नहीं है, मुझे तो मेरी माता ने वन दियाहै केवल तपस्या करने के लिए, मुझे तपस्वी ही जीवन व्यतीत करना है। मेरे प्यारेयह भगवान राम ! का जीवन, वे भयंकर वन में जा रहे हैं। जब भरत आते हैं और भरत से जब माता ने यह कहा कि हे पुत्र राष्ट्रीय स्थली पर विराजमान हो जाओ तो उन्होंने कहा कि माता यह तो ! तुम्हारा !अधिकार मेरे विधाता राम का है। मेरा कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने कहा पुत्र अधिकार तो नहीं है परन्तु राष्ट्र को कोई न कोई भोगेगा। उन्होंने कहा कि इसे वह भोगेगा जिसका अधिकार है और जो इसके लिए योग्य होगा। माता मैं इसके योग्य ! नहीं हूँ। भगवान् राम ही इसके योग्य हैं। भरत राम से मिलने भयंकर वन में पहुंचे। विधाता से प्रार्थना की और उनके चरण पादुका ला करके राष्ट्र का पालन करने लगे। विधाता हों तो ऐसे हों। यह आदर्श हमारे समीप है, वे एक कन्दरा में रहते हैं, विश्राम करते हैं, ऋषि मुनि आते और यह कहा करते हे भरतयह तुम क्या कर रहे हो !? उन्होंने कहा कि मेरे विधाता की, मेरे प्रभु की आज्ञा है कि मेरा जो बड़ा विधाता है यह पर्वतों की शय्या पर रमण करता है उनसे निचले स्थान में मेरा आसन रहेगा, यह मेरी शोभा है अन्यथा मेरी जो शोभा है वह अधिक हो जाएगी। विचार विनिमय किया कि एक तो वह नम्रता है, वह आदर्श है, वहाँ त्याग है, जहाँ त्याग भावना होती है, जहाँ तपस्या होती है वहाँ मानवता का आदर्श होता है, विचित्रता होती है और जहाँ कर्त्तव्य के लिए मानव अधिक रहना चाहता है और यह चाहता है कि मैं कर्त्तव्य का पालन कर

रहा हूँ।
कर्त्तव्य के अभाव में तो अधिकार ही रह जाता है। वह चाहे अनधिकारी हो। परन्तु अधिकार के लिए संग्राम करता है, विधाता विधाताओं का विनाश हो जाता है। इस समाज में, उस काल में, वह काल बड़ा भयंकर और नष्ट भ्रष्ट होने वाला होता है जहाँ प्रत्येक मानव अपने अधिकार के लिए ही जीवन यापन करता है। चाहे अनधिकारी हो उसमें तो अधिक भावना रहती है, नम्रता नहीं होती, तपस्या नहीं होती। उसका परिणाम यह होता है कि संसार में विधाता विधाताओं में क्या गृह गृह में संग्राम हो जाते हैं। रक्त भरी क्रान्तियों का सञ्चार हो जाता है। उसकाल में समाज भ्रष्ट हो जाता है और वर्णसंकर की स्थापना हो जाती है। परिणाम क्या? मानव को तपस्वी बनना है। कैसा तप करना है? जैसा भगवान् राम ने तप किया माता कौशल्या केवल तप करती थीं ! जब उन्होंने भगवान् राम को जन्म दिया।
मेरे प्यारे तुम्हें स्मरण होगा जब महाराजा विश्वामित्र भगवान् राम लक्ष्मण कोयज्ञ को ! पूर्ण कराने के लिए ले जाने लगे उस समय राजा दशरथ को मोह आ गया और कहा !कि हे ऋषिवर मैंने इस चौथेपन में इन पुत्रोंको प्राप्त किया है !, मैं इन पुत्रों को ! त्यागना नहीं चाहता हूँ। उस समय माता कौशल्या ने क्या कहा था। राष्ट्र सभा में? भगवन्यह क्या कर रहे हो !, तुम्हें इस प्रकार का मोह क्यों है? मैंने तो आज के दिवस के लिए अपने पुत्र को जन्म दिया था। यदि आज भी राज्ञ यज्ञों की परम्परा को ऊँचा नहीं बना सकता मानो ऋषि के याग को पूर्ण नहीं करा सकता तो मेरे गर्भाशय को धिक्कार है। मेरे प्यारे एक माता वह कहलाती है जो अपने प्यारे पुत्र को तपस्वी के ! साथ में रमण कराती है उसे संकोच नहीं हो रहा है। यह एकआदर्श हमारे समीप है, हे मानवतुम तपस्वी बनो !, बिना तप के यह राष्ट्र यह समाज यह मानवता कदापि भी ऊँचा नहीं बना करती।
मुनिवरों अधिकार के लिए भी मानव को संग्राम करना चाहिए परन्तु पहिले अपने ! मनुष्यत्व का अधिकार जान लेना चाहिए। हमारा मनुष्यत्व उस अधिकार को स्वीकार करता है या नहीं परन्तु जब हमारा मनुष्यत्व, हमारी, मानवता अधिकार में परणित नहीं

है। हमारा स्वयं का अन्तरात्मा इस वाक्य को सत्य उच्चारण करने के लिए तत्पर नहीं है, तो हम आगे कैसे सफल हो सकेंगे। परिणाम यह कि तपस्या, प्रभु का ज्ञान, विवेक मानव को सत्यवादी बनाता है। और सत्यवादी बनने के पश्चात् उसमें विवेक आता है। और विवेक आने के पश्चात् नम्रता आती है। और नम्रता आने के पश्चात् वह त्यागी बन जाता है। वह समानता में धर्म को दृष्टिपात करता है। प्रत्येक स्थली में धर्म ही धर्म उसके लिए रह जाता है, बिना धर्म के कोई भी मानव इस संसार से उत्तीर्ण नहीं होता। जब हम यह विचारने लगते हैं कि कहाँ तो यह माता का आदर्श है कहाँ वह माता का आदर्श है, दोनों ही माता के आदर्श हैं। मेरे प्यारेवहाँ वीरता का आदर्श है !, वहाँ तपस्वी का आदर्श है, वहाँ नम्रता का आदर्श है और वहाँ केवल राष्ट्रीय विचारों का आदर्श है। आज हमें राष्ट्रीय विचारों में इतना परणित नहीं होना है जितना तपस्वी बनना है, वेद का अध्ययनशील बनना है।

वे जो विदुषी द्रौपदी थीं वे सदैव वेदों का ज्ञान गाती रहतीं। एक समय मध्य रात्री का समय था अर्जुन और द्रौपदी दोनों विराजमान थे, उन्होंने एक वेदमन्त्र उच्चारण किया और उच्चारण करते हुए द्रौपदी ने कहा कि प्रभु आपको प्रतीत है यह वेदार्थ क्या कह ! रहा है। उन्होंने कहा कि देवी मैं तो नहीं जानता, तब उन्होंने कहा कि यह वेद का मन्त्र यह कह रहा है कि इस समय वैज्ञानिक बनना चाहिए। संसार में विज्ञान के तत्त्व को जानना चाहिए। अर्जुन ने इस वार्त्ता को स्वीकार किया, उन्होंने कहा कि भगवन् वेद ! तू वैज्ञानिक बनकर अग्नि का अग्म्याधान कर !का मन्त्र कह रहा है हे मानव, जब अग्नि का अग्न्याधान करेगा तो वे जो परमाणु अन्तरिक्ष में जाते हैं नम्र बन करके देवताओं की हवि बनते हैं उस अग्नि को जानता हुआ तू संसार में वैज्ञानिक बन। वे सदैव उपदेश करती रहती थीं और उसका परिणाम यह हुआ कि उस पत्नी ने, उस विदुषी ने अर्जुन को वैज्ञानिक बना दिया। पति पत्नी का संसार में कोई उद्देश्य है तो मानो वह उसकी महता, ऊँचा वैज्ञानिक बनना, उसको मानवता में परणित होना, जीवन में क्रियात्मक आ जाना यह उसका कर्त्तव्य है।

मुनिवरों एक समय भगवान् कृष्ण ने भयंकर वनों में याग करते हुए द्रौपदी से कहा !

जहाँ वेदों में तुम रमण करती रहती हो !कि हे देवी, जहाँ सदैव भयंकर वनों में यागों की प्रतिभा चलती रहती है तो याग का स्रोत क्या है? याग किसे कहते हैं? उस समय द्रौपदी ने कहा कि महाराजा आप इतने महान् हैं और आप मुझसे प्रश्न कर रहे हैं। ! क्या मेरी परीक्षा ले रहे हैं? उन्होंने कहा कि नहीं देवी मैं तुम्हारी परीक्षा नहीं ले रहा हूँ। परन्तु मेरा तो प्रश्न है। उस समय द्रौपदी ने कहा कि याग का अभिप्राय है कि हम हवि देते हैं और किसे हवि देते हैं, हवि हम देवताओं को प्रदान करते हैं। देवता वह वस्तु त्यागते हैं हमारे लिए जिससे अन्न की वृद्धि के लिए वृष्टि करते हैं। याग से पर्जन्य वर्ष) होता है उसी पर्जन्य से वृष्टि (बादल)ाहोती है (, उसी वृष्टि से अन्न की उत्पत्ति होती है। उसी को हम पान करते हैं, हमारे जीवन का सञ्चार होता है। हे भगवन् ! आप तो सर्व जानते हैं इसको देव पूजा कहते हैं। देव पूजा का अभिप्राय यह कि देवताओं में जो गुण हैं उन्हीं ऐसे ही गुणों को हमें धारण करना चाहिए।जैसे अग्नि है वह प्रदीप्त रहती है, जब तक वह प्रदीप्त रहती है तो चाहे कोई मृगराज हो कोई प्राणी हो अग्नि के समीप नहीं आ पाता। इसीलिए मानव को काम, क्रोध, मद, लोभ व मोह से इतना दूर रहना चाहिए, ज्ञान रूपी अग्नि का इतना सञ्चार हृदय में रहना चाहिए जिससे काम, काम, क्रोध, मद, लोभ व मोह इस मानव के ज्ञान रूपी अग्नि के समीप न आ सकें। जैसे मृगराज अग्नि के समीप नहीं आते, नाना प्राणी नहीं आते, इसी प्रकार मानव के हृदय में इतनी अग्नि प्रदीप्त रहनी चाहिए।

रहा यह कि जैसे आपो है वह शीतल है, सोम कहलाता है। यह जो संसार है यह जल रूप माना गया है। जल से संसार की उत्पत्ति है, जब हम यह विचारते हैं कि जलों से ही संसार की उत्पत्ति है, माता के गर्म स्थल में बाल का निर्माण होता है वह भी एक जल स्वरूप माना जाता है। उस जल स्वरूप माता के गर्भ स्थल में सथापित हो जाता है सूर्य की नाना किरणों के द्वारा, चन्द्रमा की कान्ति के द्वारा, अग्नि के द्वारा उसे शुष्क बनाया जाता है। उन कणों को, उन परमाणुओं को जो परमाणरु विद्यमान हैं उन परमाणुओं का निर्माण किया जाता है, वे परमाणु जहाँ भी हैं वहीं की स्थली पर स्थिर किया जाता है। तो हे प्रभुवह मानो एक जल स !्वरूप है, जैसे जल अपने आप ही

स्वतः सुगठित हो जाता है, नाना प्रकार परमराणुओं को लेकर के नाना प्रकार की धातुओं को लेकर के यह माता के गर्भ स्थल में हम जैसी बुद्धियों का निर्माण हो जाता है। तो प्रभुहमें भी संसार में इन्हीं गुणों को धारण करते हुए !, संसार में अपनी वाणी के द्वारा अपने ज्ञान के द्वारा, अपनी मानवता के द्वारा संसार को सुगठित करना चाहिए। मेरे प्यारेइसी प्रकार जैसे अन्तरिक्ष है उसमें सर्व वस्तु !, सर्व परमाणु लय हो जाते हैं, इसी प्रकार मानव के यहाँ सर्व ज्ञान इसमें लय होना चाहिए सर्व शब्दावली रहनी चाहिए सर्व विज्ञान रहना चाहिए जिससे वह अन्तरिक्ष के विज्ञान को जान सके और उसकी सूक्ष्म से साकार रूप में लाने का प्रयास करें। देवताओं के गुणों को अपनाना है जैसे सूर्य प्रकाशमान रहता है, चन्दमा सौम्य बन करके रहता है। ऐसे ही मानव को उन गुणों को धारण करते हुए इस संसार सागर से पार होने चाहिए। विचार विनिमय क्या कि सर्वत्र देवताओं को हम धारण करें। हवि देने का अभिप्राय यही है कि हम अपने में, अपने स्वतः अपनेपन को जानते हुए इस संसार सागर को पार होते हुए हम नम्र बनें, त्यागी बनें, तपस्वी बनें। क्योंकि त्याग और तपस्या में आनन्द है और उसी आनन्द को प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या संसार में चाहता है। और वह आनन्द उस काल में प्राप्त हो सकता है। जैसे प्रभु आनन्द युक्त हैं इसी प्रकार हे मानव तू अपनी आत्मा में भी ! आनन्द के लिए सदैव उत्सुक रहता है। अपनी आत्मा को जान। आत्मा केवल्प रह करके परमात्मा से इसकी सन्धि हो जाती है तो आत्म आनन्द में विचरण करने लगता है। उसी आनन्द को प्राप्त होते हुए इस संसार रूपी जो सागर है जो मान अपमान वाला जगत् है जहाँ सुखद का कोई पदार्थ नहीं हो पाता उससे मानव को पार होना चाहिए।

आओ, मेरे प्यारेआज का विचा !र क्या? मैं अधिक विवेचना तो प्रकट नहीं करूँगा। विचार विनिमय यह कि हम परम पिता परमात्मा की आराधना करते हुए हमें साहित्यिक तत्त्वों के उपर विचार विनिमय करना चाहिए। महारानी द्रौपदी ने यह कहा कि महाराज ! मैं तो योग को ऐसा ही जानी हूँ कि याग कहते हैं जब मानव अपनी प्रवृत्तियों का अनुसरण करता है और उन पर अनुशासन करता है वह याज्ञिक पुरुष होता है। हमारे

यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के याग हैं। सर्वत्र यागों का अभिप्राय यह है कि याग कहते हैं सूचरित्र को, जब मानव चरित्रवान बनता हुआ अनुशासन में रहता हुआ अपने जीवन को हिंसा से रहित होकर कर्म करता है उसका नाम याग कहलाया जाता है।

याग का विचार हमारा समाप्त होने जा रह है। मुझे समय मिलेगा शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। कल मेरे प्यारे महानन्द जो भी कुछ दो शब्दों की !विवेचना करेंगे। आज का विचार समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

१४ 28 10 1973 पुष्प 24 महारानी द्रौपदी केवल अर्जुन की पत्नी

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, वैद मन्त्रों का पठन पाठन किया।

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा दे रहे हैं कि यागों के सम्बन्ध में कुछ विचार व्यक्त ! किए जाएँ। याग के सम्बन्ध में तो हम प्रायः नित्य प्रति हो उच्चारण करते रहते हैं और याग से पृथक संसार की कोई वस्तु या वाक्य है ही नहीं। जब हम यह विचारते हैं कि हमारा प्रत्येक वाक्य याग है, हमारी वाणी से जो कार्य हो रहा है वह याग है। परन्तु जो शुद्ध पवित्रता से गुंथा हुआ विचार है वह याग कहलाता है। आज हम याग में परणित होते चले जाएँ। हम उस समिधा को अग्न्याधान के लिए चयन करते हैं जिस समिधा से अपनी अग्नि को प्रदीप्त करता है। हे यज्ञमान तू उस अग्नि को प्रदीप्त कर ! तू यज्ञ का अधिपति है। तू !जो इस संसार को प्रकाशमान बना रही है। हे यज्ञमान उस अग्नि को अपने धारण कर जिस अग्नि के धारण करने से तेरी आंतरिक अग्नि जागरूक होकर क े तू इस संसार सागर से पार होता चला जाए।

आज मैं कोई अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय यह है कि हम सदैव यागों में परिणाम होते चले जाएँ। प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या को प्रायः याग करना चाहिए। एक मेरी पुत्री है वह अपने गृह में याग कर रही है। अथवा अपने गर्भस्थल में बालक को विचार दे रही है और याग भी करती है तो वह माता संसार में याज्ञिक कहलाती है। याग का अभिप्राय है निर्माण। अपने विचारों को शुद्ध रूपों से निर्माण

करना और उन विचारों के अनुकूल आगे आने वाला जो समाज है, आगे आने वाली जो सम्प्रदा है उसे हमें याग में परणित करना है। संसार में प्रत्येक मानव याग कर रहा है, जब मानव अपनी आत्मिकता को धारण करता है आत्मा बलिष्ठ होता है, उसी आत्मा की जो वेदना होती है, जो एक धारा है वह मानव को एक प्रतिभा में परणित कराती रहती है। विचार विनिमय यह कि आज हम उस महान् अग्नि के ऊपर और अपने मानवीय यागों के ऊपर विचार विनिमय करते चले जाएँ। क्योंकि वह हमारा याग है।

एक भौतिक विज्ञानवेत्ता है वह नाना परमाणुओं को एकत्रित कर रहा है, अपनी विज्ञानशाला में नाना प्रकार के वैज्ञानिक यन्त्रों को निर्धारित करता है अथवा उनका निर्माण करता है। जब वह वैज्ञानिक इस विज्ञान का सदुपयोग करता है, उसको सूक्ष्मता से साकार रूप देता है तो यह उसका एक महान् विचार है, उसकी महत्ता है। उसकी विचित्रता उसके वचनों में, उसकी धाराओं में निहित हो रही है। वह विज्ञानवेत्ता लोकों में जाने के लिए तत्पर है। परन्तु उसे यह प्रतीत नहीं कि तेरे प्राण इस शरीर में रहेंगे अथवा नहीं। परन्तु वह उड़ान उड़ने के लिए तत्पर है। एक विज्ञानवेत्ता याग कर रहा है। परन्तु यदि उस विज्ञान का सदुपयोग हो जाए तो वह एक महान् याग कहलाता है। हम याज्ञिक पुरुष बनें और हम प्रत्येक प्रकार का याग करें। जिस प्रकार का हम याग करें उसी प्रकार की धरा मन में होनी चाहिए। उसी प्रकार का संकलन होना चाहिए। उसी प्रकार की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। जिससे हम परम पिता परमात्मा के क्षेत्र में अपने सूक्ष्म विचारों का साकार रूप देकर के संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। अब मैं अधिक विवेचना प्रकट नहीं करूँगा। मेरे प्यारे महानन्द जी भी अपना विचार ! व्यक्त करेंगे क्योंकि इनकी एक पिपासा रहती है, मन में एक भावना रहती है कि मैं भी अपने शब्दों को उच्चारण करूँ जिन शब्दों में मानवता हो, निर्माण हो। राष्ट्रीयता हो। हिंसा से रहित विचार हों। अहिंसा से गुँथे हुए हों। जैसे प्रातः काल का सूर्य रात्री को समाप्त करने में वेदनित रहता है इसी प्रकार जो जिज्ञासु पुरुष होते हैं (पीड़ित), जो आत्मिकता को और धर्म को स्थापित करना चाहते हैं उनके हृदयों में भी इसी प्रकार की वेदना होती है अथवा उसी (पीड़ा)वेदना के साथ में अपनी वेदना से विचलित न

हो जाएँ। अब मैं अपने प्यारे महानन्द जी से उच्चारण करने जा रहा हूँ कि वह अपने शब्दों को विवेचना करें।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् मया रथम दधिमाँ रेवम् अस्वाव्रतं दधिमा चाम्इति मान दवं धर्मांः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेवमेरे ! भद्र ऋषि मण्डल आज मेरे !मेरे ऋषि समाज ! पूज्यपाद गुरुदेव ने पुनः से कुछ समय प्रदान किया। उसमें अपने कुछ विचार नियुक्त करना चाहता हूँ और वे हमारे विचार क्या हैं? उन विचारों पर टिप्पणियाँ भी की जाती हैं और करनी भी चाहिए। क्योंकि बिना टिप्पणी के किसी शब्द की सार्थकता की प्रतिभा मानव के समीप नहीं आ पाती। तो हमारा विचार यह है कि आज हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के लिए यह वाक्य प्रकट कराने आए हैं। वास्तव में तो इनके समीप हमारा कोई शब्द महत्वदायक नहीं है। क्योंकि इनका जो विचार है वह इतना मानवता से गुन्था हुआ है, इतना राष्ट्रीयता से गुंथा हुआ है कि उसके ऊपर हमारा कोई शब्द उच्चारण करना हमें शौभनीय नहीं। परन्तु इसके पश्चात् पूज्यपाद गुरुदेव ही यह कहा करते हैं सुन्दर वाक्यों की पुनरुक्ति होना भी कोई दोष नहीं है। , तो विचार विनिमय यह कि जैसा पूज्यपाद गुरुदेव याग के सम्बन्ध में प्रकट करा रहे थे कि यज्ञमान को याज्ञिक बनना है। मैं पुरातनकाल से अपनी वार्त्ताओं को प्रकट कराता हूँ। आज भी जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है वहाँ साम गान हो रहा था। मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो रही थी। मैं उच्चारण कर रहा था कि देवतेरी महिमा है वेदों का प !्रसार मानव जीवन में होना चाहि। प्रत्येक गृह में यज्ञ की सुगन्धि और वेद के मन्त्रों की ध्वनि होनी चाहिए। पुरातन काल का साहित्य मुझे स्मरण आता रहता है जब राजाओं के गृह में क्या प्रजा के गृहों में से क्या, सब स्थानों से सुगन्धि आती थी, वेद मन्त्रों की ध्वनियाँ मानव के श्रोत्रों में आती थीं।

वह जो याग है, वे जो ध्वनियाँ हैं वे इस राष्ट्र और समाज को, मानवता को ऊँचा बनाने वाली हैं। हे यज्ञमान आज मैं कोई अपनी विचारधारा तो प्रकट करने नहीं ! तुम्हारे जीवन का सौभाग्य सदैव अखण्ड बना रहे। जितना भी !आया हूँ। हे यज्ञमान धर्म और मानवता का प्रसार हो सके उतना ही करना चाहिए और वह प्रसार तुम्हारा

परमात्मा से मिलने का होना चाहिए। जहाँ आहार व्यवहार अशुद्ध हो जाता है वहाँ मैं यह कहा करता हूँ अपने पूज्यपाद गुरुदेव से भी प्रार्थना करता रहता हूँ कि यह जो समाज है यह अज्ञानता को अपनी प्रतिभा से नष्ट कर देवे, अपने अज्ञानता से पूर्ण साहित्य को नष्ट कर देवे अथवा सदैव यह विचार रहता है कि अज्ञानता समाप्त होनी चाहिए और ज्ञान का प्रसार होना चाहिए। अशुद्धियों के शब्द गृहों में नहीं रहने चाहिए। गृहों में सदैव सुगन्धि और वेद का पठन पाठन होना चाहिए।

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से बहुत पुरातन काल में कुछ वार्त्ताएँ प्रकट कीं। आज मैं इन वाक्यों में तो जाना नहीं चाहता हूँ। परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते हैं कि प्यारे महानन्द जी अशुद्ध वाक्य प्रकट करते हैं। परन्तु जब मैं यह कहा करता हूँ कि इनके मुखारविन्द पर एक शब्द अभ्यास युक्त हो गया है। मैं सदैव यह कहा करता हूँ कि हे पूज्यपाद गुरुदेवयह जो समाज है !, यह जो आधुनिक काल का जगत् है यह बहुत ही विचित्र बनता चला जा रहा है। जब मैं विज्ञान के युग में जाता हूँ, छात्रावास में जाता हूँ, साहित्य पर दृष्टिपात करता हूँ तो मुझे प्रायः ऐसा दृष्टिपात होता है कि यह जो आर्यों का साहित्य है, आर्यों की जो परम्परा है, आर्यों का जो वंशज है यह कहा जा रहा है? जहाँ महर्षि यावल्क्य महाराज, जहाँ राजा जनक जैसे राजा जिनके यहाँ सदैव ब्रह्मयाग होता रहता था, ब्राह्मणों की वार्त्ता प्रकट होती रहती थीं। शास्त्रार्थ होते रहते, विचार विनिमय होते रहते। परन्तु आज जब मैं राष्ट्रीय युग में जाता हूँ तो वहाँ जहाँ ऋषियों के स्थल हैं वहाँ और हो कोई विराजमान हैं। आज मैं यह दृष्टिपात करता हूँ।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इससे पूर्व शब्दों में साहित्यिक चर्चाओं को प्रकट कर रहे थे, महारानी द्रौपदी की चर्चाएँ कर रहे थे। परन्तु आधुनिक काल में द्रौपदी की ऐसी कल्पना की इसके पाँच पति कहलाते हैं और वह पाँचों पतियों की एक ही अर्धांगिनी कहलाती थी। विचारा नहीं जाता यह आन मानवों में कहाँ से आ गया? यह अज्ञान रूढ़ियों से उत्पन्न हुआ करता है। जब मानव रूढ़िवादी बन जाता है, यढ़िवाद में ब्राह्मण समाज भी उन्हीं रूढ़ियों में परणित हो जाता है। और जन्म से ब्राह्मण बन जाता है। और

जातीयता का प्रसार हो जाता है, जब जातीयता और रूढ़िवाद पूर्ण ऊर्ध्वगति के शिखर पर चले जाते हैं उस समय इसमें धर्म और मानवता का ह्रास हो जाता है। आधुनिक काल में जब मैं यह दृष्टिपात करता हूँ कि पाँचों पाण्डव जहाँ द्रौपदी के संरक्षक थे उनकी संरक्षता में वह विचरण करती थी। विचारना तो यही है हमारे लिए मानो जहाँ स्वयंवर को चर्चाएँ पूज्यपाद गुरुदेव ने कल प्रकट की उसमें मुझे कोई वाक्य प्रकट नहीं करना है।

आज से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व एक चेतांग नाम का ब्राह्मण हुआ और एक रमाशंकर नाम का ब्राह्मण हुआ जिनको जैन समाज ने बौद्ध समाज ने दोनों द्रव्य दे करके महाभारत के पात्रों को विकृत बना दिया। महाभारत के पात्रों को विकृत बना दिया। महाभारत के जो पात्र हैं उनको अशुद्ध बनाया। उसी काल में रेनुकेतु नाम के ब्राह्मण थे और स्वाती नाम का ब्राह्मण था। दोनों ब्राह्मण ऊँचे विद्वान थे। परन्तु द्रव्य की लोलुपता में रूढ़िवाद में परणित हो करके उन्होंने राम के साहित्य को रामायण के पात्रों को समाप्त करने के लिए अपनी प्रतिभा को प्रतिष्ठित बनाने का प्रयास किया।

उन पात्रों को आज हमें शुद्ध बनाना है और वे पात्र शुद्ध कैसे बनेंगे? पात्र उस काल में शुद्ध बनेंगे जब बुद्धिमानों का एक समाज एकत्रित होगा। स्वार्थ से रहित बुद्धिमानों का समाज और उन पात्रों को यथार्थ बनाने का प्रयास करेंगे। पात्र क्या होते हैं? जैसे हमारे महाभारत के काल में एक तो द्रोपदी पात्र कहलाते हैं, एक पांचों पाण्डव पात्र कहलाते हैं, गान्धारी पात्र है, पितामह भीष्म पात्र हैं और यहाँ वेदव्यास पात्र हैं, और धृष्टराष्ट्र के जो पुत्र हैं वे भी पात्र हैं, उन पात्रों की जो गाथाएं हैं वे बड़ी विचित्र हैं। जहाँ हमारा विज्ञान हमारी मानवता इतने ऊँचे शिखर पर रमण कर रही हो। वहाँ का पात्र यदि नष्ट हो जाएं, पात्रों में अशुद्धता आ जाए तो वह साहित्य नष्ट हो जाता है। जिस भी काल में विचारक पुरुष आते हैं, वैज्ञानिक पुरुष आते हैं और तार्किक दृष्टि से दृष्टिपात करते हैं तो तर्क में आकर के वह साहित्य नष्ट हो जाता है। आधुनिक काल का जगत् उन्हीं पात्रों को लाने का प्रयास करता है। तो उन पात्रों में जब कोई सार्थकता प्रतीत नहीं होती तो उन पात्रों से ही साहित्य कलंकित हो गया। यहाँ जातिवाद में रूढ़िवाद में धर्म

और मानवता का ह्रास करने के लिए इन पात्रों को भ्रष्ट किया गया।
रामायण के काल में जब जाते हैं, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने रामायण के काल को दृष्टिपात किया। मुझे भी कुछ कुछ स्मरण आता रहता है। परन्तु जब उस काल में जाता हूँ और आधुनिक काल में उस साहित्य को दृष्टिपात किया जाता है, उस रामायण के पात्रों को भी बौद्ध काल में, जैन काल में भ्रष्ट किया गया। मौहम्मद के मानने वाले मुस्लिम काल में भी उनको ह्रासता में परणित कराया गया। उनके ऊपर नाना प्रकार की टिप्पणियां कीं। वहाँ महात्मा बुद्ध और जैन समाज से पूर्व वाममार्ग की समाज का एक कृत या और उनकी पताका थी। उन्होंने जो अट्ठारह पुराण कहलाए जाते हैं जो हमारा पुरातन साहित्य है, हमारी जो पुरातन ऋषि मुनियों की सूक्ष्म प्रणालियां हैं, राजाओं की परम्परा हैं वहाँ वाममार्गियों ने मांस भक्षण करने की, यागों में गो मेध याग में गो मांस को आहुति देना, अज्ञा मेध में बकरी के मांस की आहुति देना और अश्वमेध में घोड़े की आहुति देना, नरमेध में मनुष्य को आहुति देना, देवी याग में देवी के मांस की आहुति देना, इस प्रकार का जो प्रभाव चला। उन्ळोंने मांस भक्षण के लिए, अपनी रसना के आनन्द के लिए धर्म और मानव को भ्रष्ट करने के लिए मिश्रण किया। आज जब मैं वाममार्ग के क्षेत्र में जाता हूँ, वाममार्ग की प्रतिभा में जाता हूँ तो मुझे ऐसा प्रतीत होताहै कि महाभारत के काल में परीक्षित काल के पश्चात् यह अज्ञानता आई। जो वाममार्ग आया, उसमें धर्म और वैदिकता को नष्ट करने के लिए तत्पर रहे। यहाँ तक कि वेदों के भाष्यकारों में भी मांस भक्षण की त्रुटि आई। जहाँ वेद में कोई भीमन्त्र, कोई भी शब्द इस प्रकार का नहीं है, जिसमें मांस भक्षण करने की प्रवृत्ति मानव की बनाई जाएं। आयुर्वेद का जहाँ प्रसंग है वह द्वितीय प्रसंग है। आज मैं आयुर्वेद के प्रसंग में नहीं जा रहा हूँ। विचारना यह है कि उन प्रणालियों को विचारें। जिन परम्पराओं में हमारे साहित्य के जो पात्र है। उनको अशुद्ध किया गया, उन्हीं पात्रों को लेकर के आधुनिक काल में तार्किक पुरुषों ने इन साहित्यों को नष्ट करके और अपने आप में एक उपाधियुक्त बनते चले जा रहे हैं। क्योंकि जब पात्र अशुद्ध हो जाते हैं तो जो अज्ञानी पुरुष तार्किक पुरुष बन जाते हैं। वे नास्तिकवाद में परणित होते हुए पात्रों को भ्रष्ट रूप

में दृष्टिपात करके अपनी उपाधियों को प्राप्त किया करते हैं। आज हमें शुद्ध रूप को लाना है, शुद्ध रूप को प्रतिभा को लाने के लिए सदैव प्रयास करनाहै।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कल द्रौपदी की चर्चा कर रहे थे। इस द्रौपदी का जीवन बाल्यकाल से लेकर के मृत्युपर्यन्त एक भी दिवस ऐसा नहीं था जब प्रातःकाल में वह याग न करती हो, एक भी दिवस ऐसा नहीं था जब वे वेदों का अध्ययन नहीं करती थीं। मुझे स्मरण आता रहता है जब पाण्डवों को वन प्राप्त हुआ था, उस समय जब तक वन में रहे जैसा वेद में आया अबभ्रा गौत्रा नमो ब्रह्मचर्य व्रताः। उसके अनुसार वह विदुषी बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करती रही और अर्जुन से भी यह कही हे भगवन हमारा ! जीवन ब्रह्मचर्य युक्त होना चाहिए। वह साहित्य कहाँ चला गया जहाँ पाण्डव भयंकर वनों में वेदों का अध्ययन करते थे वेदों की प्रतिभा में रमण करते रहते थे। इतिहास में मिलावट से ऐसा प्रतीत होने लगा कि साक्षातवह महाभारत जैसा संग्राम हुआ प्रतीत नहीं होता। मैं आज उस साहित्य में जाना नहीं चाहता हूँ। विचारना यह है कि हे ब्राह्मणों आओ तुम पुनः से अपने पात्रों को शुद्ध बना लो। यदि आधुनिक काल का ! ब्राह्मण पात्रों को शुद्ध बना लेगा तो साहित्य जीवित रह सकेगा अन्यथा जिससमाज का इस आर्यत्व का साहित्य पतित हो गया है तो उनके द्वारा रह क्या गया है।

यहाँ जैन काल में और बौद्ध काल में और मुहम्मद के मानने वाले कालों में यहाँ नाना प्रकार की प्रतिष्ठा रही, अध्ययन रहा। जब यहाँ वह मुहम्मद के मानने वालों का एक अग्रीणी बन करके (नेता)आया, अज्ञान तो आ ही गया था। अज्ञान के कारण मुहम्मद को मानने वाले जो साधु थे वह कृष्ण बन करके आये। जहाँ पांचाल राष्ट्र है उससे पूर्व अज्ञानता के कारण उन सबका मुहम्मद को मानने वाला बना दिया। क्योंकि ब्राह्मण समाज रूढ़िवाद में परिणित हो गया। ब्राह्मण समाज जातिवाद में परिणित हो गया। वर्ण व्यवस्था को न स्वीकार करके वह केवल जातीयता में आ करके समाज में अज्ञानता ही अज्ञानता आ गई और हम दूसरे सम्प्रदायों को स्वीकार करने लगे। धर्म और मानवता को त्याग करके केवल उस आभा में परिणित हो गए जहाँ समाज का ह्रास हो गया और यहाँ साहित्य और मानवता को कलंकित किया गया। ब्राह्मणों से मेरी यह याचना

है इन वाक्यों को दृष्टिपात करें। परन्तु विचारता कौन है? पदों की लोलुपता से, द्रव्य के अभाव में वह अपने आप को नष्ट करते चले जा रहे हैं। परिणाम क्या कि आज जब पद की लोलुपता में इस प्रकार की प्रतिभा को त्यागा जाता है तो उसकाल में रूढ़िवाद को नष्ट करके धर्म, साहित्य मानवता को लाने का सदैव प्रयत्न करना चाहिए। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से प्रकट करते हुए कहा था कि आधुनिक काल का समाज यह स्वीकार करता है कि हनुमान जी के एक पूंछ कहलाती थी। तह समाज कितना अज्ञानता में परणित हो गया। जहाँ अर्जुन का संस्कार हुआ था अरुचि के कारण आज जब हम राष्ट्रों के मानने वाले व्यक्तियों का (अमेरिका देश) सम्बन्ध टूट गया तब वे सब वह ईसा के मानने वाले आज बन गएं हैं। परन्तु कोई काल था जब वहाँ वैदिकता का प्रसार थ ा। यागों के द्वारा अस्त्रों का निर्माण होता था। अहा आधुनिक काल में भी एक मानव पुरातत्व की दृष्टि से वहाँ यज्ञ पात्रों का प्रार्दुभाव हुआ। राजा उत्तानपाद के समय का पात्र आधुनिक काल में भी प्राप्त होता रहा है। परिणाम क्या कि वहाँ को संस्कृति, विचारधारा परम्परा से सुगठित है। परन्तु अज्ञानता के कारण, रक्त बहने के कारण, वह समाज, में अशुद्धवाद में परणित हो गई है। परिणाम यह है कि उन राष्ट्रों के आज कुछ व्यक्ति यह कहते हैं कि मानव को जो विकास हुआ है वह केवल वानर पशु से हुआ है। अरे, मानव तुम्हारी बुद्धि कहाँ चली ! गई? तुम बुद्धि को कहाँ नष्ट कर गएं हो? विचारो तो सही क्या मानव का विकास जब बन्दर से होता है तो वानर जाति अब नहीं होनी चाहिए। वह सब मनुष्य होने चाहिए थे। विचार विनिमय यह कि उनका अज्ञान, परम्परा को न विचार करके, वैदिक साहित्य और धर्म को कलंकित करने के पश्चात् अपने जीवन में मनमानी वार्त्ताओं को प्रकट करता रहता है। जिससे समाज में अशुद्धवाद आ जाता है। समाज उसी से ही पतित होने से उसका साहित्य भी नष्ट हो जाता है।

यह समाज कैसे अशुद्ध हुआ? यह रूढ़ियों से हुआ। सबसे प्रथम रूढ़िवादी यहाँ वाममार्गी बने। वाम मार्गियों का विचार संकीर्ण बन गया, देवियों के नाम से यज्ञों में मांस की आहुति प्रदान होने लगी। मांस स्वयं पान करते थे। देवी मांस को प्राप्त नहीं करती। दैवी

सम्पदा वाले जो प्राणी हैं जो यह जानते हैं कि दैवी सम्पदा होनी चाहिए। देवी कहते हैं श्रद्धा को, देवी कहते हैं विद्या को। जो उसको जागरुक बनाता है वह बुद्धिमान बन जाता है। जो महान पवित्र बन जाता है परन्तु आधुनिक काल के समाज ने वाममार्ग की जो प्रथा है वह वर्तमान मैं भी प्रचलित है। आज भी वह देवियों पर, देवताओं पर मांस की आहुति दे करके अपने उदर की पूर्ति करते हैं। अरे, इस उदर की पूर्ति के लिए संसार में उनके शरीरों को नष्ट किया जाए तो बहुत ही प्रियतम हो सकता है। हे वेद के ब्राह्मण तू जागरुक हो और जागरुक करके तू ओ३म् की पताका को लेकर ! के तू वेद के साहित्य के ज्ञान को लेकर के और साहित्य को शुद्ध बना करके तू अपनी पताका को ऊँचा बना। धर्म को लेकर के चल। जिससे यह राष्ट्र और समाज में शुद्धता आ जाएं और रूढ़िवाद होना चाहिए।

रूढ़िवाद धर्म नहीं है वह तो रूढ़ि है, उस रूढ़ि को जहाँ भी है नष्ट करना मानव का कर्त्तव्य है, जातीयता में आ करके यह समाज अग्नि के मुख में चला गया। आज जब मैं यह विचारता हूँ कि कहाँ तो वह माता थी जहाँ द्रौपदी वेदों का पठन पाठन करती थी। कहाँ आधुनिक काल की मेरी पुत्रियां हैं। पुरातन काल में माता कुन्ती अपने आत्मविश्वास से पुत्र को उत्पन्न करने वाली, यहाँ मल्दालसा और भी नाना विदुषियां हुई हैं जिन्होंने ऋषि मुनियों को जन्म दिया है। वे श्रृङ्गार से युक्त नहीं रहती थीं। वे मेरी प्यारी माताएं सदैव विद्या का अध्ययन करती थीं। दर्शनों का अध्ययन चलता रहता था। आधुनिक काल की जो मेरी पुत्रियां हैं, आधुनिक काल की जो मेरी माताएं है। उनमें अपना आत्मविश्वास ही नहीं रहा है। वे इस समाज में ऊँचे पुत्र को कैसे जन्म दे सकती हैं। हे मेरी माँतू पुनः से सदैव वेदों को उस महान् विद्या को !, दर्शनों की आभा को अपना जिससे तेरा आत्म विश्वास हो। प्रभु ने जैसी जो वस्तु दी है वह वैसी ही रखनी चाहिए। उस पर उसी प्रकार का विश्वास होना चाहिए। हो मां तू यहाँ पुनः से ! कृष्ण और भगवान् राम को जन्म देने वाली हो यहाँ ब्रह्मा को जन्म दे जिससे यह राष्ट्र पुनः से स्वर्ग में परिणित हो जाए और हे माँ तेरे श्रृङ्गार की रक्षा कर सके।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में प्रकट कराते हुए कहा था। आज मैं इन वाक्यों

की पुनरुक्ति करने नहीं जा रहा हूँ। पूज्यपाद गुरुदेव तो अपने गम्भीर वाक्यों में परणित रहते हैं। परन्तु मैं यह उच्चारण करने जा रहा हूँ यहाँ स्वार्थी पुरुषों ने साहित्य को भ्रष्ट किया और यज्ञों को भ्रष्ट करने के लिए सदैव तत्पर रहे। जब मैं मानव की दृष्टि से, आत्मिक, धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से दृष्टिपात करने लगता हूँ तो विचार आता है कि वास्तव में यहाँ याग होने चाहिए। हे यज्ञमान तू याज्ञिक बन। प्रत्येक गृह में याग ! होने चाहिए। जिस काल को आज का मानव यह कहता है कि राम राज्य की स्थापना करनी है जिसको यह मानव आज का कार्य कहत है मनु शासन की स्थापना करनी है। परन्तु तुम्हें प्रतीत है भगवान राम ने सबसे प्रथम यह परम्परा बनाई थी। जब राष्ट्रीय नियम बनाने लगे कि सबसे प्रथम तो याग होने चाहिएं, सुगन्धि होनी चाहिए, दोनों ही राष्ट्र और मानव समाज को ऊँचा बना सकती हैं। आज मानव के द्वारा राष्ट्र रहे या न रहे परन्तु सदाचार और मानवता अवश्य रहनी चाहिए। राम ने द्वितीय नियम यह बनाया था कि मेरे राष्ट्र में किसी प्राणी की हिसा नहीं होनी चाहिए। उससे पूर्व काल में भी नहीं होती थी। परन्तु नियम था कि किसी प्रकार का अपराध नहीं होना चाहिए। राजाओं का यह नियम था कि मछली से ले करके और मानवत्व की जिस राजा के राष्ट्र में रक्षा होती हो वह राष्ट्र, वह समाज जिसकी कल्पना की जाती हो वह कितना प्रियतम कहलाता था। मेरी प्यारी मां को एक पंक्ति में विराजमान करके !जब तू प्यारे पुत्रों ! और उनकी शिक्षा देती है कि हे पुत्र संसार में तुम्हें अहिंसा परमोधर्मीबनना है, अपनी प्रतिष्ठा को नष्ट नहीं करना है। अहिंसा परमोधर्म एक तो ऐसा होता है जहाँ मानव द्वितीयों के प्रति रूढ़िवादियों को पनपने देता है, हे मानव रूढ़ियों को पनपने नहीं ! देना और धर्म का प्रसार करना है, वैदिकता को लाना है।

वेद को हमारे यहाँ ईश्वरीय वाणी कहते है क्योंकि वेद का प्रत्येक जो शब्द है वह रूढ़ि से पृथक है, स्वार्थ से रहित है, वह ज्ञान और विज्ञान से युक्त है, संसार की कोई ऐसी विद्या नहीं जो उसमें न हो। परम पिता परमात्मा सदैव वैज्ञानिक भी है, बुद्धिमान भी है, सर्व हृदयों को वह जानता है, ऐसी उसकी वाणी है जो पक्षपात से रहित कहलाती है। जैसे परमपिता परमात्मा पक्षपात से रहित है इसी प्रकार उसकी वाणी, उसका ज्ञान

भी पक्षपात से रहित कहलाता है।

विचार विनिमय यह है कि आजा हम अपने धर्म और साहित्य को रक्षा करने वाले बनें। वह रक्षा क्या है कि हम शुद्ध रूप लाने का प्रयास करें। इन पात्रों को शुद्ध बनाने का प्रयास करें जिससे हमारा धर्म ऊँचों बनेगा, मानवता ऊँची बनेगी। आज के राष्ट्रवाद में जहाँ राम राज्य की घोषणा करके राम को ही पुकारा नहीं जाता राम की घोषणा ही घोषणा होती है परन्तु जब उनके मानने वालों के द्वार पर जाता हूँ, जहाँ सबसे प्रथम उनका यह नियम था कि अहिंसा परमोधर्म होना चाहिए, जहाँ भगवान राम धर्म, शिष्टाचार और मानवता को लाने का प्रयास किया करते, वहाँ आज का जो राष्ट्र है वह यह कह रहा है कि अन्न की सूक्ष्मता है इसलिए मांस भक्षण करना है। क्या मानव ने यह नहीं विचारा कि हे राजा तू अपने राष्ट्र में बुद्धिमानों को बुद्धिमान मान करके ! उनसे निरीक्षण करा, वैज्ञानिकता से अनुसन्धान कर कि यह जो अन्न की सूक्ष्मता है यह राष्ट्र में क्या है? जब मानव ने मांस को भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया तो प्रकृति ने अन्न को उससे दूर कर दिया। अन्न को प्रकृति ने छीना है, वह मानव ने नहीं, राष्ट्र ने नहीं परन्तु अन्नावृष्टि अतिवृष्टि प्रारम्भ होकर के अन्न नष्ट हो रहा है कहीं भ्रष्ट हो रहा है, कहीं मानव स्वार्थवाद में परणित हो रहा है। कहीं संग्रह करने की प्रवृत्ति है, ये राष्ट्र को अन्न से पनपने नहीं देंगे। हे राजा तू सदाचार की स्थापना कर। आज तू द्रव्य की ! लोलुपता में न जा। समाज में द्रव्य होना चाहिए, अपना ऐश्वर्य होना चाहिए। हे राजन् ! राम राज्य यह नहीं कहता। राम राज्य यह कहता है कि इनको जीवन दो जो मानव पत्ति हैं। उनको जीवन दो, उनको द्रव्य दो। जो संग्रहवादी हैं उनको बीच में लाने का प्रयास करो। हे राजन् तेरी प्रवृत्ति भ्रष्ट हो गई है। तू स्वयं संग्रह करने वाला बन गएं ! हैं। आज जब राष्ट्र नायक स्वयं संग्रह की प्रवृत्ति में आ जाएंगे तो यह साधारण समाज क्यों न संग्रह करेगा। क्योंकि न ऐश्वर्य में आयेगा। आज का जो राष्ट्रवाद है वह दूसरों की कन्याओं के श्रृङ्गार को हनन करने में परणित है। हे मानव जब तुम हनन करोगे ! तो तुम्हारे राष्ट्र का जीवन कैसे ऊँचा बनेगा। आज उन पुत्रियों के श्रृंगारों की रक्षा के लिए राष्ट्र होता है या राष्ट्र उनके सतीत्व को नष्ट करने के लिय होता है। आज इन

बातों को तो विचारो। परन्तु विचारा नहीं जाता। क्योंकि स्वार्थ इतना प्रबल है, पात्र इतने भ्रष्ट हो गएं हैं कि उन पात्रों को कौन शुद्ध बन बनाएं?
अब मैं यह उच्चारण करूं कि कौन शुद्ध बना सकता है, हे ब्राह्मण समाज आज तुझे ! जागरुक होना चाहिए। जागरुक हो करके उषर्बुध होना चाहिए। उषर्बुध बन करके रूढ़ि को त्याग करके इन पात्रों को शुद्ध रूप से लेना चाहिए। यह मानव का कर्त्तव्य है, यह ब्राह्मण समाज का कत्रव्य है। मैं कहाँ तक इन वेदना भरे वाक्यों को प्रकट करता रहूँगा। इनकी तो महान् पोथी बन सकती है। मैं आज उस पोथी का निर्माण करने नहीं जा रहा हूँ। विचार विनिमय यह है कि हे मानवतुम पात्रों को शुद्ध बनाओ !, ऋषि मुनियों की जो परम्परा है, उनके जो जीवन हैं उनको साकार रूप देने का प्रयास करो। जिससे यह जातिवाद नष्ट होकर मानव धर्म और राष्ट्रवाद को अपने में परणित कर ले। आज का राष्ट्रवाद कोई नियम नहीं बना सकता। क्योंकि राष्ट्र में रूढ़िवाद चलता है। आज की कोई रूढ़ि तो ऐसी है जो द्वितीय राष्ट्रों पर ही अपने को निहार रहा है। कोई ऐसा है जो द्रव्य को एकत्रित करने में परणित हो रहा है। वह अपने में संलग्न है। परन्तुविचारो कि हे मानव तेरे राष्ट्र में उस मानव को रहने का !हे राजा ! अधिकार जिसके द्वारा राष्ट्रीयता होनी चाहिए, जिसके द्वारा राष्ट्रीय संस्कृति होनी चाहिए। और मानवता होनी चाहिए। उसको रहने का अधिकार है और उसे तुझे अधिकार देना चाहिए, यदि अधिकार नहीं दिया जाएगा तो वह समय दूर नहीं है जब यहाँ गृह गृह में रक्त की धाराएं बहनी प्रारम्भ हो जाएगी।
आज जब मैं संसार के उस महान शिखर पर जाता हूँ कि एक मानव मानव को किस प्रकार नष्ट करता है। अरे, यह रूढ़ि ही तो कहलाती है आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को नष्ट करने के लिए तत्पर है। क्योंकि उनमें रूढ़ि है। धर्म नहीं है। उन रूढ़ियों को एक दूसरी रूढ़ियों की अपने में ग्रहण करना चाहता है। इसलिए यह नाना प्रकार का विवाद है, नाना प्रकार का संग्राम है, नाना प्रकार की कृतियां अशुद्ध हो रही हैं। राम के काल में प्रत्येक गृह में याग होते थे, रघुवंश में ऐसा ही होता रहा। महाभारत के काल में भी ऐसा ही था। प्रत्येक गृह में याग होते थे, ब्रह्मयाग होते थे। पूज्पाद गुरुदेव ने एक वाक्य

बहुत प्रिय कहा जब अधिकार और अनधिकार के लिए संग्राम होता है तो समाज का विनाश हो जाता है।

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह निर्णय कराने जा रहा हूँ कि यह समाज ऐसा है और महाभारत के काल के पश्चात् क्या क्या हुआ। मानो इन अठारह पुराणों में पुरातन कालों को अशुद्धियों में परणित किया। निर्णय कराने की सूक्ष्मता रही। द्रव्य ले ले करके पात्रों को भ्रष्ट कर दिया गया। आज का हमारा विचार समाप्त हुआ। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा चाहूँगा। यह जो समाज है जहाँ मछलियों कीरक्षा होनी चाहिए वहाँ मछलियों का भक्षण किया जाता है यह आधुनिक काल का जगत् है। राम राज्य की घोषणा है परन्तु वह केवल लेखनी पर घोषणा है। क्रियात्मक यह घोषणा कदापि नहीं स्वीकार की जा रही है। जो आज का विचार यह कि कामधेनु गउओं की रक्षा होनी चाहिए। मद्य इत्यादि का जो मानव के मन को भ्रष्ट करता है, मानवत्व को भ्रष्ट करता है, द्रव्य की लोलुपता में आ गया तो यह नहीं आना चाहिए। संग्रह करने की प्रवृत्ति न राजा में हो न प्रजा में हो। वर्ण व्यवस्था ऊँची होनी चाहिए। निर्माण विद्यालयों में हों। तब यह पुरातन का जगत् पुनः से ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो सकेगा। समय तो आयेगा परन्तु वह समय भी दूर नहीं है जब यह समाज उसी प्रकार का बनेगा। पुनः से हे यज्ञमानतेरे गृह में याग होते रहें। प्रत्येक गृह में याग हों !। जिससे सुगन्धि हो, दुर्गन्धि उत्पन्न न हो, राष्ट्र ऊँचा बने। अब मैं पूज्यपाद गुरुदेव की आज्ञा चाहूँगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य महानन्द जी ने अपनी कुछ पिपासाएं और !आज मेरे प्यारे.... हृदय की वेदना प्रकट कीं। हमें तो यह प्रतीत नहीं हो पाया कि यह ऐसा वाक्य का जगत् ऐसा है तो यह तो समाज की धृष्टता है। यह तो सुन्दर वाक्य नहीं। क्योंकि महारानी द्रौपदी जी के जीवन पर दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे कितनी विदुषी थीं उनका जीवन कितना प्रियतम में रमण करता (परमात्मा में तथा पति में) रहा, सदैव वह तपस्वी कहलाती थीं। उनका आदर ऋषि मुनि करते थे। जिसमें तप नहीं होता उनका कोई ऋषि आदर नहीं करते। कोई महापुरुष उनका आदर नहीं करते।

भगवान् कृष्णा उसके लिए स्वीकार करते थे कि यह मेरी पूज्या है। उन्होंने जीवन में जहाँ वेद का अध्ययन किया, वेदों के ऊपर उनकी विचार धाराएं चलती थीं। वे अनुसन्धानवेत्ता थीं। इसलिए ऋषि लोग महारानी द्रौपदी का स्वागत करते थे। जब भगवान कृष्णा का उनसे मिलन होता तो वे उनके चरणों को स्पर्श करते थे। ऐसा क्यों? क्योंकि उनके तप का प्रभाव था। तो आज महानन्द जी ने बहुत कुछ वाक्य कहा। ऐतिहासिक पात्रों में यह भ्रष्टता नहीं होनी चाहिए। इनकी इस विवेचना का आदर तो हम भी करते हैं। परन्तु ब्राह्मण समाज को ऊर्ध्व गति में प्राप्त होना चाहिए। जब जैसा इन्होंने कहा है वह बहुत प्रियतम। इसके ऊपर टिप्पणियां किसी काल में प्रकट करेंगे। आज का वाक् क्या कि वह अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते रहें जहाँ साम गान, जहाँ ब्राह्मण, यज्ञमान, होता गण यज्ञ रचाते हैं, उनका जीवन सदैव बना रहे। ऐसा मेरे प्यारेमहानन्द जी ने कहा है। परन्तु इसके साथ साथ हम भी अपने वा !क्यों को प्रकट कर रहे हैं। आज का विचार समाप्त। शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। अब वाक्य समाप्त। 21 श्री हीरानन्द खट्टर के गृह)/ पर दिया गया 24 लाजपत नगर नई दिल्ली 129 (प्रवचन

१५ 18 11 1973 पुष्प 23 अहिल्या का वर्णन

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ महर्षि अंगिरस गोत्र में एक दद्दड़ नाम के ऋषि हुए परन्तु दद्दड़े अस्वात संगीत शाखायें आज समाप्त हो गईं। महर्षि दद्दप ऋषि महाराज को महर्षि स्वयम्भ अदरथ ऋषि के पौत्र कहलाते थे और महर्षि चडान्त ऋषि महाराज के पुत्र कहलाते थे और महर्षि दद्दड़ ऋषि महाराज ने हिमालय की कन्दराओं में विराजमान हो करके इस शाखा को जो साम शाखा कहलाती है, वह शाखा उस साम गान से ले करके उस शाखा को उन्होंने बहुत ही मनन किया और मनन करने के पश्चात उसकी रचना की। हमारे यहाँ शाखाओं का अभिप्राय यह है कि वेद की एक अमूल्य धारा को ले करके जैसे चिरा यंत्रा विपरो चरित्रं नमः जैसे वेद का

शब्द है उसी के आधार पर वह एक गान गाता है। उस शब्द की महिमा को गाता है औरगात है वेदवाणी में और वेदवाणी को लेखनी बद्ध करने का नाम हमारे यहाँ शाखा कहलाता है। शाखा का अभिप्राय यह कि हमारे यहाँ पुरातन काल में शाखायें 1127 मानी जाती हैं परन्तु वह मूल चार वेदों की हैं।

दद्दड़ शाखायें बहुत काल से प्रारम्भ हो रही थीं आज समाप्त हो गई। वह शाखायें मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद के चरणों में ओत प्रोत हो करके अध्ययन की थीं। इसमें विज्ञान का बड़ा सुन्दर वर्णन है। विज्ञान के ऊपर इनकी बहुत ऊँची उड़ान रही है, उन्होंने कुछ वैज्ञानिक परी ाण भी किये, उनकी एक विज्ञानशाला थी। हिमालय की कन्दराओं में उनकी एक चरित्रशाला थी उस शाला में प्रायः अग्नि के ऊपर उनका अनुसन्धान रहता था और पापों के ऊपर अनुसन्धान रहा है, दोनों प्रकार के अनुसन्धान में वह पारायण कहलाए गये। मुझे जब उनका जीवन स्मरण आता रहता है तो प्रायः हम यह कहा करते हं कि उनका जीवन कितना शिरोमणी रहा है जिन्होंने विज्ञान के ऊपर नाना प्रकार की लेखनियां बद्ध कीं।

बेटा उन्होंने एक अहिल्या के सम्बन्ध में जो अहिल्या वत्ति सूक्त कहलाता है उस ! अहिल्या के सम्बन्ध में महर्षि दद्दड़ महाराज ने अहिल्या विशारद पुस्तक को लेखनीबद्ध किया जिसके तीन भाग कहलाते थे, एक एक भाग प्रायः एक एक सहस्त्र पृष्ठ की वह पोथी कहलाती थी। आज मैं उस पोथी के ऊपर तो अपना कोई वाक्य प्रकट नहीं करूंगा क्योंकि न तो मैं विज्ञानशाला में विराजमान हूँ और न मैं विशेष विज्ञान की चर्चायें प्रकट किया करता हूँ परन्तु विचारना केवल है कि हम उन वाक्यों को चुनौती प्रदान करते हैं जो अपने कार्य में अनुगामी हैं, जिनका हम उच्चारण करने में समर्थ बनें और वायु मण्डल के आधार पर उन वाक्यों को उच्चारण करना भी अनिवार्य हो जाता है।

मेरे प्यारेआज का विचार यह कि आज हमारी वह शाखा समाप्त हो गई है त !ब इसके पश्चात हमारी द्वितीय शाखा का प्रचरा होगा। आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा था। आज अहिल्या के सम्बन्ध में नाना प्रकार की टिप्पणियां की जा रही थीं।

अहिल्या के सम्बन्ध में वेदमन्त्र क्या कह रहा है? अहिल्यकारी गता वस्तुतः सुप्रजा मामवेतु अहिल्या। अहिल्या किसे कहते हैं? अहिल्या के नाना प्रायवाची शब्द माने जाते हैं क्योंकि अहिल्या पृथ्वी को कहते हैं, अहिल्या हमारे यहाँ प्रकृति को भी कहा जाता है, अहिल्या, हमारे यहाँ, पुनीत पवित्र विद्या का नाम भी कहा जाता है, अहिल्या का अभिप्राय यह है कि जिसे हम दुहते हैं। मेरा प्यारा बालक माता को दुहता है, माता की लोरियों का पान करके अपने जीवन को पनपाता है इसी प्रकार यह जो पृथ्वी है इसको कृषक दूहने वाला है। बेटातुम्हें स्मरण होगा !, मैंने बहुत पुरातन काल में वर्णन कराया कि भगवान राम अहिल्या का उद्धार करने वाले कहलाए। अहिल्या का उद्धार कौन करता है जो वैज्ञानिक होता है।

बेटा मुझे स्मरण है जब भगवान राम महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ विद्या ! अध्ययन करते थे। वहाँ उन्होंने तीस वर्षों तक अध्ययन किया, दस वर्षों तक उन्होंने धुनर्विद्या, दस वर्ष तक विज्ञान की शिक्षा का अध्ययन किया, उसको क्रियात्मक में लाए। त्रेताकाल में वशिष्ठ मुनि आश्रम में विज्ञानशाला थी जिस विज्ञानशाला में माता अरुनगति और महर्षि वशिष्ठ दोनों अध्ययन कराते थे, लोक लोकान्तरों के ऊपर उनका विशेष अध्ययन रहता था वह पृथ्वी के ऊपर भी अनुसन्धान करते रहते थे, वह पृथ्वी के कणों को घ्राण के द्वारा, सुगन्ध के द्वारा भगवान राम को यह निर्णय कराते थे कि अमूक स्थली पर भूमि के रज का यदि यह स्वादन हो जैसे तीखा होता है, अग्रे होता है, करकरा होता है नाना प्रकार के जो इस पृथ्वी के कणों का रस स्वादन होता है उसको रसना के अग्र भाग पर वह निर्णय कराते थे। इसके ऊपर उनका प्रायः अध्ययन चलता रहता था कि मैं पृथ्वी को जानूं पृथ्वी वसुन्धरा कहलाती है, यह अहिल्या कहलाई गई है। जो पृथ्वी वज्र के तुल्य हीवह अहिल्या कहलाई जाती है। वज्र के तुल्य अहिल्या पड़ी हुई हो परन्तु वह अन्न को उपजाऊ करने योग्य हो तो उस भूमि का नाम अहिल्या कहा जाता है। अहिल्या का अभिप्राय क्या कि हम विचारें कि अहिल्या किसे कहते हैं। अहिल्या उसे कहा जाता है जो भूमि पवित्र होती हो जिसमें अन्नादि उत्पन्न होता है वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं और वह वज्र के तुल्य हो। भगवान राम का अहिल्या के

ऊपर बहुत अनुसन्धान रहा। मेरे प्यारे महानन्द जी तो यह कहा करते हैं कि अहिल्या ! महर्षि गौतम की पत्नि थी। महर्षि गौतम की पत्नि का नाम भी अहिल्या था। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि किसी ऋषि पत्नि का नाम अहिल्या हो तो पृथ्वी को अहिल्या नहीं कह सकते अथवा यह पृथ्वी अहिल्या नहीं रहेगी। महर्षि गौतम ऋषि महाराज अपने आँगन के महान बुद्धिमान दार्शनिक तपस्वी जिनका वर्णन करने में यह वाणी असमर्थ हो जाती है।

भगवान राम जब एक समय अहिल्या पर अध्ययन कर रहे थे तो उसी विज्ञानशाला में महर्षि भारद्वाज मुनि का पदापर्ण हुआ। महर्षि भारद्वाज मुनि ने यह कहा कि महर्षि वशिष्ठ जो क्या कर रहे हो? ऋषि ने कहा कि महाराजहम अनुसंधान कर रहे हैं !, हम अहिल्या के ऊपर अध्ययन कर रहे हैं, विचार रहे हैं कि अहिल्या क्या है और उसको क्रिया में लाना चाहते हैं। जब ऋषि ने ऐसा कहा तो महर्षि भारद्वाज ने कहा कि हे वशिष्ठ, तु अहिल्या को इसप्रकार नहीं जान सकोगे, आओ मेरी जो विज्ञानशाला है उसमें मैं अहिल्या का तुम्हें दिग्दर्शन कराता हूँ। महर्षि भारद्वाज ने एक यन्त्र ऐसा जाना था, अन्तरिक्ष के ऐसे परमाणुओं को जाना जिन परमाणुओं से लगभग दस दस योजन भूमि के परतों का यह भास हो जाता था कि दस दस योजन नीचे इस भूमि में अमुक प्रकार की धातु विराजमान है। उस यन्त्र का उन्होंने दिग्दर्शन भी कारया। उनके यहाँ एक प्रकार का यन्त्र था जिसमें दस दस योजन जो भूमि थी, जलाशयों में भी वह क्यों न हो समुद्रों की तरंगों में वह क्यों न हो यह प्रतीत होता था कि वास्तव में अमुक स्थली पर इस प्रकार की धातु विराजमान है। मैं आज इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ क्योंकि यह तो विज्ञान है के भयंकर बन में जाना नहीं चाहता। विचार केवल यह कि भगवान राम को उन्होंने निरीक्षण कराया और कहा कि हे रामआ !ज तुम मेरी इस विज्ञानशाला में दृष्टिपात करो। भगवान राम छह माह तक वशिष्ठ के आश्रम को त्याग करके महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ उस विद्या का अध्ययन करते रहे। उन्होंने अहिल्या को अच्छी प्रकार जाना और उन यन्त्रों को भी अच्छी प्रकार जानने का

प्रयास किया।

बेटात !ुम्हें प्रतीत है कि जिस समय भगवान राम महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ को पूर्ण कराने गये, मैं इस विषय में जाना न चाहता परन्तु विचार विनिमय यह कि भगवान राम ने अहिल्या का उद्धार किया देखो, ब्रह्मे प्रभा सुक्रति अस्ताः मेरे प्यारे तुम्हें ! प्रतीत हैं कि उन्होंने उस भूमि के कृषकों से कहा कि हे कृषकों आओ तुम इस भूमि में अन्नादि की उत्पत्ति करो। यह भूमि अहिल्या है, यह इस प्रकार न रहनी चाहिएं भगवान राम ने विज्ञान की स्थली को निर्णय कराया और कृषकों को कहा कि हे कृषकों इसमें अन्न उत्पन्न करो हमारे राष्ट्र में अन्नादि होना चाहिए।

परम्परागतों में हमारे यहाँ यह माना गया है कि हमारे यहाँ तीन संस्कार कराना एक अपराध माना जाता है। भगवान राम स्वयं अपने में स्वीकार करते थे कि हमारी जो रघुवंश परम्परा है राजा सगर से लेकर के जो वंश चला आ रहा है इस वंश में आकर के महाराजा अज के पुत्र जो राजा दशरथ थे उन्हें पुत्र के मोह में तीन संस्कार कराए, प्रमाद में परणित हो गये। राजा रावण का राष्ट्र सर्वत्र पृथ्वी पर होने के लिए जा रहा था।

मेरे प्यारे विचार विनिमय क्या कि हम उस विज्ञान की धारा में जाना चाहते हैं जिस ! विज्ञान को जानने वाला मानव अपने संघ में विषेशज्ञ बनता है। भगवान राम तीस वर्ष की विद्या अध्ययन के पश्चात राजा दशरथ के द्वारा जब आ गएं तो दो माह के पश्चात ही विश्वामित्र जो यज्ञ कर रहे थे उस यज्ञ को दैत्यजन आते और उनके यज्ञ को भ्रष्ट कर जाते, विश्वामित्र ने, ब्रह्मवेत्ता ने यह विचारा कि रघुवंश में उत्पन्न होने वाले राम लक्ष्मण दोनों को लाकर के इन दैत्यों का विनाश कराऊंगा। उन्होंने प्रतिज्ञा बद्ध हो करके ऐसा नहीं, कि विश्वामित्र उनको नष्ट नहीं कर सकते थे परन्तु उनकी एक मनोभावना थी कि मैं किसी क्षत्रीय को ऊँचा बनाना चाहता हूँ, अपनी जो विद्या है जो मैंने बाल्यकाल से अध्ययन किया है धर्नुविद्या में मेरी पारायणता है उसे मैं किसी को परणित कराना चाहता हूँ। महाराजा विश्वामित्र के हृदय में यह वेदना थी। वह भ्रमण करते हुए अयोध्या में आ पहुँचे राज दशरथ के यहाँ जब आ पहुंचे तो महाराजा दशरथ

ने आसन को त्याग दिया और ऋषि को आसन दिया। विराजमान होने के पश्चात् महाराजा दशरथ ने उनके चरणों को छूकर के कहा कि कहिए मेरे लिए कोई आज्ञा है? उस समय महाराजा विश्वामित्र बोले कि हे दशरथ मैं किसलिए आया हूँ यह तुम्हें ! प्रतीत होना ही चाहिए। वशिठ मुनि जी विराजमान थे। उन्होंने कहा कि मैं आज इसलिए तुम्हारे द्वार आ पहुँचा हूँ कि मैं एक यज्ञ कर रहा हूँ बन में, परन्तु उस यज्ञ को पूर्ण करने के लिए मैं तुम्हारे राम और लक्ष्मण दोनों पुत्रों को ले जा करके अपने यज्ञ को ! पूर्ण कराना चाहता हूँ। जब उन्होंने ऐसा कहा तो राजा दशरथ मोह ममता मेंपरणित थे और कहा कि हे विश्वामित्र आपके यज्ञ को पूर्ण कराना मेरा भी तो !हे भगवन् ! को न ले जाइये !कर्तव्य है आप इन प्यारे अबोध पुत्रों, यह वास्तव में अबोध हैं, इनका बाल्यकाल है। उन्होंने कहा कि हे राजन मैं आपको नहीं ले जाना चाहता वहाँ ! युवाओं की आवश्यकता हैवहाँ वृद्धों की आवश्यकता नहीं। राजा दशरथ अनुरोध करने लगे और मोह ममता में मौन होने लगे। विश्वामित्र बोले कि हे दशरथ यदि तुम्हारी इच्छा नहीं है तो मैं तुम्हारे इस राष्ट्र को त्याग रहा हूँ और अपने यज्ञ को और किसी से पूर्ण करा पाऊंगा। अब राजा दशरथ बोले नहीं भगवन् ऐसा नहीं होगा। !

पुरातन काल में यह नियम था कि जब राज स्थली पर राजा विराजमान होते तो राज लक्ष्मियां भी एक पंक्ति में विराजमान होतीं, उनकी भी स्थली होती। तो कौशल्या भी एक स्थली पर विराजमान थी जब कौशल्या जी ने यह दृष्टिपात किया कि मेरे पति देव को मोह आ गया है तो उस समय उन्होंने कहा कि भगवन आप मोह क्यों कर रहे ! हैं मैंने जो अपने पुत्र को जन्म दिया है वह आज के दिवस के लिए दिया है, यदि मेरा पुत्र ऋषि के यज्ञ को भी पूर्ण नहीं कर सकता तो मेरा गर्भाशय नष्ट हो जाएगा। मेरे गर्भस्थल में जो बालक पनपा है और मैंने जो त्याग और तपस्या से बालक को जन्म दिया है, मेरा जीवन उसी काल में ऊर्ध्वा बनेगा जब राम ऋषि के यज्ञ को पूर्ण कराएगा। जब ऐसा कौशल्या जी ने कहा तो राजा मौन हो गए और राजा से कौशल्या ने कहा कि हे भगवन आपको प्रती है मैंने अपने पुत्र को त्याग और तपस्या से जन्म ! दिया है, मैंने तुम्हारे रजोगुण और तपोगुण को भी ग्रहण नहीं किया। उससे मेरा उपराम

रहा है, त्याग तपस्या से मैंने परिश्रम कियाहै और उस आनन्द को पान करते हुए अपने पुत्र को जन्म दिया है। जब ऐसा कहा तो राजा मौन हो गए और राजा ने कहा कि जब तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो राम और लक्ष्मण दोनों ही जाने चाहिए। राम और लक्ष्मण दोनों महाराजा विश्वामित्र को अर्पित कर दिए और यह कहा कि लिजिए भगवन ऋषि ! की अन्तरात्मा मग्न हो गई। राम लक्ष्मण को ले करके उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया। भयंकर बनों में अस्त्रों शस्त्रों की परीक्षा करते हुए उन्हें शिक्षार्थी बनाते हुए, उन्हें अग्रणी बनाते चले जा रहे थे।

जिस स्थली पर विश्वामित्र यज्ञ करते थे, उस स्थली पर जा पहुंचे। विश्वामित्र ने वहाँ तक अस्त्रों शस्त्रों की विद्या उन्हें प्रदान कराई और विद्या ऐसी पारायणता में अध्ययन कराई जो उनका अनुभव था क्योंकि महर्षि विश्वामित्र जहाँ क्षत्रीय थे वहाँ ब्रह्मवेत्ता भी थे। विश्वामित्र कौन होता है? विश्वामित्र वह होता है जो संसार का मित्र होता है। तो देखो, विश्वामित्र जो विश्व का मित्र है और जो एक ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण है वही विश्व का मित्र बन सकता है। जैसे परमपिता परमात्मा विश्व का मित्र है इसी प्रकार जो ब्रह्मवेत्ता महापुरुष होते हैं वह भी विश्व के मित्र होते हैं। विश्वामित्र जहाँ ब्रह्मवेत्ता थे वहाँ धनुर्वेद के भी महा पंडित थे जिन्होंने महर्षि स्वानकेतु महाराज के यहाँ अपने राज पुरोहित से धनुर्विद्या का अध्ययन किया था। तो भगवान राम को उन्होंने उस विद्या का पान कराया क्योंकि जहाँ वह यज्ञ करते थे वहाँ उनकी सुन्दर सी वेदी थी उस यज्ञ वेदी के साथ में एक विज्ञानशाला थी, विज्ञान में रमण करते रहते थे, अध्ययन चलता रहता था। भगवान राम को उन्होंने सर्वत्र दृष्टिपात कराया और कहा हे राम आज तुम्हें यह पालन करना ! है, इस स्थली पर तुम्हें लाने का मेरा सौभाग्य है। हे राम यह जो रावण का ! आतताई जो साम्राज्य छा रहा है भूमण्डल पर मेरी इच्छा यह है कि तुम अस्त्र शस्त्रों की विद्या में इतने पारायण हो जाओ जिससे ऐसे विशाल साम्राज्य को दमन करने वाले बनो। भगवान राम और लक्ष्मण दोनों ने कहा कि महाराज इसे हम अवश्य ! दमन करें, हमारा यह कर्त्तव्य है, हम रघुवंश की ऊर्ध्वा बनायेंगे। लक्ष्मण ने कहा कि हमारे जो बंशलल थे राजा सगर भागीरथ इत्यादि वह बड़ा महान वंशलज राह है। जब

वरतेन्दु ब्रह्मचारी को मुद्रा चाहिए थी तो उन्होंने महाराजा क्रोहसर्क नाम के राजा पर आक्रमण करने का विचार बनाया स्वप्न मात्र में, ऐसा विचार आते ही उन्होंने उसे लाखों मुद्रायें परणित कर दीं। परिणाम क्या कि हमारा वशलज बहुत विशाल रहा है, हम अपने उस वंशलज को सर्वत्र ऊर्ध्वा बनाने का प्रयास करेंगे। जब लक्ष्मण ने ऐसा कहा तो ऋषि की आत्मा गदगद हो गया और कहा धन्य है मेरे प्यारे उन्होंने यज्ञ की रक्षा ! की और धनुर्विद्या पारायणता में अध्ययन किया। अहिल्या नाम उन्होंने भी पृथ्वी को तुम इस अहिल्या का उद्धार करो। अपने राष्ट् !माना। उन्होंने कहा कि हे रामर में रहने वाले कृषक विशाल शक्तिशालियों को यह आज्ञा दी कि तुम इस अहिल्या का कल्याण करो, इसमें अन्न की उत्पत्ति करो। मेरे प्यारे उन्होंने ऐसा ही किया। !

मेरे प्यारे महानन्द जी ऐसा कहा करते हैं कि अहिल्या तो गौतम कीपत्नि थी और ! इन्द्र ने इन्हें शिला बनाया। जब इन्द्र अहिल्या पर मोहित हो गएं तो इन्द्र ने चन्द्रमा से कहा कि हे चन्द्रमा तुम मुर्गे बनो और मुर्ग बन करके तुम अपनी वाणी उच्चारण ! करो, गौतम जो स्नान के लिए जाएं तो अहिल्या को हम छल सकते हैं, एसी एक लोकोकित् आती है। मेरे प्यारेमहानन्द जी प्रकट कराते रहत !े हैं। चन्द्रमा जब मुर्ग बने और उन्होंने अपनी वाणी उच्चारण की और गौतम अपनी पत्नी को त्याग करके गंगा स्नान गएं तो कहा जाता है कि गंगा ने कहा कि हे गौतम तुम्हारे गृह में छल हो रहा है, इन्द्र ने अहिल्या का हनन किया है, अहिल्या को छला है। ऐसा प्रायः महानन्द जी प्रकट कराते रहते हैं परन्तु यहाँ वेद का वाक्य क्या कहता है अहिल्या गौतम ब्रभ्रे अस्तुति इन्द्राः वैत्राणी भवत प्रभा अस्तुति वेद का ऋषि कहता है यह हमारे यहाँ अलंकार आता है, वैदिक साहित्य में भीआता है, महर्षि गौतम से पूर्व का यह अलंकार है और वह क्या है? इन्द्र नाम सूर्य को कहा गया है और चन्द्रमा नाम गौतम को माना है क्योंकि यह रात्री का पति है और अहिल्या नाम रात्रि को माना है। रात्री का नाम अहिल्या है और गौतम नाम चन्द्रमा का है क्योंकि यह रात्री अपने अन्धकार रूपी श्रृङ्गार को चन्द्रमा को समर्पित कर देती है। इसी प्रकार गौतम नाम चन्द्रमा को माना है रात्री अहिल्या है और इन्द्र नाम सूर्य का। यहाँ गौतम नाम परमात्मा को भी माना है क्योंकि

परमात्मा भी रात्रि का पति है, तो जब इसे छल लिया तो गौतम ने इसे शाप दे दिया कि हे सूर्य तू सहस्त्रों भागों वाले बन जाओ। देखो, इन्द्र को सहस्त्र भग क्या है? भग नाम सूर्य की किरणों को कहा जाता है। वह जो सहस्त्रों भगों वाला इन्द्र नाम का सूर्य है वह संसार को प्रकाश देने वाला है।

मेरे प्यारे हम इस अहिल्या को विचारने वाले बनें। जहाँ अहिल्या नाम ऋषि की पत्नि ! का है वहाँ वैदिक साहित्य में अहिल्यानाम रात्रि का है, अहिल्या नाम प्रकृति कागहा गया है, गौतम नाम परमात्मा का भी है, गौतम चन्द्रमा को भी कहते हैं, परन्तु यह लोकोक्तियां होती हैं, यह अलंकारिक चर्चायें होती हैं। वह रात्रि का जो प्राण है जिसको मुर्ग कहते हैं, स्वाभांतिक कहते हैं और गौतम परमात्मा जो रात्रि का पति जैसे सूर्य है, सूर्य अपनी नाना प्रकार की किरणों की कान्ति में अन्धकार को अपने में समेट लेता है, धारण कर लेता है, रात्रि उसे अपने को समर्पित कर देती है ऐसे ही यह प्रकृति परमात्मा की गति से चल रही है इसलिए प्रकृति को भी अहिल्या कहा जाता है क्योंकि परमात्मा इस प्रकृति को गतिशील बनाते हैं, यहाँ परमात्मा को गौतम माना है और इस प्रकृति को अहिल्या माना है। हमारे यहाँ बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है कि अलंकारिक वाणी को हमें अच्छी प्रकार जान लेना चाहिए। इनका यदि अशुद्ध रूप बन जाएगा। इनका विशेष स्वरूप बनेगा तो समाज में अन्धकार छा जाएगा। अन्धकार से वरुण शंकर आ जाता है। उससे मानव का संयम समाप्त हो जाता है तो इसलिए वेद का ऋषि कहता है अहिल्याणी गच्छत प्रभे अस्वाति अहिल्या मानो यह अहिल्या कहलाती है जो संसार का कल्याण करने वाली है, अहिल्या इस रात्रि को कहते हैं, जब मानव प्रातःकाल से सायंकाल तक कार्य करता ही रहता है और सांयकाल को जब थकित हो जाता है तो माँ अहिल्या की गोद में यह मानव चला जाता है, निद्रा में तल्लीन हो जाता है, मन, बुद्धि, चित्त, अन्धकार अपने साम्य अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं अहिल्या माँ से वह शक्ति को प्राप्त करते हैं उस शक्ति को प्राप्त करने के पश्चात जब इन्द्र नाम का सूर्य उदय होता है और यह अहिल्या रूपी जो रात्रि है इसमें समाहित हो जाती है तो यह मानव जागरूक होता है और अपनी उतनी ही शक्ति को प्राप्त कर लेता है जितनी शक्ति

जाने वाले प्रातः काल में थी इसी प्रकार आज मेरे प्यारे आज हम माँ के द्वार पर ! चलें और माँ से उस शक्ति को प्राप्त करें जिस शक्ति के द्वारा हमारा कल्याण होता चला जाएं, हम संसार सागर से पार हो जाएं, प्रत्येक वस्तु को हम दार्शनिक रूपों से विचारने वाले बनें। हे प्रभुहमें ऐसी महान श !क्ति प्रदान कर जिससे भगवन हमारा ! जीवन विज्ञान में मानवता मं परणित होता रहे और हम इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें।

मेरे प्यारेविचारना क्या है !? आज का वाक् क्या कह रहा है? आज का ऋषि कहता है कि इस अहिल्या के ऊपर प्रत्येक मानव को अनुसन्धान करना चाहिए। देखो, भगवान राम की इन यन्त्रों का स्मरण रहता था। जिन्हें उन्होंने महर्षि भारद्वाज के द्वारा दृष्टिपात किया तथा निर्माणित किया। उन्होंने अन्तरिक्ष से शक्ति का प्रायः अध्ययन किया। उस शक्ति के द्वारा पृथ्वी के गर्भ को यन्त्रों के द्वारा दृष्टिपात किया जाता। अहिल्या में जो सूक्ष्म सूक्ष्म छिद्र होते हैं, वही छिद्र यन्त्रों में विशाल छिद्र दृष्टिपात होते हैं और उन्हीं यन्त्रों के द्वारा पृथ्वी के गर्भ को दृष्टिपात किया जाता है। आज हमारे राष्ट्र में इस प्रकार के वैज्ञानिक होने चाहिए जिन वैज्ञानिकों के द्वारा इन यन्त्रों का निर्माण हो करके हम इस माँ अहिल्या के गर्भ को अच्छी प्रकार जानने वाले बनें।

महर्षि वशिष्ठ ने भगवान राम के जीवन के, ब्रह्मचारियों के जीवन के तीन भाग बनाएं। थे। सबसे प्रथम उन्होंने दस वर्षों का भाग मानो उन्हें वचन, प्रतिज्ञाओं, शिष्टाचार में परणित कराया और इसके पश्चात उसके जीवन में उनकी विद्या क्रियात्मक और तृतीय उन्होंने जो भाग शिक्षा का था उसको कराना और क्रियात्मक अपने जीवन को विज्ञान में परणित कराना, यह विद्यालयों में तीन भाग होते। तीन ही भागों में मानव को परणित रहना चाहिए। विद्या के कक्ष में रमण करना मानव का कर्त्तव्य है।

मेरे प्यारे35 ! वर्ष की आयु में भगवान राम का राजा जनक के यहाँ संस्कार हुआ, तुम्हें प्रतीत होगा। विचार विनिमय यह कि आज हम अपने प्यारे प्रभु का गुणागान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं और अहिल्य के गर्भ को अच्छी प्रकार जानें, परमपिता परमात्मा की महती को जानें यह है आज का हमारा वाक्य। आज के वाक्य

उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि महर्षि मुनि शाखायें आज समाप्त हो गई (दद्दड्) हैं वह काण्ड हमारा समाप्त हो गया है। इसके पश्चात कोई द्वितीय शाखा का प्रचरण होगा। आज का हमारा यह वाक्य जब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमारे ऋषि मुनियों ने बहुत ही परिश्रम किया, अनुसन्धान किया, उन अनुसन्धान की वेदी पर प्रत्येक मानव को जाना चाहिए, विचारना चाहिए, इनका जीवन कितना तपोमय कहलाया गया है। शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पाठ होगा

१६ 15 02 1974 पुष्प 22 श्री दीक्षित जी के प्रश्न का समाधान

देखो, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान करते चले जा रहे थे। हमारे यहाँ परम्परा से ही वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। पवित्र वेदवाणी में परम पिता परमात्मा की आभा का प्रायः वर्णन किया जाता है परमपिता परमात्मा को योग गम्य मान माना जाता है। इसलिए हमारे आचार्य जन, ऋषिजन, परम्परा से ही उस का योग स्थिति में, दिग्दर्शन करते हैं इस योग से ही योगी अपनी आभा को ऊर्ध्वागति में ले जाता है। वेद मन्त्रों का अर्थ भी तो यौगिक ही है। वही सार्वभौम विचार है वेद मन्त्रों का रूढ़ि अर्थ भी किया जाता है और जब मानव रूढ़िवाद में परणित हो जाता है तब ही द्रव्य का और आभा का दुरूपयोग होने लगता है। रूढ़ि उसे कहते हैं कि जिन विचारों का जो मानव होता है उसी विचार से उसका भावार्थ कर लेता है। योगीजन ऋषिजन अन्तरध्यानी होते हैं वे अपने मन और प्राण को एकाग्र करके वेदमन्त्र के गर्भ में प्रवेश हो जाते हैं वेद मन्त्रों का भाव तो जब ही प्रकट होता है जब मन और प्राण दोनों का समन्वय हो जावे उससे जो तरंगे उत्पन्न होती हैं उनको लेखबद्ध करना ही यौगिक वाद माना जाता है।

मैंने बहुत पुरातन काल में यह वाक्य कहा है कि प्रत्येक वेदमन्त्र परमात्मा का ज्ञान है वह यौगिकता से सुगठित है मैंने पुरातन काल में यह भी कहा है कि जो मानव योगी बनना चाहता है वह वेद के भाष्य को अच्छी प्रकार से जाने उसकी भाषा को समझे तो विवेक से वह रुढ़िवाद में नहीं जावेगा। और लोलुप्ता के संघर्ष से दूर रहेगा। समाज में

जब विज्ञान का दुरूपयोग होता है तब ब्रह्मचर्य भ्रष्ट हो जाता है जब राष्ट्र मैं ब्रह्मचर्य भ्रष्ट हो जाता है तो रक्तभरी क्रान्ति बहुत ही शीघ्र आ जाती है।

तुम जो योग के सम्बन्ध में जानना चाहते हो योग में प्राण और मन दोनों को प्रकाश में रमण करा दें तो उस प्रकाश से लोक लोकान्तरों में जा सकते हैं जैसे विद्युत अन्तरिक्ष में होती हुई इस लोक में प्रदीप्त हो जाती है और जैसे सूर्य मण्डल की विद्युत सर्वत्र एक भूमिका में परणित होती रहती है और प्रत्येक मानव की आकांक्षा को पूरी करती है।

मुनीवरो तुम्हें प्रतीत होगा कि जो इस प्रकार का योगी बनना चाहता है तो उसको ! अपने जीवन को ऊर्ध्वगति में ले जाने के लिए नाना प्रकार की औषधियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आयुर्वेद में जाना होग‌ा।

बेटा तुम्हें प्रतीत होगा कि पुरातनकाल में हमारे आश्रम में एक देव कन्या ने आठ ! वर्ष की अवस्था में तीन वर्ष के अभ्यास से मन और प्राण की सन्धि करके ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश किया था और सूर्य में मण्डल की यात्रा की थी। उसका खान पान और अशन यौगिक प्रकार का थाजो योगी के लिए बहुत ही आवश्यक है।

बेटा यह बहुत ही गम्भीर विषय है जिस पर आज मुझसे प्रसारण कराया है यह ! हमारे बहुत अनुभव का विषय भी रहा है आज मैं उसकी विवेचना किए देता हूँ। कुछ संक्षिप्त से। यह अशन एक तो कहा न अनवेकृति अवरेता और सेलखण्डा ये तीन औषधियां होती हैं इनकी लेकर योगी अशन बनाता है इन औषधियों की यह विशेषता है कि पृथ्वी से उन कणों को आकर्षण शक्ति से अपने में ग्रहण करती है जिससे प्राण की गति तीव्र बन जाती है शरीर में प्राण की गति में तीव्रता आ जाती है सूर्य की कान्ति इस पृथ्वी पर सौम्यता को प्राप्त होती रहती है और वह औषधियों में रमण करती रहती है। देखो, स्वाति नामक एक वृक्ष होता है उसका पंचाग बनाया जाता है उसकी पांचों वस्तु लेकर के अग्नि में तपाते है और उसका पात बनाते हैं उसका पान किया जाता है। यदि हम कृषक अन्नादि को भी ग्रहण करना चाहें तो वह अन्नादि होता है जिसमें प्राण अवगत हों इस प्रकार के आहार से मन की धारा स्थिर हो जाती है और

प्राण की गति का समावेश प्रारम्भ हो जाता है। जब मन और प्राण दोनों एक सूत्र में आते हैं तो इन्द्रियों का व्यापार समाप्त हो जाता है और तब प्राण और मन दोनों की धारा त्रिकुटी में पहुंचती है वहाँ दो कृतिकायें होती हैं उन पर जा करके मन और प्राण दोनों का अभ्यास से मिलान होता है वे दोनों कृतिकायें तीव्रता से गति करने लगती हैं दोनों कृतिकायों के बीच में नाभि होती है इस नाभि को हम सूर्याबगानन नाम की नाड़ी कहते हैं उस नाड़ी का सम्बन्ध ब्रह्मरन्ध्र से होता है जब वो दोनों कृतिकायें तीव्र गीत से रमण करती हैं तो उस नाड़ी के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में जो चक्र है वह भी तीव्र गति से रमण करने लगता है वह एक क्षण के समय में तीन सौ बहत्तर परिक्रमा कर जाता है और उसमें विद्युत का आभास हो जाता है उस समय योगी को मन और प्राण से कहीं जाना नहीं होता उस चक्र के द्वारा द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक, और भूलोक इन तीनों की वार्त्ता को योगी जान लेता है।

मुनिवरों मैं योग क्षेत्र में नहीं जाना चाहता इतना बताता हूँ कि नाना प्रकार की ! औषधियों का पान करने से शरीर में ऐसी प्राणु वायु को उत्पन्न करना है कि जिससे वह दोनों कृतिकायें अपने अपने अगरोह में गति करने लगें और मन और (परिधि) प्राण दोनों का समावेश होकर के योगी अपने संसार में रमण करें। संकल्प शक्ति से अन्तःकरण में प्रवेश हो जावे तो जो अंकुर अन्तःकरण में विराजमान है जो हमारे राष्ट्रों और लोकों में सम्बन्ध करते हैं संकल्प शक्ति से प्रतिभा प्रकाश की ध्वनि उत्पन्न हो जावे और उसमें वह स्वतः रमण करने लग जावे। योगी का मन सब से प्रथम ब्रह्मरन्ध्र से और उसके पश्चात् अन्तःकरण में जाता है अन्तःकरण सूक्ष्म मण्डल है, उसका स्थान ब्रह्मरन्ध्र में माना जाता है वह ब्रह्मरन्ध्र के निचले भाग में है जिसमें जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान रहते हैं।

बेटा तुम्हें प्रतित होगा आज जिस सहिता का अध्ययन कर रथा िा वह आज से ! लाखों वर्ष पर्व गुरूदेव के चरणों में ओत प्रोत होकर कन्ठस्थ की थी। जब कृतिकायें अन्तःकरण में रमण कर जाती हैं तो ब्रह्मरन्ध्र में आभास होता है अन्तःकरण में जो अंकुर विराजमान हैं वे शाखा रूप में हो जाते है और प्रत्यक्ष होते ही नाना प्रकार का

आभास होने लगता है। विज्ञान भी मानव के समीप आ जाता है मैं आज अधिक विवेचना देने नहीं आया विचार केवल यह हे कि मानव का योगी का मन कहीं जाता नहीं अन्तःकरण में ही रहता है ब्रह्माण्ड की कल्पना शरीर से करते है। इस पृथ्वी के गर्भ में भी तो मन काम कर रहा है और प्राण काम कर रहा है। इस पृथ्वी में नाना प्रकार का रसोत्पादन हो रहा है उसका विभ जन करने वाला यह मन ही तो है। वायुमण्डल में भी मन रमण कर रहा है अग्नि में भी मन है सूर्य मण्डल में भी मन रमण कर रहा है। इस संसार में मन और प्राण दोनों ही गति कर रहे हैं। जब ग्रीष्म ऋतु आती है तब मन और प्राण ही तो जलों को उत्पन्न करके उस का सूक्ष्म रूप बना देते हैं। स्वर्ण धातु का निर्माण मन और प्राण के साथ ही तो होता है सूर्य की नाना किरणों आती हैं वे इस पृथ्वी के कणों में रमण कर जाती हैं यह किरणों प्राण तो हैं ही और मन उन परमाणुओं को जहाँ का तहां विभाजन करके विराजमान कर देता है। हमारे अन्नाद में भी नाना प्रकार की धातुएं विराजमान है सूर्य से जो किरणों आती हैं वे अग्नि को लेकर आती है, वायु को लेकर आती हैं वे स्वर्ण की धातु की ऊँचा बना देती हैं, उसके सूक्ष्म कणों को स्थूल रूप में परणित कर देती है इस सूक्ष्म गति को योगी ही देख सकता है।

भगवान राम में यह विशेषता थी कि जब वे मन और प्राण की संधि करके पृथ्वी के गर्भ में जाते थे तब उसको भली प्रकार जान लेते थे। मैंने तुम्हें कई बार प्रतीत कराया है कि अहिल्या का उद्धार करने वाले भगवान राम कहलाते हैं। अहिल्या पृथ्वी को कहते हैं। भगवान राम ने महर्षि भारद्वाज के यहाँ छःमाह तक अहिल्या विद्या को पढ़ा थी। सूर्य की किरणों को भी अहिल्या कहते हैं भगवान राम इतने वैज्ञानिक थे कि पृथ्वी के गर्भ में दस दस योजन के परमाणुओं की जान लेते थे। इस विज्ञान में मैं जाना नहीं चाहता यह तो विज्ञान वन है समय आवेगा तो इसकी वार्त्ता प्रकट करेंगा।

बेटा मैं यौगिक वार्त्ता प्रकट कर रहा था कि मन और प्राण का एक सूत्र में समावेश ! करना होता है। योगी की संकल्प शक्ति उसके पुराने संस्कारों का भी साक्षात करा देती है। दोनों कृतिकाओं को जागरुक करना है उनके निचले भाग में स्वातामतित नाम

का एक यन्त्र विराजमान है उसमें होकर ही मन ब्रह्मरन्ध्र में रमण करता है। अब विचार यह आता है कि यह कैसे किया जावे। हमारे ऋषि कहते हैं कि सबसे प्रथम मानव को याग करना चाहिए हम भी जब वर्ष के थे तो गुरू जी याग करते थे। याग का 12 अभिप्राय यह कि समिधाओं से अग्न्यधान करते थे पर्वतों को औषधियों से गंगा के तट पर याग किया करते थे। कुछ सामग्रियां इस प्रकार की होती है जो योग में भी सहायक हो जाती हैं। तो योगी दोनों प्रकार का ही त्याग करता है। यह मानव का जो मुखारबिन्दु है इसका जो अग्र भाग है। उसके आकार से ही यज्ञशाला बनानी चाहिए उसमें 64 प्रकार की औषधियां होती हैं। योगी यज्ञशाला में याग करता है उसी, में अभ्यास करता है उसी में अध्ययन करता है। यह विद्या योगियों के मस्तिष्कों में रही है। यह विदया वर्षों में आती है। मुझे स्मरण है कि एक समय वेद का अध्ययन करते हुए मुझे 12 कुछ भाग स्‌मरण न रहा है तो गुरुदेव ने दूसरी बार नहीं बताया तो याग करने के पश्चात जब मैंने कुछ औषधियों का पान किया तो स्मरण शक्ति जागरुक हो गई। मन्त्र का अर्थ और मीमांसा भी सुत गई मैं आज इस सम्बन्ध में विशेष विवेचना नहीं देने आया हूँ आज मैं उस ब्रह्म ऋषि की वार्त्ता प्रकट कर रहा हूँ जो वर्ष गाड़ी के 101 नीचे विराजमान हो कर औषधियों का पान करके योगाभ्यास किया करते थे। और पूरे दार्शनिक थे। वे थे रैक्क महर्षि।

आज तो मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे मैं लाखों वर्षों के काल में विराजमान हूँ और ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे में किसी याग को करने जा रहा हूँ, उस अभ्याधान को करने जा रहा हूँ जहाँ समिधा अग्नि में परणित हो कर तीनों पापों को हनन करने वाली होती है। हमारे ऊपर उन आचार्यों का इतना ऋण है जिन्होंने हमें औषधियों से योगी बनाया और अपनी आभा से प्रतिष्ठा में परणित कर दिया।

बेटा !मुझे स्मरण आ गया कि एक समय स्वेत्तामवरी ऋषि महाराज अपने जीवन का अध्ययन कर रहे थे। ब्रह्मरन्ध्र में प्रकाश का अनुभव कर रहे थे जहाँ कृतिकाएं जागरुक हुई दोनों का अनुदान हुआ तो उनका प्रकाश हो गया उस प्रकाश में जगत को दृष्टिपात करना चाहा। अरे, भोले यह कैसे हो सकता है। अरे, इन कृतिकाओं से आगे तो रमण

करने का अभ्यास करो आगे स्वादाना नतिक नाम का चक्र आता है जब वह जागरुक होता है तो ब्रह्मरन्ध्र में मन और प्राण दोनों का समावेश हो जाता है तो योगी अपने में जगत को दृष्टिपात कर लेता है जब जगत अपने से पृथक ही नहीं होता तो हम मन के द्वारा प्रकाश को कहा ले जावें। राष्ट्रों का सारा व्यापार तो सामने ही दीख रहा है। संकल्प मात्र जो मानव के शरीर में रमण करता है। और दूसरा विश्व भान कहलाता है इन दोनों का मिलान ही तो याग कहलाता है तब कोई राष्ट्र कोई समाज कोई लाक कोई तत्त्व इस पृथ्वी पर ऐसा नहीं रहता जहाँ योगी की आत्मा प्रकृति पर अपना अनुशासन कर सके।

बेटा महर्षि वशिष्ठ मुनी महाराज के द्वारे कामधेनु गो थी जिसके दुग्ध का आहार ! करते थे। कामधेनु का अभिप्राय यह है कि जो मानव की कामनाओं की पूर्ति कर दे वह कैसी गऊ थी। गऊ नाम विद्या का है। गऊ नाम का पशु भी होता है परन्तु यह जो गऊ है वह तो इन्द्र से प्राप्त हुई है। इन्द्र नाम परमात्मा की उपासना से जो उन्हें कामधेनु प्राप्त हुई थी वह मन की कामनाओं की पूर्ति करने वाली थी। वह विद्या योग विद्या कहलाती है उसको कामधेनु कहते हैं पुरातन काल में हम वशिष्ठ जी से कहा करते थे कि महाराज कामधेनु का भान करा दें। जो कामधेनु इन्द्र से प्राप्त हुई है ! देवताओं की धरोहर हे देवता उसी का दुग्ध पान करते हैं देवता इन्द्र के द्वार से कामधेनु प्राप्त करते हैं यह महाराज वशिष्ठ का उत्तर था। विचार विनिमय यह है कि हम अपने प्यारे प्रभु की महिमा जानने वाले बने और उसकी महिमा को जानते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें।

अरे, यदि मानव का संसार में आने का कोई उद्देश्य है तो केवल यही है जो तुम को आज मैंने सूक्ष्म रूप से प्रकट किया है। इस जीवन को जब क्रियात्मक में ले जाओगे तब यह प्रतीत होगा। इस वाक्य में कल्पना व टिप्पणियां नहीं है। टिप्पणी तो रूढ़िवाद में होती है। यौगिक वाद में नहीं होती यौगिक वाद में तर्क भी काम नहीं करता वह केवल अनुभव का विषय बन जाता है इसलिए प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या की संसार में यौगिक बनना है। यौगिक वाद में जाना है जिस यौगिक ध्येय में जाकर मानव

का जीवन पवित्र बन जाता है।

बेटा मुझे स्मरण है कि एक समय महर्षि विभीडक मुनि महाराज शिलाद मुनि महाराज ! मैं अपने जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों को !के पास पहुंचे और कहा कि महाराज जागरुक करना चाहता हूँ तो उन्होंने कहा कि तुम अग्न्याधन करो देखो, उन्होंने 12 वर्ष तक याग किया उसके पश्चात उन्होंने एक वर्ष तक स्थूल अन्न न लेकर सूक्ष्म आहारों का पान किया कुछ वृक्षों के पत्तों का रस बना कर उस को पान किया फिर वायु के जो परमाणु होते हैं उसमें से पोषक प्राण और मन के द्वारा पान करना प्रारम्भ किया तो उनकी दोनों कृतिकायें जागरूक हो गई। ब्रह्मरन्ध्र में उनकी प्रतिभा जागरुक होने लगी तो एक समय हमें प्रकट कराया कि उन्हें करोड़ों जन्म के संस्कार जागरुक हो गएं यह कैसे जागरुक होते हैं यह कोई असम्भव नहीं यह तो अभ्यास और अनुसन्धान का विषय है ऋषि मुनि प्रायः अनुसन्धान करते रहते हैं। इसी की तो मानवी दर्शन कहते हैं। मानव को मानवी दर्शन हो विचारना है।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने कल रूढ़िवाद के सम्बन्ध में अपने विचार दिए उन्होंने ऋषि ! मुनियों की वार्त्तायें भी प्रकट कीं कि जब कोई योगी होता है तो युग परिवर्तन हो जाता है और वह राष्ट्र का परिवर्तन कर देता है परन्तु यह परिवर्तन कैसे किया जाएं यह केवल अभ्यास का विषय है। ब्रह्मचर्य का विषय है, यह कृतिकाओं को जागरुक करने का विषय है, यह मन और प्राण को ओजस्वी बनाने का विषय है।

जब मानव विशेष मात्रा है अन्न का पान कर लेता है उदर का भरसा कर लेता है तो योगी नहीं बन सकता जैसे योग का कार्य सूक्ष्म है वैसा ही योग का आहार भी सूक्ष्म है और योगी का व्यापार भी सूक्ष्म है तभी वेद का अध्ययन भी बन जाता है वेदमन्त्र दिव्यता में परणित हो जाते हैं क्योंकि वेद प्रकाश है और प्रकाश योग का कुन्दन माना जाता है। बेटा प्रकाश ही वेद है और प्रकाश ही सौम्य है। इसीलिए योग की जो ! मीमांसा है और वेद का जो भाष्य है वह रूढ़िवाद में नहीं जाना चाहिए रूढ़ि वाद ही समाज को अन्धकार में ले जाता है महाभारत काल में दो प्रकार की मीमांसा होने लगीं थीं और उसका परिणाम निकला कि राष्ट्र में घृणा द्वेष आ गया और संग्राम हो

गया और अधिकार अनधिकार की मीमांसा जाती रही।
बेटा 101 मुझे परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से महाराज अश्वपति के यहाँ ! वर्ष तक पुरोहित बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं ब्रह्मचारियों का एक पंक्ति में विराजमान करके उनके मस्तिष्क अध्ययन करता था। तभी अधिकारी अनाधिकारी की जानकारी होती थी। मस्तिष्क को जानने के लिए आयुर्वेद का अध्ययन आवश्यक है यह है आज का वाक्। आज के विचारों का अभिप्राय यह कि हम अपने जीवन को ऊँचा बनाने का प्रयास करें यौगिक क्षेत्र में जाने का प्रयास करें समाज और राष्ट्र को ऊँचा बनावे। अब वेदों का पाठ होगा। बरनावा लाक्षा गृह मण्डप दोपहर तीन बजे।

१७ 28 03 1974 पुष्प 22 शरीर त्याग के पश्चात जीव की गति

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व से कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, हमारे यहाँ परम्परा से ही कुछ वेदवाणी का प्रसार होता रहता है। वह वेदवाणी जो मानव को विचित्र बनाने वाली है। मानव के अन्तःकरण को पवित्र बना देती है। जब मानव का हृदय, अन्तःकरण पवित्र हो जाता है तो उस मानव के हृदय में एक उज्ज्वल और अनुपम ज्योति उत्पन्न होने लगती है। उसमें ऊर्ध्व गति होती है और वह जो ऊर्ध्व गति होती है वह परम पिता से मिलान कराने वाली होती है। क्योंकि वह जो ऊर्ध्व गति है। वह मानव के जीवन का उत्थान कर देती है, और जब उस ज्योति से ज्योति मिलान हो जाता है, तो एक परमानन्द प्राप्त हो जाता है। उसी को हमारे आचार्यों ने परम आनन्द कहा है। तो आज हम अपने जीवन को उज्ज्वल हो करते चले जाएं। हमारा यह लक्ष्य रहता है कि हम उस परम पिता परमात्मा का गुणगान गायें।
प्रत्येक मानव आनन्द का पिपासु रहता है। मेरी पवित्र माता है, वह भी आनन्द चाहती हैं, ऋषि मण्डल है वह भी अनुसन्धान करते हुए केवल आनन्द के लिए तपस्या में परणित होते हैं। एक राष्ट्र पिता बना है कि मैं स्वयं सुखद बन जाऊं और मेरे राष्ट्र में रहने वाली जो प्रजा है। उसके लिए भी ऐसा नियम होना चाहिए, जिससे मेरी प्रजा सर्वत्र आनन्द में ओत प्रोत हो जाए। कौन संसार में आनन्द नहीं चाहता? जिस प्राणी

के द्वारा जाएंगे। वही आनन्द का पिपासु है। आज तुम मृगराज के समीप पहुंची, वह भी आनन्द को चाहता है। नाना योनियों में जाओगे तुम्हें वहाँ भी आनन्द की पिपासा प्राप्त होगी।

तो मुनिवरोंमानव को ऐसी पिपासा क्यों है !ः? वह भी तो मानव को विचार विनिमय करना है। क्योंकि पिपासा में ही नाना द्रव्य को एकत्रित करने का प्रयास प्राणी करता है। और भी नाना कार्य को करने में वह सफलता को प्राप्त होता रहता है, जब वह द्रव्य से ऊब जाता है, उस समय वह चाहता है कि द्रव्य को कहीं धर्म कार्य में परणित करता रहे। धर्म को मिमांसा को जानने की उसकी उत्कट इच्छा रहती है। वह साधक आगे चलता हुआ केवल आनन्द की पिपासा के लिए नाना ऋषि मुनियों के दर्शनार्थ उनकी मीमांसा को और उनके हृदय के जो उद्गम विचार है, उनको सुनने की उसकी उत्कट इच्छा रहती है। और नाना प्रकार के सुख के लिए प्रत्येक प्राणी इस संसार में सुख की मीमांसा में परणित रहता है। हमारे यहाँ विद्युत का प्रकाश परम्परा से एक महत्व को प्राप्त होता रहा है। प्राणी विद्युत के प्रकाश में जाता है कि यहाँ मुझे आनन्द प्राप्त होगा। नाना कीट पतंग योनियां आ जाती है। क्यों आ जाती है? यहां प्रकाश है, आनन्द प्राप्त होगा। बेटा वास्तव में वहाँ आनन्द प्राप्त नहीं होता। !

मानव को अपनी वास्तविक आनन्द को पिपासा को जानना है, तो मानव को अपनी हृदय की गुफा में पहुंच जाना चाहिए। वहाँ जो हृदय रूपी गुफा है, वह जो अपना प्यार प्रभु है। वह हृदय में ही तो ओत प्रोत है। उस हृदय को जान लेने के पश्चात् मानव की सारी पिपासा शान्त हो जाती है।

मेरे प्यारे मैं कल के वाक्यों में कुछ आत्मा का विवरण देता चला जा रहा !ऋषिवर ! था कि आत्मा कितना सूक्ष्म है। मैं उसका प्रमाण भी दे रहा था। मेरे आचार्य जनों और भी आदि ऋषि मुनियों ने इसके सम्बन्ध में नाना विचार दिए हैं। मैं तो केवल उन ऋषियों का उच्चारण किया हुआ उनका मन्थन किया हुआ जो उपदेश, विचारधारा है, उसका नित्य प्रति परिचय दे देता हूँ। प्रत्येक शब्द का परिचय कराता रहता हूँ। **प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में एक आकांक्षा होती है और वह क्यों होती है? क्योंकि वह आनन्दमय**

अवस्था से आया है, और अल्पज्ञता को परणित हो गया, अज्ञान में परणित हो गया। इस नाना प्रकार की माया ने मानव को इतना कटिबद्ध कर लिया, अपने में वशीभूत कर लिया। जब भी इसे कभी छुटकारा प्राप्त होता है, इस माया से दूर हो कर उसी काल में अपने प्यारे प्रभु की पिपासा में कटिबद्ध हो जाता है। और इसकी धारा बन जाती है कि मेरी गति ऊर्ध्व बन जाएं। और मैं अपने प्यारे प्रभु से अपना मिलान करूं। परन्तु मानव के द्वारा जो एक महान संस्कारों का समूह बना हुआ है, संसार में आवागमन की जो एक प्रतिभा बनी हुई है। वह संस्कार मानव को बाध्य करता रहता है। कहीं अपमान बाध्य करता है तो कहीं मान करता है। पिपासा होते हुए भी उस मार्ग को अपना नहीं पाता। इसका मूल कारण है कि प्रकृति से हमारा मन इतना मलीन हो गया है कि हम ऊर्ध्वगति की तथा आनन्द की पिपासा ही पिपासा करते हैं। परन्तु उस तक जाने का प्रयास नहीं कर पाते। क्योंकि मान अपमान में ही हम परणित हो जाते हैं। महर्षि कपिल जी ने बड़े सुन्दर शब्दों में कहा है। जब मानव की तृष्णा अधिक बलबती हो जाती है, मान अपमान में इतना कटिबद्ध हो जाता है कि वह मान ही मान चाहता है, अपमान नहीं चाहता। जिसका मान होता है। तो अपमान कौन चाहेगा? अपमान की पिपासा किसे रहेगी? हमारे ऋषि मुनियों ने तो यह कहा है कि मानव का अपमान होना चाहिए। और यदि उस अपमान के अनुसार एक विचार धारा प्रकट कर रहा है कि यह मानव अप्रत है। परन्तु यह केवल उसका अनुमान मात्र है। (अधूरा) यदि वह उन विचारों का बन जाता है, तो जानो कि वह नारकिक प्राणी बन गया है। और यदि वह मानव उसके अनुसार नहीं है, कल्पना कर रहा है, मिथ्या कल्पना कर रहा है, मान का पाठ उसके द्वारा आ गया तो वह मानव भी नारकिक हो जाता है।

मेरे प्यारे आज हमें इन वाक्यों पर विचार विनिमय तो करना ही होगा। !ऋषिवर ! आज इस जन्म में नहीं तो द्वितीय जन्म में करना होगा। परन्तु परमात्मा की उस चेतना के ऊपर तो विचार विनिमय अवश्य करना होगा। क्योंकि उसी के द्वारा से आते हैं, और उस चेतना का स्वभाव है, ऊर्ध्व गति होने का। जैसे यज्ञशाला में अग्नि प्रद्वीप्त हो रही है, उसका स्वभाव है ऊर्ध्व गति होना। वह ऊर्ध्व गति क्यों बन जाती है? क्योंकि

जितनी विद्युत की गति है, महत्ता है, सूक्ष्म अग्नि की जो चेतना है। वह अन्तरद्वि में ओत प्रोत है। सूर्य की किरणों में ओत प्रोत है। नाना तारा मण्डलों में ओत प्रोत है। इसलिए उसकी ऊर्ध्व गति हो जाती है। और उसकी ऊर्ध्व गति होती रही है। क्योंकि वायु भी ऊर्ध्व गति को ग्रहण करने लगती है। और वह जो ऊर्ध्व गति है उसमें ही व्यापक वाद होता है। उसमें ही एक महान प्रसारण शक्ति होती है। वह जो प्रसारण शक्ति है वह उस मानव के विचारों को वायु मण्डल में ऐसे प्रसारित कर देती है, जैसे यज्ञशाला की अग्नि सुगंधि को लेकर के वायु को दे देती है और वायु उस सुगंधि को देवताओं को अर्पित करती चली जाती है।

आज मैं अधिक वाक्य प्रकट नहीं करना चाहता हूँ। ये ऐसे विषय हैं जिन पर विचार विनिमय करना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है। बहुत पूर्व काल में मैंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि यह जो आत्मा है, यह शरीर को त्याग करके कहाँ चला जाता है? देखो, हमारे यहाँ बालक नचिकेता ने यमाचार्य से कहा था कि प्रभुयह ! आत्मा इस शरीर को त्याग करके कहाँ चला जाता है? एक समय अश्विनी कुमारों के मध्य में महर्षि जी विराजमान थे। महर्षि शाण्डिल्य जी से अश्विनी कुमार जी ने कहा कि प्रभु यह आत्मा शरीर को त्याग करके कहाँ चला जाता है। महर्षि शाण्डिल्य जी ने कहा कि आत्मा इस शरीर को त्याग करके यम को प्राप्त हो जाता है। यम वायु को कहते हैं। यम की तीन प्रकार की श्रेणियां होती हैं। 1. सतो गुणी, 2. रजो गुणी और 3. तमो गुणी प्रवृत्ति होती है। यदि मानव रजोगुण से इस शरीर को त्यागता है। तो रजोगुणी यम को प्राप्त हो जाती है और यदि आत्मा तमो गुण में शरीर की त्यागता है। तो वह तमो गुण को प्राप्त हो जाता है। और यदि सतो गुण में त्यागता है तो वह सतो गुण को प्राप्त हो जाता है। और जो देवतव को अपना लेता है, वह देवतव को प्राप्त हो जाता है। बेटा यम की तीन श्रेणियां हैं। और यम से जो ऊपर का भाग है वायु का उसे ! देववत् कहते हैं। वहाँ देवताओं की देवाम् नाम की वायु रमण करने वाली है। वह इसको अपना लेती है।

इस सम्बन्ध में मुझे एक वाक्य स्मरण आता चला जा रहा है। इस मानव शरीर में इस

अयोध्या नगरी में दस द्वारा होते हैं। हमारे दो चक्षु हैं दो श्रोत्र हैं। दो घ्राण हैं, एक मुखारबिन्द है, सुग्रीव है और एक उपस्थ है। ये नौ द्वार माने गएं हैं। और दसवां द्वार हमारे यहाँ ब्रह्मरन्ध्र को माना गया है। ब्रह्मरन्ध्र उसको कहते है जो हमारे नाभि चक्र से तीन नाड़ियां चलती हैं। जिसको इड़ा पिंगला और सुषुम्ना कहा जाता है। वह हृदय के द्वार से होती हुई, कंठचक्र से होती हुई घ्राण के स्थान और त्रिवेणी में जाकर के तीनों का मिलान हो जाना है। वहाँ बेटा यह आत्मा योगी का वहाँ पहुंच कर स्नान करता ! है। त्रिवेणी उसको कहा जाता है जहाँ गंगा, यमुना सरस्वती तीनों का मिलान होता है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ही गंगा, यमुना सरस्वती कहलाई गई हैं। जिसको हमारे यहाँ अग्र भाग भी कहा गया है। जो हमारा घ्राण से ऊपर लघु मस्तिष्क है। वहाँ जाकर इन तीनों का मिलान होता है। बेटा वे नाड़ियां एक बन करके पंचाग नाम की नाड़ी ! कहलाती है इसका सीधा सम्बन्ध लघु मस्तिष्क से और ऊर्ध्व मस्तिष्क दोनों से होकर ब्रह्मरन्ध्र में भी उनका सम्बन्ध होता है। ब्रह्मरन्ध्र ब्रह्मरन्ध्र में सम्बन्ध होता हुआ रीढ़ के विभाग से होता हुआ जहाँ कुण्डली नाम की जी नाड़ी है, कुण्डली का जहाँ स्थान होता है वहाँ उस नाड़ी का अन्तिम भाग होता है।

हमारे ऋषि मुनियों ने ऐसा कहा है कि चक्षुओं में भी भाग होते हैं। एक चक्षु को हमारे यहाँ विश्वामित्र कहते हैं एक चक्षु को हमारे यहाँ चन्द्र कहते हैं। जो चक्षुओं का सूर्य भाग है उसके द्वार पर जब यह आत्मा इस शरीर को त्यागता है तो वह आत्मा सूर्य लोक को प्राप्त हो जाता है। जो आत्मा जो चन्द्रायण चक्षु से आत्मा शरीर को त्यागता है तो वह चन्द्रमा को प्राप्त हो जाता है।

इसी प्रकार हमारे श्रोत्रों में एक भारद्वाज है, और एक कश्यप है। दोनों हमारे श्रोत्र कहलाए गएं हैं। यदि भारद्वाज से मानव इस शरीर को त्यागता है, आत्मा इस द्वार से जाता है तो रजोगुणी प्रवृत्ति होती है। जिसमें वायु लोक प्रधान होते हैं। उसको प्राप्त हो जाता है। और जो कश्यप द्वार से आत्मा त्यागता है वह आत्मा आरुणि लोकों को प्राप्त होती है।

मेरे प्यारेयदि यह आत्मा शरीर को मुखारबिन्द से त्यागता है !ऋषिवर !, तो उसमें अग्नि

के प्रभाव तेजस्वी होता हुआ रजोगुण को प्राप्त होता है। वह राष्ट्रीय पुरुष बन जाता है। मानव बन जाता है। इस घ्राण के एक सूर्य स्वूर है द्वितीय चन्द्र स्वर कहलाया जाता है। जो आत्मा सूर्य स्वर से जाता है, वह प्राण की विशेषता को लेता हुआ वह आत्मा ऊँचे कुलों में जन्म लेकर और उस साधना में परणित हो जाता है। वह सतोगुणी होता है। और जो चन्द्रायण से त्यागता है उसका आत्मा सतोगुण और तमोगुण दोनों से मिश्रित होते हुए अपने कर्त्तव्य में इतना परांगत नहीं होता। वह कर्म तो शुद्ध पवित्र कर सकता है परन्तु उस पर मानव का विश्वास अधिक नहीं हो पाता।

इसी प्रकार जो उपस्थ इन्द्रियों से शरीर को त्यागता है, वह आत्मा इस संसार में उन योनियों को प्राप्त होता है जो देखो, मरने और जीने पर लगी रहती है। आज जीवन है कल मृत्यु है। जो गुदा के द्वारा त्यागता है वह आत्मा इस संसार में नारकिक लोकों की प्राप्त हो जाता है। उस नारकिक योनियां प्राप्त हो जाती हैं। वह जो नारकिक योनियां होती हैं जहाँ उसे अन्धकार ही अन्धकार प्राप्त होता है प्रकाश का एक अंकुर भी प्राप्त नहीं हो पाता।

मेरे प्यारेमैं इस वाक्य को गम्भीरता में न ले जाऊं। यह विषय !ऋषिवर ! तो बहुत गम्भीर बन जाएगा। मैं इन वाक्यों को इसलिए प्रकट कर रहा हूँ कि हे मानव ऐसा ! प्रयास कर कि तेरा अन्तरात्मा घ्राण से शरीर को त्यागने वाला बने। ऐसा होने पर तू सतोगुणी बनेगा रजोगुणी इतना नहीं बनेगा। जिसका आत्मा ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा जाता, सुषुम्ना और पिंगला के द्वारा जाता है, वह आत्मा देवलोक को प्राप्त हो जाता है। वह देवताओं के समाज में चला जाता है देवता कौन होते हैं? जो देववत होते हैं जो देते हैं। क्या देते हैं? जो उनका परिश्रम होता है, पुरुषार्थ होता है उसे देते चले जाते हैं। आज हमें देवता बनना है, सतोगुणी बनना है, सूर्य लोकों को प्राप्त होना है।

संसार में बेटा पांच तत्त्व हैं। उन पांचों तत्त्वों में जितने इस प्रभु के राष्ट्र में लोक ! लोकान्तर हैं, जितने भी मण्डल हैं उनमें कोई न कोई तत्त्व प्रधान होता है। जैसा हमारे यहाँ पृथ्वी मण्डल पर पार्थिव तत्त्व प्रधान होता है ऐसे ही चन्द्रमा में वायु और जल प्रधान है। ऐसे ही सूर्य में अग्नि प्रधान है। इसी प्रकार जिसे हम ध्रुव कहते हैं उसमें

वायु प्रधान है और जैसे हमारे यहाँ बृहस्पति है। उसमें जल तत्त्व प्रधान है। पांचों तत्त्वों की प्रधानता के द्वारा सर्व विश्व की रचना हुई है। जिसमें असंख्य लोक लोकान्तर हैं। हमारे यहाँ तीन प्रकार के सौर मण्डल माने गएं हैं, एक सौर मण्डल का अधिपति सूर्य कहलाया गया है और दूसरे सौर मण्डल का अधिपति बृहस्पति कहलाया गया है, और तीसरे सौर मण्डल का अधिपति ध्रुव को कहलाया गया हैं। इनमें ऐसे ऐसे असंख्य मण्डल रहते हैं। एक एक और मण्डल में अरबों खरबों लोक लोकान्तर होते हैं। ऐसा हमारे यहाँ माना गया है। और प्रत्येक सौर मण्डल के आधार पर एक आकाश गंगा होती है। जिस आकाश गंगा हमारे मस्तिष्क वैज्ञानिकों ने यहीं तक जाना है। वह जो आकाश गंगा है उसमें एक नील और अरबों खरबों के लगभग लोक लोकान्तर कहलाए गएं हैं। उसकी गणना नहीं की जा सकती। यह तो प्रभु का विज्ञान है। मैं इसको अधिक विस्तार नहीं देना चाहता हूँ।

वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि यह जो आत्मा है, इस शरीर को त्याग करके कहाँ जाती है? जैसा जिसका संस्कार होता है, जैसा जिस आत्मा के जाने का द्वार होता है उसी को वह प्राप्त हो जाता है। जैसे चक्षुओं में सूर्य प्रधान है जिसको अग्नि कहते हैं और हमारे घ्राण में प्राण प्रधान है, और मुखारबिन्द में अग्नि प्रधान है, और श्रोत्रों में दिशाएं प्राकृतं आकाश प्रधान है। उपस्थ और के द्वारा पार्थिव और (गुदा) नारकिकता दोनों की प्रधानता मानी गई है जिस द्वारा से जो आत्मा जाती है उन्हीं प्रवृत्तियों को वह आत्मा प्राप्त होती रहती है।

मेरे प्यारे मैं इस वाक्य को गम्भीर नहीं बनाना चाहता हूँ। केवल वाक्य !ऋषिवर ! उच्चारण करने का अभिप्ऱाय यह है कि आज हम इन वाक्यों पर विचार विनिमय करते चले जाएं यह तो एक कर्म का विचार है, यह तो कर्म की एक धारा है जिसके अभी अभी उच्चारण करने चले। परन्तु जब यह आत्मा इस शरीर को त्यागता है। बेटा ! सबसे प्रथम यह वायु मण्डल में रमण करता है वायु मण्डल में नाना प्ऱकार की श्रेणियां होती हैं। पांच प्रकार की श्रेणियां होती हैं। एक तो जिसमें पार्थिव तत्त्व रमण करते हैं, पार्थिव परमाणुओं का समूह हो और दूसरी श्रेणी वह होती है जिसमें जल

परमाणु अधिक रमण करने वाले हों और तृतीय वह जिसमें अग्नि के परमाणु रमण करने वाले हों और चतुर्थ जिसमें प्रकाश परमाणु अधिक हों और पञ्चम जिसमें वायु के स्वयं परमाणु अधिक रमण करने वाले हों। उन्हीं को यह आत्मा प्राप्त होता रहता है, अब जिसका जैसा कर्म होता है उन कर्मों में भी किसी में अग्नि प्रधान है, किसी में पृथ्वी प्रधान है इसी प्रकार किसी में वायु प्रधान है, जैसी जिसकी प्रधानता मानव की प्रवृत्तियों में होती है। उन्हीं प्रवृत्तियों के आधार पर इस आत्मा को शरीर त्यागने के पश्चात मन्थन होता है और वैसी योनि इसको प्राप्त होती रहती है। यह वेद का विचार कहता है।

विचारना यह है कि हम अपने जीवन में इस संसार को कितना मन्थन कर सकते हैं। संसार में प्रत्येक मानव को पिपासा रहती है, आनन्द की परन्तु आनन्द उस काल में प्राप्त होता है। जब ज्ञान होता है और ज्ञान के साथ में विवेक होता है। यदि ज्ञान होता है और विवेक नहीं होता, उसके साथ हमारी तपस्या नहीं होती, उसके अनुकूल हम चल नहीं पाते तो हमारा जीवन संसार में निरर्थक होता है। उस मानव का कोई मूल्य नहीं होता।

मेरे प्यारेएक मानव शाब्दिक ज्ञान में रमण कर रहा है !ऋषिवर !, शब्दों का ज्ञान है परन्तु क्रियात्मक जीवन उसमें विराजमान नहीं है। क्रियात्मक जीवन नहीं है। तो मानव आनन्द को प्राप्त नहीं होगा। जिसे केवल शाब्दिक ज्ञान होता है, तपस्या उसके साथ नहीं होती वह मानव सदैव अपमान में परिणत रहता है। पर मानव सदैव मान चाहता रहता है वह अपमान नहीं चाहता, मान की पिपासा उसे सदैव लगी रहती है कि मेरा राजा महाराजाओं के यहाँ मान हो और मेरा आदर सत्कार हो। वह निरादर नहीं चाहता अरे, बुद्धिमान जब आदर तू चाहता है तो निरादर कौन चाहेगा इस संसार में। निरादर ! वाले व्यक्ति कौन हैं? एक मानव कीड़े के समान है जो अपमान में परिणत ही हो रहा है, उसका तो कर्म हो तुच्छ है। तो हे मानवजब तू मान का उत्सुक है तो अप !मान का कौन सहन करेगा? यह हमें विचार विनिमय करना है।

जो वैदिक विचार धारा वाले प्राणी होते हैं वे गम्भीरता से विचार विनिमय करते हैं।

विचार कया है कि जो हम मान में परणित रहते हैं, हमें ज्ञान है, विवेक है, विवेक में मान अपनमान नहीं होता। केवल शाब्दिक ज्ञान में मानव मान अपमान को सहन करता रहता है और उसमें अपने को बहुत बुद्धिमान स्वीकार करने लगता है। परन्तु जब विवेक होता है क्रियात्मक जीवन होता है, तपस्या में परणित होता है, प्रभु का जिज्ञासु होता है बेटाप्रभु के जिज्ञासु को संसार में न तो निराशा होती और न आनन !्द ही पिपासा होती है। प्रभु का जिज्ञासु सदैव अपने को आत्मा में लीन कर लेता है और आत्मा की जो प्रवृत्ति है वह बाह्य की चेतना में परीणात हो जाती है। उसके लिए यह संसार एक अन्धकार के तुल्य हो जाता है।

तो मेरे प्यारेआज का वाक् क्या कह रहा है !ऋषिवर !? हम अपने विचारों को गम्भीर न बनाते चले जाएं। केवल विचारों में एक महत्ता देना चाहते हैं। हृदय से जो उच्चारण करने वाला शब्द है वह मानव के हृदय को विचित्र बना देता है। आज मैं कोई अधिक चर्चा तो करने नहीं आया हूँ। केवल शाण्डिल्य मुनि की चर्चा प्रकट कर रहा था। महर्षि शाण्डिल्य मुनि की चर्चा प्रकट कर रहा था। महर्षि शाण्डिल्य जी ने कहा कि आत्मा इस शरीर को त्याग करके कहाँ जाता है? मानव शरीर को त्याग करके अपने अपने कारणों में चला जाता है। उसी परिणाम को प्राप्त होता है जो इसके कर्मों का फल भोग है। महर्षि शाण्डिल्य जी ने यह निर्णय दे दिया, विचार व्यक्त कर दिया कि वास्तव में हम उस चेतना की ही पिपासा में संलग्न रहें। आज मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि संसार का कर्त्तव्य नहीं करना चाहिए। संसार का जो कर्त्तव्य है। उस कर्त्तव्य वाद में ही चेतना होती है महत्ता विराजमान होती है उस महत्ता को जानने का प्रयास होना चाहिए। आज हमें देव लोक को प्राप्त होना चाहिए।

बेटाजो अन्तरिक्ष के परमाणु है। जहाँ अन्तरिक्ष तत्त्व प्रधान है !, उन लोकों में जब हम रमण करते हैं। तो वह एक देवयान मार्ग कहलाया गया है, ये भी दो प्रकार के मार्ग है। एक पितरयान होता है और दूसरा देवयान होता है। मैंने इसकी मिमांसा पूर्व काल में की है। कल मैं इसकी मीमांसा अधिक कर सकूंगा। आज मुझे समय (में 4 पुष्प) इतना आज्ञा नहीं दे रहा है। आज तो केवल वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है

कि हम अपने मानवत्व को सुन्दर बनाते चले जाएं और अपनी मानवीयज्योति को उज्ज्वल बनाते हुए हम अपने कर्मों पर विचार विनिमय करते चले जाएं कि हम कैसा कर्म करें? कैसी हमारी विचित्र धारा होनी चाहिए?

हे मानवतू आनन्द और सुख को चाहता है !, आनन्द की पिपासा है, तो तू इस संसार में ऊँचे से ऊँचा कर्म कर। और अपनी आत्मा को उर्ध्व गति के द्वारा इस शरीर से त्यागने का प्रयास कर। ऐसा योगीजन करते आए हैं। जैसी हमारी परम्परा है। प्राण के द्वारा शरीर को त्यागों उस समय तुम ऊर्ध्व गुण में आनन्द को प्राप्त हो जाओगे।

मेरे प्यारेआज हमारे इन वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम ऊँचे कर्म करें !ऋषिवर ! जिससे हमारा जीवन सुन्दर बने। कल्पना हमारी सुन्दर हो। जैसा मैंने कल के वाक्यों में कल्प वृक्ष की चर्चा प्रकट की थी। इसी प्रकार आज भी हमारा यह वाक्य कह रहा है कि आत्मा इस शरीर को त्याग करके कहाँ जाती है? यह तो बेटा एक महान ! विषय है परन्तु यहाँ कर्म को विचारा जाएं। हम प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को विचारने वाले बनें। उन विषयों को हम सुगठित बनाएं और हृदय रूपी जो यज्ञशाला है जिसमें एक चेतना जागरुक हो रही है। उस चेतना को जागरुक करें। और जब वह जागरुक हो जाएगी तो तुम्हारा सम्बन्ध उस बाह्य चेतना से सम्बन्धित हो जाएगा। जब दोनों चेतना एक हो जाएगी तो वहाँ परम आनन्द प्राप्त हो जाएगा। एक आनन्द की प्राप्ति होने लगेगी।

यह है बेटा आज का हमारा वाक्य। आज मैं कोई चर्चा तो प्रकट करने आया नहीं ! हूँ। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते रहें। अपने प्यारे प्रभु की महिमा को विचारते रहें। यही हमारे जीवन का उद्देश्य है। यही मानव का उद्देश्य है। बेटा नाना प्रकार के द्रव्यवेत्ता राजा महाराजा सबको त्याग करके ! यज्ञ में आहुति दे देते हैं। हमारे यहाँ राजा रघु का भी ऐसा साहित्य !बेटा, प्राप्त होता है दृष्टिपात भी किया गया है कि उन्होंने सर्व द्रव्य को यज्ञ की अग्नि में प्रविष्ट कर दिया। इसी प्रकार मानव को आन्तरिक और बाह्य शुभ कर्म दोनों करने चाहिएं। जिससे हमारे जीवन की प्रतिभा, मानवता सुन्दरता को प्राप्त हो जाएं। वैदिक परम्परा के आधार पर

अपने जीवन को क्रियात्मक बनाने का प्रयास करें। यही हमारे जीवन का संसार में आने का लक्ष्य है। यह है आज का हमारा वाक्य। अब कल समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चा कल प्रकट करूंगा।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो भगवान् आज का आपका वाक्य तो हमें बहुत !गुरुदेव ! ही प्रिय लगा परन्तु समय बड़ा सूक्ष्म।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य समय आता रहता है व्यतीत होता रहता है। उस !बेटा..... समय में नाना प्रकार की विचारधाराएँ प्रारम्भ हो जाती है, और वे समाप्त भी हो जाती हैं। बेटा समय कोई सूक्ष्म नहीं होता। !

पूज्य महानन्द जीः जैसी भगवन् आपकी इच्छा। !

पूज्यपाद गुरुदेवः तो मुनिवरों आज के हमारे इन वाक्यों का अभिप्राय यह कि हम ! ऊँचे से ऊँचा कर्म, मानवीय देववत् और विचित्र बनाने का प्रयास करें। यह है बेटा ! आज का हमारा वाक्य। मैं आत्मा के सम्बन्ध में इस वाक्य को और भी गम्भीरता में ले जाने का प्रयास करता रहूँगा। जब जब वेदों का पाठ आता रहेगा। यह बहुत गम्भीर और एक महान विषय है जिसमें विलम्बता की आवश्यकता रहती है। मानव को विलम्ब ही रहता है क्योंकि आत्का का इतना गहन विषय होता है। संसार में तीन प्रकार की मींमासा होती है, एक आत्मिक मींमासा है एक प्रकृति की मिमांसा है और एक ब्रह्म की मीमांसा है। उन तीनों मीमांसाओं को आचार्यों ने कहा कि इन दो मीमांसा में ले आओ। ऋत् और सत् में ले आओ। ऋत् और सत् की मीमांसा रह जाती है। और भी महापुरुषों से ब्रह्मवेत्ताओं ने कहा कि इन दोनों में से भी सूक्ष्म करो। मानो एक चेतना में आ जाओ। तो अन्त में इसकी एक ही मीमांसा चेतना रह जाती है। मीमांसा प्रारम्भ से तीन चलती हैं आत्मा, परमात्मा और प्रकृति और जब मीमांसा करते हुए इनका अन्त होता है तो अन्त में ज्योति आ जाती है और चेतना आ जाती है और नेति नेति कह कर शान्त कर दिया जाता है। यह है बेटाआज का वाक्। अब मुझे स !मय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् हमारी वार्त्ता

समाप्त। सिकन्दाराबाद में दिया प्रवचन।

१८ अतिथि 005 पुष्प 22 दीपावली पर्व

जीते रहोदेखो !, मुनिवरोंआज हम तुम्हारे समक्ष !, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परा से उस मनोहर वेदवाणी का प्रायः प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में कुछ मेरे प्यारे प्रभु ! का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। क्योंकि परमपिता परमात्मा एक अनुपम माना गया है। जिसके ऊपर मानव को सदैव विचार विनिमय करना है अथवा अनुसन्धान करना है। क्योंकि मानव का जो एक अनुपम विचार होता है वह उसकी एक धारा होती है। और अनुसन्धान के लिए मानव का जीवन सदैव तत्पर रहता है। और वह यह विचारता रहता है कि मैं अनुसन्धान वेत्ता बनना चाहता हूँ। परन्तु जहाँ अनुसन्धान के यि मानव चलता है, अपनी नाना प्रवृत्तियों को जब वह दमन करता है उस समय उसे यह ज्ञान होता है वास्तव में आज जो मैं उच्चारण करना चाहता हूँ और जिस विज्ञान में पहुंचना चाहता हूँ वह विज्ञान है क्या? विज्ञान की एक अनुपम धारा होती है। विज्ञान में जब मानव परणित होने लगता है उस समय मानव को यह दृष्टिपात होने लगता है कि आज मैं उस महान् विज्ञान को वेदी पर विराजमान हो गया हूँ जहाँ मेरा एक महान् कर्त्तव्य रहता है।

जब मेरी प्यारी माता अपने जीवन में अनुसन्धान करने लगती है कि मेरा जीवन क्या है? मेरे गर्भ से पुत्र उत्पन्न होता है। परन्तु वह किस प्रकार होता है कैसी उसकी धारा है? कौन उसका मूल कहलाया गया है? तो मेरी प्यारी माता वास्तव में विज्ञानवेत्ता बन सकती है। परन्तु जब माता अनुसन्धान वेत्ता होती है तो यह संसार वास्तव में पवित्र होता है। क्योंकि अनुसन्धान की पवित्र वेदी पर विराजमान हो जाना जीवन की एक धारा में परणित हो जाना मानव का एक महान कर्त्तव्य माना गया है। जिसके ऊपर मानव को सदैव अपना विचार विनिमय करना है। और अपनी धारा को एक महत्ता में

परणित करते हुए इस संसार सागर से पार हो जाना है।

आज मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ प्रेरणा दे रहे हैं कि हमें अपने हृदय का मिलान करने की सदैव प्रेरणा होनी चाहिए। हमारा जीवन एक दूसरे के हृदय के प्रति महान् और पवित्र होना चाहिए। जब हमारे हृदय में एक मानवता का सुन्दर दिग्दर्शन होता है, हमारी मानवता एक सुन्दरता में परणित करती रहती है।

आज हम यज्ञ के सम्बन्ध में कुछ अपना प्रकाश देना चाहते हैं। वेद में यज्ञ एक श्रेष्ट कार्य माना गया है। क्योंकि यज्ञ से ही संसार में नाना प्रकार की मानव की आकांक्षाएं पूर्ण हो जाती हैं। एक मानव पुत्र की कामना करता है। एक राजा वृष्टि की कामना करता है। राजा अपने राष्ट्र को स्थापित करना चाहता है। तो वह सुन्दर सुन्दर, महान् से महान् श्रेष्ट यज्ञ कार्य करने वाला बने। क्योंकि जहाँ यज्ञ का अनुकरण होता है, यज्ञ की प्रतिभा में जब मानव परणित रहता है तो सदैव इस संसार सागर में उसकी महान् प्रतिष्ठा होती है, उज्ज्वलता उसके मस्तिष्क में ओत प्रोत हो जाती है।

जहाँ मानव अपने जीवन में एक महत्ता और पवित्रता में परणित रहता है उसी काल में तो जीवन ऊँचा बना करता है कल बेटा मैंने तुम्हारे समीप नाना प्रकार की वनस्पतियों ! का वर्णन कराया। जिन वनस्पतियों में विद्युत अपने महान् प्रभाव से कार्य कर रही है। और यज्ञशाला में जब याज्ञिक यज्ञ कर्म करता है तो उसकी महत्ता में एक महान् ऊँचा दिग्दर्शन होता रहता है। ऊँची एक महत्ता उस मानव के मस्तिष्क में प्रायः ओत प्रोत हो जाती है। मेरे प्यारे महानन्द जी भी दो शब्द पर अपना विचार दे सकेंगे। कल मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक वाक्य बहुत ही प्रिय कहा था कि राष्ट्रवाद रूढ़िवाद से कदापि भी पवित्र नहीं बना करता है। क्योंकि जिन मानवों के मस्तिष्कों में रूढ़िवाद के अंकुर होते हैं, विशेषाकुर होते हैं उस से मानवता का सदैव विनाश होता रहता है। इसीलिए आज हमें अपने जीवन में सुन्दर से सुन्दर यज्ञ कर्म करने चाहिएं। जिसस मानव अपनी मानवता और आत्मवाद को भी पवित्र बनाता रहता है।

मेरे प्यारे महानन्द जी उच्चारण कर रहे हैं कि परम्परा में आशीर्वाद की पद्धति क्या थी? बेटा परम्परा में हमारे यहाँ जब यज्ञमान को आशीर्वाद दिया जाता तो यज्ञमान की !

धारा में मानवता का सदैव एक दिगदर्शन होता रहता। हमने अनुसन्धान की दृष्टि से नाना अनुसन्धान किये। हमें वास्तव में अनुसन्धान करने के पश्चात हुआ कि यज्ञमान ही इस यज्ञ का मानो अधिपति होता है। और पवित्र होता है। जितना भी उसका हृदय पवित्र होता है उतना ही यज्ञ में महान सुन्दरता आती चली जाती है। और जब उसके मस्तिष्क में विवाद रहता हैं, नाना प्रकार की द्वेष की मात्रा रहती है नाना क्रोध की मात्रा रहती है तो यज्ञ का जो देवता होता है वह यज्ञमान के सुकृत को अपने में हनन कर लेता है जब सुकृत को हनन कर लेता है तो जयमपन की जो प्रतिष्ठा होती है वह सब नष्ट हो जाती है। इसीलिए आज मैं यज्ञ के देवता से कह रहा हूँ कि हे यज्ञ देवत्ता तू यज्ञमान की सदैव कामना पवित्र कर।

तू ब्रह्मा को भी पवित्र बना यह दीर्घ आयु वाला बनें। स्वास्थ्य पवित्र बना रहे। ऐसा मैं अध्वर्यु और उद्गाता सभी की परम्परा से ही दो शब्दों में विवेचना करता रहता हूँ। अध्वर्यु किसे कहते हैं? उद्गाता किसे कहा जाता है? हमारे यहाँ यज्ञ के कर्म काण्ड में उद्गार्ता नाम जो वेदों का पठन पाठन करता है उद्गान गाता है, उसका देवता कौन है उसका देवता किन्हीं आचार्यों ने अग्नि माना है। तो किन्हीं आचार्यों ने वायु माना है। परन्तु वास्तव में अग्नि और वायु दोनों ही मिश्रित ही करके उसका वरुण देवता उसका अस्वन्तुन देवता कहलाया गया है।

इसी प्रकार राष्ट्र की आवश्यकता वहाँ होती है जहाँ दुराचारी पुरुष होते हैं। जहाँ भ्रष्टाचार प्रबलता में आ जाता है। वहाँ राष्ट्र का निर्माण होने लगता है। क्यों होता है? प्रजा को शासन में लाने के लिए नियन्त्रण में लाने के लिए राष्ट्र का निर्माण हुआ करता है।

आज हम यह विचार विनिमय करते चले जाए कि हमारा जो जीवन है वह राष्ट्रीयता से सुगठित रहता है। परन्तु राष्ट्रवेत्ता इस पर्व को इसलिए मनाते हैं क्योंकि राष्ट्रनायक भगवान मनु ने सबसे प्रथम दीपावली के दिवस जन्म ग्रहण किया था। वे देव लोक को त्याग करके इस मृत मण्डल में उद्धार करने के लिए आ गएं थे।

मुनविरो हमारा जीवन इस दीपमाला से सुगठित माना गया है। यह में प्रकाश का ! देने वाला है। इसलिए हमें सबसे प्रथम आत्मा के लिए याचना करनी चाहिए। आज

के वेदमन्त्रों में बारम्बार आत्मा का अनुमोदन किया जा रहा था कि आत्मा क्या है? ऐसा कहा जा रहा था कि यज्ञ वेदी भी आत्मा है। और सुमिधा भी आत्मा है। यज्ञमान भी आत्मा है। और यज्ञशाला भी आत्मा है। ऐसा क्यों कहा गया? देखों इसमें कोई शंका नहीं होगी। क्योंकि वास्तव में जितनी भी सामग्री अग्नि के मुखारबिन्द में चली जाती है वह सब आत्मा है। आत्मा उनको क्यों कहा है। क्योंकि आत्मा का कल्याण करने वाली है इसलिए उन्हें आत्मा के रूपों से सम्बोधित कर दिया है।

मुनिवरों यज्ञमान की आत्मा पवित्र होती है। सपत्नी विराजमान होकर के जब आहुति ! देते हैं। तो जीवन की कल्पनायें, जीवन की धाराऐं विचित्रता में परणित होती चली जाती हैं। आज हम यह भी कहा करते हैं कि भगवान राम को भी राष्ट्र की सत्ता इसी दिवस प्राप्त हुई थी आज हम यह विचार विनिमय कर सकते हैं कि भगवान राम का यह पुनीत निर्माण दिवस था। मानो उनकी कृति, उनकी भद्रता इसमें विराजमान है। आज हम बहुत ही गम्भीरता से विचार विनिमय कर सकते हैं। परन्तु प्रभु की महत्ता तो सदैव प्राणी चाहता ही है। मैं भी यह चाहता हूँ प्रभु की महत्ता मुझे प्राप्त हो जाए परन्तु महत्ता में मानव के जीवन की जो उद्गमता है। विचित्र धारा है वह अपने स्थान को प्राप्त होती चली जाती है।

आज हम दीपावली का पूजन करें। तन, मन, धन के साथ में करें। तन, मन, धन से जब दीपावली का पूजन किया जाता है तो बेटावह जो तन !, मन, धन की मात्रा है वह ऊर्ज्वा बना देती है। विशाल बना देती है। हृदय में विशालता लाने का प्रयास होता रहता है। आज हम विचार विनिमय कर सकेगें कि हमारी जो मानवीय धाराएं हैं वे उस अपने प्रभु से कितनी सुगठित हैं। कितनी निकट रहती हैं। परन्तु मानव की धारा तभी तक उसके निकट रहती हैं जब तक उसके द्वारा व्यक्तित्व होता है मानववाद होता है। जिनके द्वारा व्यक्तित्व नहीं होता उनको परमात्मा त्याग दिया करते हैं। परमात्मा के राष्ट्र में उनके लिए कोई स्थान नियुक्त नहीं होता। अब मैं अपने वाक्यों को विराम दे रहा हूँ। अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपने कुछ विचार प्रकट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् तमा कृतिः विशारदं ब्रह्मा विराट्तणी रुद्रो भवतुनः। मेरे पूज्यपाद

गुरूदेव मेरे पूज्यपाद गुरू देव ने यह सूक्ष्मसा समय !मेरे भद्र समाज !ऋषि मण्डल ! प्रदान किया है। उच्चारण करने के लिए तो बहुत कुछ है। परन्तु जितनी आज्ञा मुझे प्राप्त हुई है उतना ही वाक्य उच्चारण करना है। मुझे समय समय पर चेतावनी देने का भी सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। अपने पूज्यपाद गुरू देव से मैं यह कहा करता हूँ कि हे देवआपकी जो महत्ता है !, विचार है वह मानव के अन्तः करण को छूने वाली है। प्रभू मैं तो आपके विचारों से गदगद् हो जाता हूँ और यह कहा करता हूँ कि यह ! प्रभु की क्या विचित्रता हो रही है कितनी विचित्रता उस प्रभु के राष्ट्र में हैं? इसका मानव विचार विनिमय नहीं कर सकता। क्योंकि उसकी जो धारा है, उसका जो विचित्रवाद है, वह उसके उस आँगन में विराजमान हो जाता है जहाँ जीवन की एक पवित्र धारा बनती चली जाए।

आज मैंने यह उच्चारण करना है कि हे प्रभु संसार में जीवन की नाना धाराएँ होती ! हैं। परन्तु उन विचार धाराओं को विचार विनिमय करने का काम ही जीवन माना आप दीपावली के सम्बन्ध !गया है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था कि प्रभु में अपने विचार प्रकट किजिए। मैं भी आज दीपावली के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार देने आया हूँ। दीपावली के पर्व के दिन ही भगवान कृष्ण को अपने स्थलों से जाना हुआ। भगवान राम को आज के दिवस राज तिलक का घोष हुआ था। ऐसा भी माना गया है कि सृष्टि के प्रारम्भ में देवताओं के द्वारा नाना ऋषि मुनियों के द्वारा वह विचार की धाराऐं महताऐं उनमें विचित्रता से परणित होती चली जाती जिससे मानवता का एक महान और विचित्र दिग्दर्शन होता रहता है।

यह जो दीपावली हे यह मानव का दिग्दर्शन है अथवा यह सृष्टि का दिग्दर्शन है तो गुरु देव ने वर्णन कराते हुए कहा था कि यह वह दीपावली का शुभ अवसर है। जहाँ सभी एकत्रित हो करके यज्ञ करते है। आहुति देते हैं। अपने विचारों की आहुति देते हैं। अपने नाना साकल्य की आहुति दी जाती है। उस साकल्य की आहुति देता हुआ प्राणी कितना हर्ष ध्वनि करता है? क्यों वह सत्यता का व्रत धारण करता है। अग्रे व्रत पते, लेता है। क्योंकि उस वृत को लेने के पश्चात् अग्नि जब मानव के समीप होती तो वह पाप नहीं

करता। अग्नि का अभिप्राय क्या है? अग्नि कहते हैं ज्ञान को। जैसा गुरु देव ने कल के वाक्यां में प्रकट कराते हुए कहा था। आज तो मैं केवल इतना ही वाक्य उच्चारण करने आया हूँ कि आज मैं ऐसे शुभ अवसरों को पुनः से दृष्टिपात कर रहा हूँ। मेरा हृदय मगन हो जाता है। मैं यह भी कहा करता हूँ। कि प्राणी मात्र के लिए मानव को अपनी कागा प्रकृति को त्याग देना चाहिए। सात्विक प्राकृति को ला करके अपने मानव जीवन को सात्विकता में परणित कर देना चाहिए। इसी का नाम जीवन है। इसी का नाम दीपावली कहा जाता है।

पूज्य गुरु देव ने एक ही वाक्य कहा है कि इस सृष्टि के प्रारम्भ से आज के दिवस सूर्य का जन्म हुआ था। और सूर्य का जन्म होते हुए हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु को त्याग करके शारद ऋतु में जाने का नाम प्रीति और तेज कहा जाता है। इस समय कृषक अपनी भूमि में अन्न को स्थापित कर देते हैं। पृथ्वी के गर्भ में जब जब बीज की स्थापना हो जाती है तो वह बीज मानव की मौलिक धाराओं की ही ऊँचा नहीं मानव के सच्चरित्र को ऊँचा बनाता चला जाता है।

आज का वह भी दिवस है जब यहाँ से एक महापुरुष को कागा प्राकृति वाले प्राणियों ने विष देकर के उसी त्वचा में रक्त की धारायें प्रवाहित कीं। और आज के दिवस गायत्राणी छन्दों का पठन पाठन करते हुए उन्होंने अपने शरीर को त्याग दिया था। वह यथार्थ ऋषि आ करके और हमारे समीप एक भहन् साधू बन करके सत्यता का उपदेश देकर चला गया परन्तु आज (महर्षि दयानन्द)का यह मानव इस प्रकार का है और इनके ऐसे स्वार्थ होते हैं कि ऐसे ऐसे प्राणियों को यह अग्नि के मुख दे दी दिया करते हैं। क्योंकि इनके द्वारा तो सदैव ईर्ष्या की अग्नि प्रदीप्त होती रहती है और यह जो ईर्ष्या को अग्नि है यह ईर्ष्या की आग प्राणीयों को भी नष्ट कर देती हैं जिन के हृदय में यह अग्नि प्रदीप्त हो जाया करती है।

हमें आज के दिवस को कदापि नहीं त्याग देना चाहिए। हमारे महापुरुष नष्ट नहीं होते। परन्तु अपने विचार देकर के चले जाते हैं। उनके शरीर के परमाणुओं का विच्छेदन हो जाता है। और विच्छेदन हो करके वे परमाणु अन्तरिक्ष में रमण कर जाते हैं जीवात्मा :

उन प्रवृत्तियों में रमण कर जाती है जो उनके संकलन होते हैं। जो उनके अन्तःकरण भूमिका जिस प्रकार रचाते हैं जब भूमिका उस प्रकार रहकर न रूढ़ि बन जाती है और यह जो रूढ़ि है यह मानव के जीवन को और धर्मज्ञाता को धर्म को विनाश के मार्ग पर ले जाती है। वहाँ धर्म धर्म नहीं रहता। वहाँ मानव की वासनाओं में व्यक्तिगत व्यार्थ और पदों को लोलुपता में, द्रव्य की लौलुपता में व्यक्ति अपने मानवत्व को त्यागता चला जाता है।

मैंने बहुत पूर्व काल में अपने पूज्यपाद गुरूदेव से कहा था कि संसार में रूढ़िवाद ही मानव को तुच्छ बना देता हैं। मानव समाज का हनन कर देता है। इसीलिए आज वह ऋषि का वाक्य मुझे स्मरण है जब वह मृत्यु को प्राप्त होने लगे तो उस समय उन्होंने एक वाक्य अपने शिष्य से कहा था कि हे शिष्यम ब्रह्मे अकृचम् रूढ़िग्रिति, हे शिष्य ! यदि तुम संसार में मेरे इस पथ को ऊँचा बनाना चहाते हो, यह मेरा पथ नहीं है यह आदि ब्रह्मा से लेकर के जैमिनि मुनि तक का यह उद्देश्य है कि यर्थायता और वेद को अपनाते चले जाओ। वेद रूपी प्रकाश को अपनाते चले जाओ। मैं तो चला हूँ जैसी प्रभु की इच्छा है उतना ही कार्य प्रभु ने मुझसे लिया है। अब मैं यहाँ से अपने शरीर को त्याग रहा हूँ परन्तु मेरी जो भूमिका है, मेरा जो विचार है वह सार्वभमि विचार होना चाहिए। वह विचार एक संकीणता में नहीं रहना चाहिए।

आज हम उसको संकीर्णता में लाना चाहते हैं। स्वार्थी प्राणियों ने उनके विचारों को संर्कीण बना दिया। उनके विचारों में अब इतना बल नहीं रहा कि वे याज्ञिक बन सकें क्योंकि धर्म शब्द तो व्यापक है वह कदापि नष्ट नहीं होगा। ऋषि का वाक्य तो ज्यों का त्यों रहेगा। वह सदैव वायु मण्डल में विचरण करता रहेगा, उनके विचार वायु मण्डल में क्रान्ति करते रहेंगे। परन्तु तुम अक्रान्ति रूढ़िवादी बन करके तुम अपने मानवत्व और उस पथर को त्याग चुके हो। जो पथ वास्तव में आज के दिवस मर्भ अग्रिति शरीर को

त्याग कर जाने वाले का था वे तो यहाँ से चले गये।
मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल यह उच्चारण करने आया हं कि आज का जो उत्तम दीपावली का दिवस है जिस दीपावली के दिवस में मानो आदि ब्रह्म ने सृष्टि के लिए, वनस्पतियों के लिए प्रकाश दिया था। वह प्रकाश सूर्य है। इसी सूर्य की छाया जब चन्द्रमा पर जा पहुंची तो चन्द्रमा में भी क्रान्ति आ गई। आजके दिवस क्रान्ति का आ जाना मानो सूर्य की उपलब्द्ध ब्रह्म आक्रान्ता होना यह सभी कुछ प्रकाशक माना जाता है।
आज के हमारे वाक्यों का अभिप्राय यह है जैसा मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज्ञा दी है मैं उन्हीं वाक्यों को प्रकट कराने जा रहा हूँ। आज मैं या वेदी पर जाना चाहता हूँ। जहाँ मैं यह कहा करता हूँ कि हे प्रभु ऐसे ऐसे पुरुषों के हृदयों में सदैव यज्ञों की ! प्रेरणा आती रहे। जितने भी यज्ञ होंगे उतना ही वातावरण सुन्दर होगा। अन्यथा यदि यज्ञ कर्म नहीं होंगे, सुगन्धि नहीं होगी तो यह जो दुर्गन्धि है कहीं मानव के विचारों की दुर्गन्धि है, कहीं वाहन की दुर्गन्धि है, कहीं नाना प्रकार के उद्योगों की दुर्गन्धियां हैं, कहीं अणुओं की दुर्गन्धि है और यदि इन में सुगन्धि का प्रवेश नहीं किया जाएगा तो वह समय बहुत निकट आ रहा है जब यह संसार दुर्गन्धि की वेदी पर चला जाएगा और दुर्गन्धि में अग्नि प्रदीप्त होती चली जाएगी। मैं यह उच्चारण करने नहीं आया हूँ। वह समय बहुत निकट आ रहा है जब यह संसार जहाँ द्वेष की अग्नियों में अपने को कष्ट करता चला जा रहा है। वह समय बहुत निकट आ रहा है जब यह मानव अग्नि की वेदी पर आ करके यह अपने को अपने विचारों से स्वयं भस्म कर लेगा।
वायु मण्डल के परमाणुओं से आज के विज्ञान को दृष्टि पात करके आज का वैज्ञानिक भी अभिमान में प्रदीप्त हो रहा है। परन्तु जब मैं यह विचार देता हूँ कि अरे, क्यों अभिमान में हो आगे तो इससे भी ऊँचे वैज्ञानिक हो गएं हैं। और होते रहेंगे। ओर आगे समय आता रहेगा। परन्तु तुम अभिमानी क्यों बनते हो। अभिमान में तुम्हारा विनाश है। इसलिए यदि तुम्हें इस विनाश से बचना है और सुरखा के मार्ग को स्थिर करना है तो यज्ञ कर्म किए जाएं यज्ञमान होने चाहिए और अपनी इन्द्रियों पर प्राणियों का संयम

होना चाहिए।

आज प्रत्येक मानव अपने विचारों में इतना संकीर्ण बन गया है वह अपने विचारों पर ही संसार के विचार को अपने में परणित करता चला जाता है मैं आज उस यज्ञ वेदी पर चला जाऊँ जहाँ हमारी यह आकाश वाणी पृथ्वी मण्डल में रहने वाले प्राणियों के लिए मृत मण्डल में जा रही है। आज मैं उनको आशीर्वाद देने आया हूँ जिन्होंने सुन्दर सुन्दर यज्ञ आयोजन अपनी श्रद्धा से भक्ति के साथ प्रभु का चिन्तन करते हुए आज आहुति दी। इनकी आयु दीर्घ हो। इनका सौभाग्य अखण्ड बना रहे। इनके जीवन में सदैव धर्म की परम्परा बनी रहे। मैं तो यह कहा कराता हूँ कि उनके हृदयों से हे प्रभु ! दुर्गन्धि चली जाएं। और सुगन्धि !हे देवताओं, आती चली जाएं। जब उनके हृदयों में विचारों को सुगन्धि, मानवता की सुगन्धि आती चली जाएगी तो उनका हृदय विचित्र बनता चला जाएगा। आज मानव द्रव पति बन सकता हे, धनवान बन सकता है, पुत्रवान् बन कसता है परन्तु धर्मज्ञ तो सौभाग्य शाली ही प्राणी बना करते हैं। आज जो धर्म के कर्म को जानते हैं, धर्म के ऊपर अपने को न्योछावर कर देते हैं, तन, मन, धन से अपने को अर्पित कर देते हैं वे मानव इस संसार में सौभाग्य शाली होते हैं।

आज मैं अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल यह वाकय प्रकट करने आया हूँ कि मैं उन यज्ञमान सपत्नीक पुत्रों सहित उनकी दीर्घ आयु हो। सहस्रों वर्षों की ! अवस्था हो जिससे वे धर्मज्ञ कार्य करते रहें। इसी प्रकार मैं आज यज्ञशाला में प्रविष्ट होने वाले वेद के पाठन पाठन करने वालों का भी आयु दीर्घ ही उनके हृदय में सदैव वेद की श्रद्धा ओत प्रोत होकर के जब वेद के प्रकाश में रमण होते हैं तो एक वाणी सदैव उनके समीप होती है और उनका जो उद्गार है वह वायु मण्डल में जब विचरण करता हैं प्रत्येक स्वाहा के साथ में तो देवता उसे अच्छी प्रकार ग्रहण कर लेते हैं। हे देवताओंतुम उनकी भी दीर्घ आयु करो। परन्तु जब दीर्घ आयु हो जाती है !, दीर्घ आयु प्राणी संसार में धर्म और मानवता के वेदी पर विचरण करता हुआ धर्म के कर्म करे जानता हुआ अपनी मानवता को ऊँचा बनाता चला जाता है।

मैं तो गुरु देव का वह समय भी दृष्टिपात करता रहता हूँ जब पूज्यपाद गुरु देव को

कजली बनों से लाया जाता था। उत्साह के साथ लाया जाता था वे नग्न रहते थे एक छाल की कोपीन को धारण किए हुए रहते थे उनको तब ब्रह्मा की उपाधि प्रदान की जाती थी। आज वे जब मैं अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा दृष्टिपात करता !। मुनिवरों..... मानव इस प्रकार का भी बन जाता है। अभिमान न करो क्रोधित !रहता हूँ तो हे मानव न हो। परन्तु मानव को जो प्रवृत्ति बन जाती है पूज्यपाद गुरु देव के एक क्रोध के कारण। क्या से क्या दशा बनी। क्रोध के कारण मानव की क्या से क्या दशा हो जाती है। एक महान प्रतिमा मानव के समीप होनी चाहिए। व्याकुल होना पड़ता है। जब मैं अपने पूज्य गुरु देव को दृष्टिपात करता रहता हूँ परन्तु मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता।

मैं एक वाक्य और प्रकट करने जा रहा हूँ कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की जो अलौकिकता है मानो हमारी जो यह वाणी है जो मृत मण्डल में जा रही है यह ईश्वरीय देन है, आत्मा की देन है, यह सदैव प्रकाशवान होती रहेगी। आज कोई मानव इसकी शान्त करना चाहे, इसको आज कोई पृथ्वी में आरोपित करना चाहे तो यह मिट नहीं सकेगी क्योंकि यह प्रभु की देन है, कर्मों का फल है। आज कर्मों के फल को, प्रारब्ध को मानव नष्ट नहीं कर सकता मानव का जो प्रारब्ध है वह अमिट होता है। किसी काल में उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। इसीलिए हे आकाशवाणी के श्रवण करने वाले प्राणियों मैं एक ही वार्त्ता उच्चारण करने आया हूँ कि इनका प्रारब्ध बड़ा ही विचित्र है। आज इसको नष्ट करने से प्रारब्ध नष्ट नहीं होता। प्रारब्ध सदैव कर्मों से बना हुआ होता है। कर्म की जो विचारधारा है वह जब तक रहती है जब तक उसका एक एक अंकुर अन्तःकरण में विराजमान रहता है।

इसलिए मैं आज यह उच्चारण करने आया हूँ कि आज जो यह दीपावली का दिवस है इसके ऊपर हमें सदैव विराजमान होकर के यज्ञ इत्यादि कर्म करने चाहिए। आधुनिक काल में तो इनको ढोंग और पाखण्ड के नाम से परणित किया जाता है और जो मानव जिनके द्वारा काम करना वासना अधिक होती है, क्रोध की वासना अधिक होती है, वह ढोंग और पाखण्ड उनकी दृष्टि में नहीं होता। यह उनकी एक महान निराशा है। उनके

जीवन का पतन हो गया है। क्योंकि पतित होने के नाते उनके जीवन की जो प्रतिभा है वह इन्हीं राग द्वेषों में नष्ट हो जाती है। आज जब मैं यह उच्चारण करने जाता हूँ जहाँ नाना प्रकार के नृत्य होते हैं, नाना प्रकार की धाराएं होती हैं, वहाँ उसकी पाखण्ड क्यों नहीं कहा जाता? जो वास्तव में पाखण्ड है। पाखण्ड किसे पाखण्ड हैं? पाखण्ड उसे कहा जाता है जहाँ वास्तविकता न हो, बनावटी हो, ऊपरी हो परन्तु जो मानव केवल कंठ से वाक्य उच्चारण करता हो वह सबसे महान पाखण्डी होता है संसार में इसीलिए आज हमें विचारना यह है कि हम जो भी संसार में कर्म करने के लिए आए हैं, हमें कर्म करना है, मन, वचन, कर्म से सदैव वाक्य को ले करके चलना है। क्योंकि जब तक हमारा कर्म मन, वचन के साथ नहीं होगा तो हम किसी कार्य को पूर्ण कर ही नहीं सकते। पूर्ण कार्य हम उस काल में कर सकते हैं जब हमारा मन वचन और कर्म एक सत्र में बंधा हुआ होगा। जैसे दीपकों की दीपावली कहलाई जाती है। दीपकों की माला के तुल्य एक श्रृंखला बन जाती है वह जो संकलन है वह उसकी धारा में गति होती चली जाती है। मानो वह दीपमाला कहलाती है। इसी प्रकार जब विचारों की दीपमालिकों मानव के जीवन में प्रकाश देती है, मानव का हृदय सदैव प्रसन्न रहता है। उसी प्रसन्नता से मानवीय अग्नितों मे व्रत धारण करके संसार से पार होता चला जाता है। मैं यह वाक्य उच्चारण करने नहीं आया हूँ। आज जब हम पाखण्ड का दिग्दर्शन करते हैं तो हमें यह प्रतीत होता है कि हमारे यहाँ पाखण्ड कया है? पाखण्ड कहते हैं जिस मानव के द्वारा सत्यता न हो, वह सदैव मिथ्या उच्चारण करने वाला हो और सदैव अपने लिए ही निगलता रहता है, अपने ही लिए खाने की प्रवृत्ति रहती है, वह मानव अपने पाखण्ड की ही खाता रहता है निगलता रहता है।

मैं अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया अब, केवल अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा। मुझे इतना ही समय इन्होंने प्रदान किया था। इस समय में मैंने अपने विचार प्रकट किए हैं कि दीपावली का जो पर्व है यह कृषकों के लिए, वैश्यों के लिए, ब्राह्मणों के लिए सभी प्राणियों के लिए होता है। क्योंकि इसमें कृषक अपनी भूमि में बीज की स्थापना कर देते हैं। याचना करते हैं यज्ञ भगवान से कि हे प्रभु हमारी कृषी ऊँची !

हो। हमें खाद्य और खनिज पदार्थ भी इस पृथ्वी से प्राप्त हों। इसीप्रकार होलि का के दिवस में भी पूज्य गुरुदेव ने वर्णन कराया था। इसकी जो उपलब्धि है। इसकी उत्पति किस काल से हुई? तो जब से प्रभु ने यह ब्रह्माण्ड रचाया है, जब से मानवता संसार में आई। कई प्रकार के पर्व होते हैं इन पर्वों में एक रक्षाबन्धन पर्व होता है जिसमें राखी के लिए माता अपने विधाता को आराधना करती है, निमन्त्रित करती है इसी प्रकार आज हम प्रेम के प्रतीकों को इन पर्वों को परम्परा से आधारित अपने में धारण करते हुए अपने में इसको स्वीकार करें। आज का यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा। तो अब मैं अपने पूज्य गुरुदेव को नमस्कार करने जा रहा हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य ऋषि मण्डल आज तो मेरे प्यारे !मेरे प्यारे !धन्य हो ..... महानन्द जी ने अपना बहुत ही सुन्दर उपदेश दिया। जिन उपदेशों में कई विषय थे। पाखण्ड की चर्चाएं दीपमालिका की चर्चाएं और भी नाना चर्चाएं इनके सम्बन्ध में रही। परन्तु जहाँ महानन्द जी आशीर्वाद दिया करते हैं वहाँ हमारी भी सहानुभूति रहती है। सदैव धर्मज्ञ प्राणी की आयु दीर्घ होनपी चाहिए। क्योंकि धर्म से ही ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। जिसके द्वारा धर्म नहीं होता वह ब्रह्मचारी भी नहीं होता। जब ब्रह्मचारी नहीं होता तो आयु किस प्रकार ऊँची बने। दीर्घ आयु तो उसी काल में हो सकती है जब ब्रह्मचर्य की प्रतिभा समीप रहती है। इसलिए आज का यह वाक्य समाप्त। जैसा महानन्द जी ने ब्रह्मा को यज्ञमय को आशीर्वाद दिया है, ऐसे ही मैं भी प्रभु से यह कहा करता हूँ कि ये दीर्घ आयु हों, पवित्र हृदय हों, देवताओं का सदैव पूजन करते रहें। आज का यह वाक्य अब समाप्त हो गया। वेद के कुछ मन्त्रों का पाठ।